भाई के पत्र

[विवाह-समस्या और स्त्री-जीवन]

लेखक

श्रीरामनाथलाल 'सुमन'

प्रकाशक

सस्ता-साहित्य-मंडल

अजमेर।

तृतीय संस्करण
अजिल्द मूल्य १॥)
सजिल्द मूल्य १।॥)
अप्रैल १९३३

अभी तक की सूचनाओं से मालूम हुआ है कि इस पुस्तक का पंजाबी, सिंधी और मराठी में अनुवाद हो चुका है।

मुद्रक—
जीतमल लूणिया,
सस्ता-साहित्य प्रेस, अजमेर.

तृतीय संस्करण की भूमिका

यह सन्तोष की बात है कि विशेष विज्ञापन न होने पर भी, बहुत शीघ्र इस पुस्तक का यह तृतीय संस्करण प्रकाशित करना पड़ रहा है। इस थोड़े समय में कई देशी भाषाओं में इस पुस्तक के अनुवाद भी हो गये हैं और वहाँ भी इसकी अच्छी माँग हुई है।

बहनों के सम्बन्ध में स्वभाव से ही मेरा हृदय दुर्बल है। उनकी उन्नति के लिए मेरे हृदय में विशेष आग्रह है—आग है। मैं उनपर अत्याचार सह नहीं सकता; व्यवहार-दृष्टि से उसके फलाफल का विचार किये बिना उसमें मैं कूद पड़ता हूँ। इसका परिणाम अच्छा भी होता है, बुरा भी होता है। प्रायः पुरुषों ने इस सम्बन्ध में मेरे साथ अन्याय किया है, प्रायः बहनों ने मेरे हृदय को पहचाना है।

बहुत से पुराने विचार के अविकारप्रिय पुरुष समझते हैं कि मैं स्त्रियों का पक्षपात कर रहा हूँ। नवीन श्रेणी के सुधारक समझते हैं कि यह सहानुभूति के परदे में वस्तुतः पुरुषों के पक्ष का प्रचार कर रहा है। मुझे इनके निन्दा-यश की तो परवा नहीं है। मुझे सन्तोष है कि जितनी परिचित, शिक्षित, समझदार,

सुशील और सदाचरणशील बहनों ने इसे पढ़ा है सबने मेरे हृदय के भावों को समझा और पुस्तक को उपयोगी बताया है। जिनके हृदय के दुःखों को प्रकाश में लाने के लिए, जिनकी सेवा के लिए पुस्तक प्रकाशित की गई थी, उनका सन्तोष ही मेरे लिए एक मात्र पुरस्कार हो सकता है। और वह पुरस्कार यथेष्ट मात्रा में मुझे मिल चुका है।

स्त्री-पुरुष-समस्या की वैज्ञानिक समीक्षा, जानबूझकर मैंने इसमें छोड़ दी है। नारी-जीवन के उद्धार और विकास में मैं उसका कुछ विशेष महत्व नहीं देखता। आज भारतीय गृह-जीवन को जिन समस्याओं ने दुःख के भावों से परिपूर्ण कर रक्खा है और जिनके कारण उसका अस्तित्व खतरे में है उनके व्यवहार-पक्ष एवं मनोवैज्ञानिक स्थिति में ही मैंने इस पुस्तक को सीमित रक्खा है। समाज–निर्माण में स्त्री-पुरुष के पारस्परिक सम्बन्ध की क्या व्यवस्था भविष्य में होनी चाहिए, इस पर भी वहीं तक प्रकाश डाला है जहाँतक वर्तमान से उसका सम्बन्ध है। आज हिंदू नारी का दुःख किस प्रकार थोड़ा-बहुत कम किया जा सकता है और उसके निरानन्द जीवन में सुख की छाया किस प्रकार पैदा की जा सकती है, इस पर ही इस पुस्तक में ज्यादा ध्यान दिया गया है। इसीलिए जहाँ पुरुष-चरित्र की कमजोरियों को अधिकाधिक स्पष्टता के साथ मैंने रक्खा है वहाँ अपनी

दुःखिया बहनों को होड़ और प्रतिक्रिया की भावनाओं से बचाने की भी मैंने बराबर चेष्टा की है।

मेरा अपना ख़याल है कि सभ्यता के आदिकाल से नारी-वर्ग के साथ पुरुष ने ज़्यादती की है। बड़े-बड़े उदार महात्माओं ने अपनी कमज़ोरियों के लिए उसे गालियाँ भी दी हैं और अपनी कमजोरी छिपाने के लिए उसे प्रलोभनकारी, पापी मानने में भी वे कुंठित नहीं हुए हैं। पर मानव-काल के आदि से आज तक की सभ्यता के इतिहास का मनन कर देखें तो एक औसत नारी एक औसत पुरुष जितना खूंख़ार, बेवफा, भयंकर और पीड़क कभी न मिलेगी। ऐसा नहीं कि मैं सब स्त्रियों को देवियाँ मानता हूँ। अनेक दुर्बल, पतित और भयंकर स्त्रियों के बारे में जानने-सुनने का भी मुझे मौक़ा मिला है। पर उन सब का ध्यान रखते हुए भी मैं कह सकता हूँ कि उनकी दुर्बलता की पुरुष की दुर्बलता से तुलना नहीं की जा सकती। मेरे अपने जीवन का अनुभव तो यही है। मैं ऐसी नारियों के सम्पर्क में आया हूँ जो यदि पुरुष होतीं तो आज समाज में महात्मा कह कर पूजी जातीं और उनके त्याग और शील की कहानियों के उदाहरण दिये जाते। उन्हीं के कुटुम्बों में जो पुरुष हैं वे त्याग और संयम में उनसे कहीं कम होते हुए भी समाज में आदरणीय माने जा रहे हैं जब स्वयं उनकी कोई पूछ नहीं। मैंने स्वयं अपने को अपनी माँ,

बहन और पत्नी के सामने तौला है और उनके मोल में कम पाया है।

× × ×

मेरी इच्छा इस पुस्तक के नये संस्करण में और भी कितनी ही नई बातें जोड़ने की थी। पर इस समय जेल में होने के कारण पढ़ने-लिखने को सीमित सुविधायें ही मुझे मिल सकती हैं। अतः इस समय वह संकल्प त्यागना पड़ा है। मैं एक बार फिर बहनों को, जिन्होंने इसमें कुछ उपयोगिता देखी है, चि० भगवती को जिसके लिए यह पुस्तक लिखी गई, तथा उस बहन को जिसकी प्रेरणा इसके मूल में शुरू से अन्त तक दौड़ रही है, एक बार फिर हृदय से धन्यवाद देता तथा अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

सेंट्रल जेल,
अजमेर
६-५-३२

विनीत—
श्रीरामनाथ 'सुमन'

सुनिए—

दुनिया सुख का एक रास्ता खोजने में विकल है। वह धीरे-धीरे चलती है; वह दौड़ती है; वह ठहर कर सोचती है; वह रोती और अट्टहास करती है। वह सागर की छाती चीर कर पृथ्वी को नापती है; वह पहाड़ लाँघकर आकाश को छूती है! वह दूसरों से लड़ती है; वह दूसरों को गुलाम बनाती है; वह मनुष्य को पशु होनी सिखाती है! वह दूसरों से मेल करती है; वह दूसरों की सहायता करती है और दूसरों को मित्र बनाती है; वह पशु को मनुष्य—मनुष्य को मनुष्य बनाती है! ये सुख की खोज के साधन हैं—वह सुख के लिए विकल है; वह अधीर होकर शान्ति के लिए छटपटा रही है पर वह शान्त होकर ही शान्ति पा सकती है, यह बात उसे भूल गई है!

समाज का मूल व्यक्ति है और इसलिए समाज के व्यक्तित्व का मूल भी व्यक्ति का व्यक्तित्व है। इसलिए व्यक्ति का व्यक्तित्व अच्छा होने से, इसीलिए आत्म-शोध और आत्म-निरीक्षण की भावना उदय होने से व्यक्ति का विकास होता है और व्यक्ति का विकास होने से समाज का कल्याण होता है। समाज व्यक्ति का एक विकसित रूप है। भारतीय संस्कृति में सदा आत्म-सुधार पर ज़ोर दिया गया, इसका कारण यही ज्ञान था और यही ज्ञान था कि भारतीय संस्कृति आजतक, अपने चुने

रूप में, मौजूद है। ग्रीक या यूरोपीय संस्कृति में समाज-सुधार पर, सामूहिक विकास पर ज़ोर दिया गया, इसका कारण क्या था, हम नहीं कह सकते—शायद नहीं जानते। पर उसमें श्रम अवश्य था और उसी श्रम के कारण जब हम चारों ओर आँख दौड़ाते हैं तो वह संस्कृति दिखाई नहीं देती या दिखाई देती है तो बड़े ही बदले हुए या भयङ्कर रूप में!

लोग ये बातें भूल गये हैं, या देखकर भी देखना नहीं चाहते। प्रवाह का, भीड़ का धक्का ज़बर्दस्त होता है। न चाहने पर भी वह जिधर धकेल दे, उधर जाना पड़ता है। पर यही मानसिक गुलामी का आरम्भ है—यह व्यक्ति के पतन की पहली सीढ़ी है। यह विवेक को गिरवी रखकर लोकप्रियता खरीदने का प्रयत्न है;—यह हृदय को बेचकर बदले में शरीर लेने का उद्योग है! यह विष है; यह हमारी साधना के विरुद्ध है। हम कहते है, इससे सम्हलो;—यह हमारा नाश कर देगा।

जीवन भावनाओं में उड़ने का नाम नहीं है; जीवन प्रतिक्रिया में बहने का नाम नहीं है; जीवन लोकप्रियता प्राप्त करने का नाम भी नहीं है। जीवन सिद्धान्तों एवं भावों के संग्रथन और साधनाओं एवं विधियों के समझौते का नाम है!

इसलिए राष्ट्र के पुनर्जीवन के इस अवसर पर भारतीय संस्कृति के उद्धार की चेष्टा की पहली एवं अस्पष्ट साधना के समय, मैं कहना चाहता हूँ कि हमारी संस्कृति आत्म-सुधार के सिद्धान्त पर, व्यक्ति को लेकर, बनी थी और कुटुम्ब इस व्यक्ति के विकास की पहली पूर्ण इकाई ('यूनिट') है। इसलिए उस प्रयत्न से बढ़कर श्रेयस्कर कुछ नहीं है जिससे व्यक्ति और कुटुम्ब का सच्चा विकास हो; जिससे हमारा गृह-जीवन शान्तिमय, संयममय और प्रकाशमय हो।

इस गृह-निर्माण में नारी का प्रधान हाथ है। वह सुकन्या होकर व्यक्तिके 'सत्यम्'को प्रकट करती है; वह नारी होकर व्यक्ति के 'सुन्दरम्' को प्रकाशित करती है, वह माता होकर व्यक्ति के 'शिवम्' को रूप देती है। कन्या से नारी होने में व्यक्ति से कुटुम्ब में विलीन होने की साधना है। नारी रूप में वह व्यक्ति के अन्दर कुटुम्ब का विकास और प्रसार करती है। माता होकर वह कुटुम्ब के व्यक्तित्व में आत्म-विसर्जन की, त्याग और निवृत्ति की, समाज के विकास की भावना जगाती है। यह नारी का रहस्य है और यह हमारी संस्कृति के विकास-क्रम में उसकी साधना है!

इसलिए यदि भारत फिर दुनिया को अपनी आत्मा का दिव्य संदेश देना चाहे तो उसे पहले अपने नारी वर्ग का उत्थान करना पड़ेगा; पहले उसे देश में सुकन्यायें, सच्ची नारियाँ और सच्ची मातायें उत्पन्न करनी पड़ेंगी और तब उनके द्वारा, उनकी साधना, सहायता और तपस्या से व्यक्तिगत एवं गृह-जीवन को ऊँचा उठाकर सच्चे सुख एवं शान्तिमय जीवन में समाज का, संस्कृति का निर्दोष निर्माण हो सकेगा।

इन बातों का ध्यान रखकर ही यह पुस्तक लिखी गई है। इसे लिखने में मैंने समाज एवं समय की छोटी-छोटी आवश्यकताओं पर ज्यादा ध्यान नहीं दिया है; शुरू से अन्त तक मैंने केवल यह ध्यान रक्खा है कि मेरी बहनें किस प्रकार ऐसी बन सकती हैं जिससे हमारी संस्कृति का यह आदर्श पूरा हो। इसे लिखते समय मैंने यह ध्यान नहीं रक्खा है कि वे विदुषी बनें और अपने तेजस्वी एवं कौतूहल-भरे व्याख्यानों से हज़ारों श्रोताओं को चकित एवं स्तम्भित कर दें; मैंने इसका ध्यान नहीं रक्खा है कि वे देश एवं समाज की नेता बनकर उसका उद्धार करने वाली हों और अपने उपदेशों एवं भौतिक त्याग के दृश्यों से लाखों युवकों को

लज्जित और उत्साहित करें ! मैंने सिर्फ यह ध्यान रखकर इसे लिखा है कि वे दीन-हीन कन्यायें नहीं; भविष्य की आशा से भरी हुई, अपने अन्दर विश्वास रखने वाली कन्या बनें मैंने इस में यह ध्यान रक्खा है कि वे लज्जित, संकुचित अबलाएँ नहीं नारीत्व की कोमलता और प्रकाश से पूर्ण नारी बनें; मैंने इसमें यह ध्यान रखने की कोशिश की है कि वे कुण्ठित, मृतप्राय और प्राणहीन माताएँ नहीं, आत्म-विसर्जन की प्रतिमा और अपने हृदय के अमृत से भविष्य को—भावी संतति को खींचने वाली माता बनें!

मैं उस त्याग का उपासक हूँ जो बोलता नहीं! जो देशके प्लेटफार्मों पर नहीं जलता, गाँवों की झोंपड़ियों के अन्दर टिमटिमाता है! मैं उस विद्या को ज्ञान नहीं कहता जो बुद्धकाल की मूर्तियों की तिथि निश्चित करने के गौरव से गौरवान्वित है या जो शेक्सपियर के चरित्र-चित्रण की मीमांसा कर सकती है। मैं उस विद्या को ज्ञान कहता हूँ जो मनुष्य के अन्दर मनुष्यता विकसित करती, और उसे अन्दर की पशुता पर विजय प्राप्त करने योग्य बनाती है। मैं उस यश का भक्त नहीं हूँ जो दुनिया के बाज़ारों में चाँदी के चंद ठीकरे लुटा देने से, प्रतियोगिता के व्याख्यानों में लाखों की तालियों के बज उठने से या साहसिक कार्यों से दुनिया को चक्कर में डाल देने से प्राप्त होती है। मैं उस को यश कहता हूं जो एक दीन दुखिया के कलेजे में सुख को वह साँस उत्पन्न करती और कृतज्ञ मनुष्यता की उस स्मृति को जगाती है जिसमें आनन्दातिरेक से, स्नेह से आँखों में आँसू भर आते हैं; मुँह से बोली नहीं निकलती और हृदय अनुभव करता है कि दुनिया में मनुष्य भी हैं—मनुष्यता भी है!

इसलिए मैंने ऐसे ही त्याग, ऐसी ही विद्या और ऐसे ही यश का ध्यान रखकर इस पुस्तक के द्वारा बहनों के अन्दर वात्सल्य, शील और मातृत्व को जगाने की कोशिश की है।

पाँच

मैं जानता हूँ कि बहुत से उग्र सुधारक इसे पढ़कर चिढ़ेंगे, असंन्तुष्ट होंगे। कहेंगे—'देखो, आखिर तो पुरुष ही है न !' मैं जानता हूँ कि पुरानी लकीर के फकीर कहेंगे कि "वेद-शास्त्रों का कचूमर निकाल कर यह अपनी मनमानी कर रहा है।" मैं जानता हूँ कि मेरी छोटी-सी योग्यता और उससे भी छोटे अनुभव को जानने वाले मित्र कहेंगे कि "यह बुजुर्गों की तरह बोलता है—'पैट्रनाइज़िंग टोन' में बातें करता है; बहुत ऊँचा उठना चाहता है गो खुद उड़ने और एक फुट ऊँचा उठने की शक्ति नहीं है।" मैं इन बातों को सिर झुकाकर, गुरुजनों के आशीर्वाद की भाँति स्वीकार कर लेता हूँ। इसमें कोई शक नहीं कि मैं पुरुष हूँ; मैंने पुरुष का शरीर पाया है। इसमें भी कोई शक नहीं कि मैं प्राचीन ग्रंथों की इज़्ज़त करते हुए, उनका अपनी बुद्धि के अनुकूल ही अर्थ ग्रहण करने में समर्थ हूँ। और इस बात में तो बहस की गुंजायइश ही नहीं कि मैं बहुत ही दर्बल और बहुत ही छोटी बुद्धि का आदमी हूं। मेरे मित्र जितना जानते हैं, उससे मेरी कमज़ोरियाँ अधिक और मेरी शक्ति कम है पर इसके साथ ही मैं अपनी सारी दीनता के बल पर यह कह सकता हूं कि मेरा हृदय स्त्री-हृदय है; मुझे अपने भाइयों के और उससे भी ज़्यादा अपने पतन पर, कमज़ोरियों पर लज्जा आती है पर किसी बहन को गिरते—ग़लत रास्ते पर जाते देखकर मेरा हृदय, मेरा मन और मेरा शरीर कराह उठता है ! इसलिये नहीं कि मैं पुरुषों की बुराइयों की उपेक्षा करता हूं, इसलिए कि मैं सच्चाई से स्त्री को पुरुष से तोल में नहीं पर मोल में ज़्यादा कीमती चीज़ समझता हूँ; इसलिए कि मेरे नज़दीक पुरुष समर्थ हैं पर स्त्रियाँ पवित्र हैं, महान हैं !

इसीलिए और सिर्फ इसीलिए मुझे अधिकार है कि मैं जिन्हें भक्ति करता हूँ, उनके सामने अपना हृदय खोलकर रख दूँ जिससे वे देखलें कि एक भक्त का हृदय अपने देवता से क्या चाहता है ?

  

छः

आज स्त्रियों की समस्या बड़ी जटिल होती जा रही है। स्त्री-सुधार के नाम पर एक तहलका मचा हुआ है! दलबन्दियाँ हो रही हैं। गर्मा-गर्म व्याख्यान दिये जा रहे हैं; छोटे छोटे स्कूलों से लेकर बड़े-बड़े अखबारों और पुस्तकों तक में बहस चल रही है। इन विषयों से लोग समाज निर्माण की समस्याओं को हल करना चाहते हैं पर इस शब्द-जाल में मानसिक गुत्थियाँ और भी उलझती जाती हैं। हिन्दू-मुसलमान यह भूल गये हैं कि उन्हें इसी देश में रहना है—यह एक आश्चर्यकी बात है और इसीलिए उन्हें लड़ते देखकर सुधारकों और नेताओं को आश्चर्य होता है पर क्या इससे भी आश्चर्य की बात यह नहीं है कि पुरुषों और स्त्रियों की दलबन्दियाँ अलग-अलग स्वार्थों को लेकर हों—उन पुरुषस्त्रियों की, जिन्हें न केवल इस देश में, वरन् सारी दुनिया में सदा एक साथ रहना है!

यह दुःख की बात है और इससे भी अधिक दुःख की बात यह है कि हम दुःख की उत्तेजना में गलत मार्ग पर चल रहे हैं; और उस गलत रास्ते की दौड़ में ही होड़ हो रही है! पुरुष अपना सुधार करने और अपनी उन गलतियों एवं बुराइयों को दूर करने का जिनके कारण स्त्रियों में बदले की भावना जगती जा रही है, यत्न छोड़कर स्त्रियों के उद्धार में लग गये हैं और स्त्रियाँ पुरुषों के जुल्मों और अत्याचारों का रजिस्टर खोले बैठी हैं! इससे कुछ होने का नहीं; इससे कटुता और दोनों के बीच का अन्तर और बढ़ेगा।

इसका सीधा हल तो यह है कि पुरुष अपनी ओर—अपने कर्तव्य और आदर्श की ओर देखें; स्त्रियाँ अपने कर्तव्य और आदर्श की ओर देखें। पुरुष सच्चा पुरुष बने, स्त्री सच्ची स्त्री बने। पुरुष राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, ईसा, मुहम्मद, चैतन्य को अपना आदर्श बनायें; स्त्रियाँ

सीता, रुक्मिणी, सावित्री, सती, दमयन्ती, मीरा इत्यादि को आदर्श बनावें। तभी काम चलेगा। साहस, धैर्य, क्षमा, वीरता, गांभीर्य, ज्ञान, बल-पराक्रम इत्यादि पुरुष के सद्गुण हैं और दया, करुणा, स्नेह ममता, शील, लज्जा, मधुरता, विनय, सरलता, सन्तोष, सेवा इत्यादि स्त्री के सद्गुण हैं। दोनों अपने-अपने गुणों को अपनायें और एक-दूसरे के प्रति सहानुभूति रखकर, एक-दूसरे में मिलकर ऊँचा उठें। बस यही इसका सीधा उपाय है।

परन्तु अभी तक बड़े-बड़े पढ़े-लिखे लोग इसी पर बहस करते जा रहे हैं कि स्त्री स्वभावतः छोटे दर्जे की और प्रकृति द्वारा ही पुरुष के अधीन रहने के लिए बनाई गई है। इसमें पुराने ख़याल के लोगों का बहुमत है—पुराने ख़याल के लोगों से मेरा मतलब सिर्फ़ बड़े-बूढ़ों से नहीं है वरन् बहुत से नवयुवकों से भी है, जो समाज के फायदे, जाति के विकास के नाम पर स्त्रियों को पुरुषों से छोटा समझते हैं—यद्यपि इसमें कट्टर पुराने धर्मवादियों की संख्या ज़्यादा है। इसका कारण यह है कि पुरुष-हृदय स्वभावतः अधिकार-प्रिय, स्वार्थी, प्रवृत्तिमय और सन्देहशील है नहीं तो * वेद, महाभारत से लेकर संसार के प्रत्येक महापुरुष ने स्त्री का दर्जा पुरुष से श्रेष्ठ बताया है और उसे विश्वास एवं पूजा के योग्य † क़रार दिया है।

---

*"हे स्त्री! तू घर की मालिक बनकर जा। वहाँ जितने पुरुष हों सब के साथ रानी की तरह बात-चीत कर।" ऋग्वेद।

"कोई कहता है माँ बड़ी है, कोई कहता है बाप बड़ा है। पर असल में माँ बड़ी है, क्योंकि वह सन्तान-पालन-जैसा कठिन कार्य करती है और फिर भी प्रसन्न दिखाई देती है।" —महाभारत

†स्त्री प्रकृति की बेटी है। उसकी ओर कोप-दृष्टि से मत देख उसका हृदय कोमल होता है। उसपर विश्वास कर। —महाभारत

हिन्दू रमणी जन्म से ही त्याग करना सीखती है। वह निवृत्तिमयी है। पर अब हम रमणी को पुरुष—बालिका को बालक बनना सिखाने लगे हैं; यह हमारी झूठी सहानुभूति और भ्रान्ति है। जैसे खूब भोग-विलास से रहने और खाने-पीने वाला आदमी ज़रा-सा शाक-पात खाकर रहने एवं शरीर की चिन्ता न करने वाले सच्चे तपस्वियों एवं महात्माओं को देखकर उन्हें दुखी मानकर उनपर तरस खाता है वैसे ही हम सोचने लगे हैं कि इस संयम में रहना हिन्दू नारी के लिए बड़ा दुःखदाई है। नहीं, संयम में रहना उसने जन्म से सीखा था पर अब हम पुरुष अपने भोगमय, अधिकारमय असंयत जीवन से उसके मन में क्षोभ उत्पन्न करने लगे हैं। स्त्रियों के संयम से हमारे भोगों में बाधा पड़ती है इसलिए हम नक़ली सहानुभूति के द्वारा उन्हें उत्तेजित करके उनके संयम की बाँध तोड़ देना चाहते हैं! आजकल समाज-सुधारक और स्त्रियों का उद्धारकर्ता वह है जो अच्छे-अच्छे वस्त्राभूषणों से सजाकर, नये फ़ैशन के साथ, स्त्री को गाड़ियों पर लेकर निकले; उनके साथ सिनेमा जाय; चाय की पार्टियों में शामिल हो। मनोवृति यह नहीं है कि स्त्री ऊँचा उठे; उसे आराम मिले; वह अधिकार लेकर मनुष्य-जाति के लिए सेवा और गौरव की वस्तु बने; मनोवृत्ति यह है कि उसे अधिकार मिल जायँ और हमारी तरह वह भी भोगमयी प्रवृत्तिमयी हो जाय तो हमारे भोग-विलास में सहायता मिले, इसमें सरलता हो जाय!

इसका फल यह हुआ है कि समाज में स्नेहमूर्ति और पतिप्राणा

"स्त्री पुरुष की अर्द्धाङ्गिनी है; उसकी सबसे बड़ी मित्र है। धर्म, अर्थ और काम की मूल है। जो उसका अपमान करता है, काल उसका नाश करता है। वह घर का धन और शोभा है, इसीलिए सदा उसकी रक्षा करनी चाहिए। वह माता के समान पूजनीय है।"

—महाभारत

कुलवधुओं एवं त्यागी और तपस्विनी माताओं की संख्या दिन-दिन कम होती जाती है और चंचल रमणियों की संख्या बढ़ती जाती है ! जीवन की ऊपरी बातों और सुविधाओं पर अधिक ध्यान दिया जा रहा है और उन्हीं को लेकर लोग अस्थिर, चंचल हो रहे हैं। स्त्री-पुरुष के गुणों पर से, उनका जो सत्व है, उसपर से लोगों का ध्यान उठता जा रहा है ।

परन्तु स्त्रियों के मुख की ओर देखकर फिर भी आशा होती है । मन कहता है—"हिन्दू नारी ! तेरी वह शिक्षा एक दिन की शिक्षा नहीं है, एक भाव की भी शिक्षा नहीं है। तेरी वह शिक्षा सहज ही विलुप्त नहीं होगी" *

इसलिए एक ओर तो मैं स्त्रियों से कहता हूँ कि तुम अपने आदर्श की ओर देखो और दूसरी ओर पुरुषों से कहता हूँ कि अपना सुधार करो !

इस पुस्तक में इसी प्रेरणा की प्रबलता है जिसमे पुरुष-स्त्री का अंतर मिटे और दोनों एक-दूसरे के अधिकाधिक निकट पहुँचे !

× × ×

निश्चय ही इस पुस्तक में अपूर्णतायें होंगी—मनुष्य की प्रत्येक कृति में अपूर्णता होती है । कोई इसे देखकर कहेगा कि इसमें अमुक-अमुक बात और होनी चाहिए थी; कोई इसे देखकर कहेगा कि इसमें ये-ये बातें न लिखनी चाहिए थीं । मैं जानता हूँ इसमें अभाव हैं—वे अभाव मेरी अयोग्यता के कारण भी रह गये हैं और इसलिए भी कि पुस्तक, आशा से अधिक, बढ़ने लग गई—जो न तो प्रकाशक को, न मुझे प्रिय था क्योंकि

---

* बंगला से (नारी-उपदेश)

बड़ी पुस्तकों के प्रसार एवं प्रचार में बड़ी बाधायें आ जाती हैं। मुझे संतोष इसी बात का है कि चाहे मैंने अपनी योग्यता से बड़ा काम ले लिया हो पर उसे सचाई के साथ करने की चेष्टा की है और मेरी सम्मति में दुनिया में, और विशेषतः स्त्रियों की दुनिया में, योग्यता की अपेक्षा सच्चाई ज़्यादा अच्छी चीज़ है।

सच्चाई के सम्बन्ध में तो इसी से जाना जा सकता है कि मैंने इस पुस्तक का अधिकांश अपनी छोटी बहन भगवती को लिखा है जो विवाह के योग्य हो गई है। उसे—अपनी सगी बहन को जैसा मैं बनाना देखना चाहता हूँ, वैसा ही मैंने लिखा है। इसलिए इसे पढ़कर कोई मुझपर ईर्ष्या-द्वेष का, झुठाई का इलज़ाम नहीं लगा सकता; अयोग्यता का भले ही लगा ले जिसे मैं पहले ही स्वीकार कर चुका हूँ।—

मुझे आशा है कि इस पुस्तक से बहनों का उपकार होगा और यदि मेरी आशा पूरी हुई तो मैं अपने को धन्य समझूँगा।

बहनों से एक प्रार्थना है और वह यह कि इस पुस्तक को पढ़ते समय इसका विरोध करने और इसका जवाब देने का ध्यान भुलादें; न इसकी बातों को बिना विचारे मान लें; वे इसे केवल गंभीरता-पूर्वक विचार करने के खयाल से, इसमें कोई अच्छाई हो तो उसे लेने के लिए ही पढ़ें।

बस ——— ।

हटुगाडी. }
२८-२-३१ }

श्रीरामनाथलाल 'सुमन'

पुस्तक की रामकहानी

इस पुस्तक की रामकहानी भी बड़ी विचित्र है। पारसाल, सत्याग्रह-आन्दोलन शुरू होने के पहले, जब मैं कुछ दिनों के लिए छुट्टी पर, काशी जाने लगा तो मैंने अपनी दूसरी छोटी बहन (चिरं० भागीरथी) से पूछा कि तुम्हारे लिए काशी से क्या लाऊँ ? उसने कुछ सोचकर कहा—"*मेरे योग्य*, स्त्रियोपयोगी पुस्तकें ले आना।" आते समय मैंने, काशी में, कई बड़े-बड़े पुस्तक-विक्रेताओं से तलाश कराया; प्रकाशित स्त्रियोपयोगी पुस्तकें देखीं पर मेरा मन किसी से न भरा। उधर भगवती को भी मैं उसके भावी जीवन के लिए दूर बैठे-बैठे तैयार करना चाहता था; इधर बहुत दिनों से मेरी इच्छा भी स्त्रियों के विषय में एक पुस्तक लिखने की थी। स्त्रियोपयोगी पुस्तकों का हिन्दी में अभाव देख इस इच्छा को उत्तेजना मिली। उधर बिहार की एक पढ़ी-लिखी बहन से भी, कुछ दिन पहले स्त्री-समस्या पर पत्र-व्यवहार हुआ था जिसकी बहुतेरी स्मृतियाँ हृदय में बनी हुई थीं। इसलिए दिन-दिन पुस्तक लिखने की इच्छा प्रबल होती गई पर मेरे लिए भाई से भी अधिक हरिभाऊजी के जेल चले जाने पर 'त्यागभूमि' का बोझ बढ़ जाने एवं घरेलू कठिनाइयाँ अधिक

हो जाने के कारण समय न मिल सका और वह इच्छा मन में ही दबी रही।

इस बार भैयादूज के कुछ दिन पहले मैंने भगवती को इस विषय में कुछ पत्र लिखने का विचार किया। इसी समय स्वास्थ्य ख़राब हो जाने से मुझे प्रयाग होते हुए काशी जाना पड़ा। वहाँ मैंने अपने प्रिय मित्र श्री प्रफुल्लचन्द्र ओझा 'मुक्त' (ओझा-बन्धु आमश्र, प्रयाग) को दस-बीस पन्ने जो पत्र-रूप में लिखे हुए थे, दिखाये। उन्हें और उनके पिता साहित्याचार्य श्री पं० चन्द्रशेखर शास्त्री को वे बहुत पसन्द आये और उन्होंने उसे अपने यहाँ से प्रकाशित करना स्वीकार कर लिया। मैंने यह भी सोचा कि इस बार भैयादूज के समय चिरं० भागीरथी को यही पुस्तक उपहार में देनी चाहिए। उस समय भैयादूज को केवल पन्द्रह दिन रह गये थे। मैंने मुक्तजी से कहा आप आठ-दस दिन में पुस्तक जैसे हो छपवा दीजिए। उन्होंने इसे भी स्वीकार कर लिया। इस समय तक पुस्तक की केवल ३ फार्म की कापी तैयार थी। अजमेर पहुँचते ही रात-दिन परिश्रम कर ४ दिन में सब कापी भेज देने का वादा कर मैं लौटा पर मुश्किल से ७ फार्म की कापी तैयार हुई थी कि मेरे दाहिने हाथ में फोड़ा निकल आया जिससे लिखना एक-दम बन्द हो गया। ७ फार्म वहाँ छपकर पड़े रहे।

इधर भैया-दूज बीत जाने पर मेरा उत्साह ठण्डा पड़ गया; जिस अवसर के लिए सोचा था वह तो बीत ही गया था—मन में आया, अब धीरे-धीरे लिखेंगे। धीरे-धीरे काम चलता रहा। पीछे अपने विवाह की झंझटों में तथा यात्रा के कारण छुट्टी कम मिली। इस तरह पुस्तक पूरी होने में बड़ी देर हो गई।

इधर सस्ता-मण्डलवालों ने पुस्तक को पसन्द करके अपने यहाँ से निकालने का आग्रह किया। तथा मुझे भी कई व्यक्तिगत कठिनाइयों के कारण यह प्रस्ताव पसन्द आ गया। 'मुक्त' जी इस पुस्तक का विज्ञापन तक कर चुके थे अतः बड़े संकोच के साथ मैंने उनके सामने अपनी कठिनाई पेश की। इस पुस्तक के प्रति उनकी ममता थी किन्तु मेरी कठिनाई पर और उससे भी अधिक हम लोगों में जो निजी बन्धु-भाव चला आया है, उस-पर ध्यान देकर उन्होंने तथा उनसे भी अधिक प्रेमपूर्वक उनके पिता श्री शास्त्रीजी ने मुझे आज्ञा दे दी। फल-स्वरूप आज यह पुस्तक प्रकाशित हो रही है।

× × ×

इस पुस्तक के लिखने में मुझे अनुज-तुल्य श्री मार्तण्ड उपाध्याय, अनुज श्री श्यामलाल, श्रीमती अंजना बहन, चिरं० भागीरथी इत्यादि से बड़ा उत्साह प्राप्त हुआ है तथा दोनों बहनों ने समय-समय पर अनेक विषयों पर अपनी राय देकर मेरी सहायता की है, जिसके लिए उन्हें धन्यवाद है।

यद्यपि भैया-दूज बीते महीनों हुए पर मैंने अब भी इसे भैया-दूज का ही उपहार समझकर अपनी चिरं० छोटी भगिनी भागीरथी को भेंट किया है।

विनीत—

श्री रामनाथलाल 'सुमन'

देखिए—

प्रथम खण्ड

कन्या

द्वितीय खण्ड

नारी

तृतीय खण्ड

माता

चतुर्थ खण्ड

हवा किधर बह रही है ?

कुछ सच्चे पत्र

उपसंहार

भाई के पत्र

[विवाह-समस्या और स्त्री-जीवन]

लेने की अपेक्षा देने में विशेष आनन्द है ! धन्य है वह स्त्री जो पुरुष का प्रेम लेने की अपेक्षा अपने हृदय का प्रेम उसे देती है ।

"Read not to contradict and confute; not to believe or take for granted; not to find talk and discourse but to weigh and consider !" —Bacon.

× × ×

"विरोध और खण्डन करने के लिए इसे मत पढ़ो; न इस पर विश्वास करके इसे ज्यों का त्यों मान लेने के लिए पढ़ो; विवाद एवं बहस-मुबाहिसे के लिए भी इसे मत पढ़ो। सिर्फ़ तौलने और गंभीरतापूर्वक विचार करने के लिए इसे पढ़ो।" —बेकन

हमारी अवस्था

अजमेर

२०–११–३०

प्यारी बहन भागीरथी,

हम दोनों ने कितनी ही बार एक जगह बैठकर समाज और देश की समस्याओं पर विचार किया है और दोनों सदा इस निष्कर्ष पर पहुँचते रहे हैं कि हमारे पतन की नींव उससे कहीं ज्यादा गहरी है, जितना हममें से अधिकांश समझ रहे हैं। इसलिए प्रत्येक क्षेत्र में बाहरी सुधारों के लिए जो आवाज़ उठाई जा रही है, उसीसे काम न चलेगा। जब जड़ में घुन लग रहा हो, डालियों की काँट-छाँट-व्यर्थ सिद्ध होगी।

यह सत्य है कि राजनैतिक दृष्टि से हम गुलाम हैं; हमारा अपना देश नहीं, हमारा अपना शासन नहीं। हम स्वाधीनता-

राजनैतिक

पूर्वक उस देश में भी अपने विचार प्रकट करने के अधिकार से बंचित हैं, जिसकी मिट्टी में हमारे पूर्वजों की हड्डियाँ गड़ी हैं और जिसकी कहानियों में हमारी कितनी ही बहनों और माताओं के रक्त की स्मृतियाँ जल रही हैं! स्वदेश-प्रेम ने उस भीषण अपराध का रूप धारण

किया है, जिसके लिए कितनी ही माताएँ पुत्रहीना हो गईं; कितनी ही बहनें भाइयों की याद में रोती हैं और कितनी ही बहुएँ वैधव्य के रूप में गुलामी की पीड़ा को जगाये हुए आँसू बहा रही हैं। बहनें जेल-यातनाएँ सह रही हैं; बच्चे 'बन्देमातरम' की पुकार के कारण बेतों से पीटे जा रहे हैं।

यह भी सत्य है कि आर्थिक दृष्टि से हमारा अस्तित्व शून्य-सा है। व्यापार-व्यवसाय विध्वंस-सा हो गया है; खेती को

आर्थिक

दुर्भाग्य के पशु ने चर लिया है। जहाँ घी-दूध की नदियाँ बहती थीं, वहाँ आज विदेशी 'घास का घी और जमाया दूध भी खुशहालों को ही नसीब है! जहाँ के कपड़े से यूरोप की रमणियों का शृंगार होता था, वहाँ के बच्चों के शरीर पर विदेशी कपड़ा भी नाममात्र को ही दिखाई पड़ता है! मैंने अपनी आँखों से एक ही फटी-गुँथी सुहाग की साड़ी पहनकर काम चलाने को मजबूर होने वाली बहुओं को देखा है। स्नान के समय इन्हें आधी साड़ी भिगोकर करुणा की सजीव मूर्ति की तरह तालाबों से 'घर' लौटते देखा है। बम्बई और कलकत्ता की सड़कों पर पाँव और सिर को मिलाकर भगवान की छत्र-छाया में सड़क पर पड़े रहने वाले कितने ही भाइयों को देखा है और उन माँओं को भी

देखा है, जिनके कलेजे के टुकड़े दो-दो दिन की भूख से व्याकुल होकर उनका स्तन चूसते हैं, पर कुछ नहीं मिलता ! वमन किये हुए अन्न को तथा पशुओं की लीद से निकले दानों को खाकर जिन्दगी बिताने वालों का हमारे देश में अभाव नहीं है। भूख की यंत्रणा के कारण अभी कुछ ही दिन पूर्व कलकत्ता में एक शिक्षित पति-पत्नी एक साथ जहर खाकर मर गये और एक माँ से जब अपने बच्चे का तड़पना न देखा गया तो उसे उसने विष देकर मार डाला !

फिर हमारे शरीर की ही क्या अवस्था है ? पचीस वर्ष के बाद हमारे घरों की स्त्रियों की गिनती युवतियों की जगह बड़ी-बूढ़ियों में होने लगती है। दो सन्तान हुई कि कहीं प्रसूति-ज्वर धर दबाता है; कहीं क्षय हो जाता है; कहीं कमर-दर्द शुरू हो जाता है। और हमारे युवक ? ये तो जीते हुए मुर्दे हैं। मलेरिया से घुनी हुई छातियाँ, बैठी हुई आँखें, टूटे हुए बाजू, सूखे हुए निस्तेज चेहरे—स्त्रियों की भाँति मांग काढ़े हुए—ये हमारे भावी समाज के निर्माता युवक हैं ? ये, जिनका हृदय मलिन है, जिन्हें अभी से वासना की साँपिन ने डँस लिया है; जो किसी सुन्दरी बहन को सामने से जाते देखते हैं तो ग़ैरत को धो-बहाकर लोलुप आँखों से उसको निगल जाना चाहते

शारीरिक

हैं ! हमारे बच्चों को देखो और अंग्रेजों के बच्चों से उनको मिला लो ! ये डरे, सहमे, अधभूखे और वे निर्भय, हँसमुख, हृष्ट-पुष्ट !

बुद्धि और विवेक का हाल यह है कि जिन्होंने असभ्य संसार को सच्चे ज्ञान के रास्ते पर चलाया; जिन्होंने अनेक नई विद्याओं का आविष्कार किया; जिन्होंने संसार को चिरन्तन सुख का मार्ग बताया, आज उनके बच्चे 'मार्सडन' और 'स्मिथ' साहब की बातों को वेदवाक्य समझते हैं। आज उनकी बौद्धिक गुलामी इतनी बढ़ गई है कि जब तक यूरोपवाले कह न दें, हमारे बड़े-बड़े विद्वान किसी बात को प्रामाणिक मानने के लिए तैयार नहीं। जब मिस्टर स्पेण्डर या पादरी होम्स महात्मा गाँधी को महापुरुष कहेंगे, तब हमारे कान पर भी जूँ रेंगेगी !

बौद्धिक

और सामाजिक क्षेत्र में ? बहन, तुम्हें मैं क्या बताऊँगा ? तुम हिन्दू नारी इसे मुक्त-पुरुषों से कहीं ज्यादा अच्छी तरह समझती हो। युद्ध में निकलकर लड़नेवाली स्त्रियाँ आज परदे के अन्दर विलास की पुतलियाँ बन गई हैं। इस खिलौने को देखकर हँसी आती है ! कहीं कान छिदे हुए, कहीं नाक में नथ लटकती हुई, गले गहनों से कसे हुए, पाँवों की उँगलियाँ बिछिया

सामाजिक

के बन्धन में खून की गति रुक जाने से सूख गई हैं; पाँव गहनों के बोझ एवं रगड़ से काले पड़ गये हैं। गहनों के लिए शरीर छेदने को तैयार ये स्त्रियाँ, और उन्हें इस तरह कामुक दृष्टि से देखकर वासना-रंजन करनेवाले पुरुष, दुनिया में क्या करेंगे ? फिर कहीं माता गोद में लेकर 'बच्चों' का ब्याह करा रही है, कहीं बुढ़ऊ नक़ली दाँत लगाये ज़रा-सी लड़की को अपनी हठधर्मी के हवन-कुण्ड में ढकेलकर संसार से पार उतरने को तैयार हैं ! कहीं लड़की का मोल-भाव हो रहा है, कहीं विधवाएँ झिड़की जाती हैं। कहीं सास बहू को झाड़ू दिखा रही है; कहीं बहू अपने पति को सास के विरुद्ध भड़का रही है। कहीं स्त्री को श्मशान पर फूँककर लौटते ही सगाई की बातचीत चल रही है और कहीं एक युवती विधवा, गृहस्थ के अभिशाप की भाँति, अपने जीवन से ऊबकर आत्म-हत्या की चेष्टा में है।

पर

बहन ! यह तो ऊपर की अवस्था मात्र है, यह तो तफ़सील है! यह पौधे के सूखे हुए फूलों, मुरझाती हुई टहनियों और सूखकर गिरती हुई पत्तियों की कहानी है। तुमको मैंने समझाया था और तुमने स्वयं भी कहा था कि असली रोग दूसरा है। कौन कहता है कि ये बुराइयाँ दूर न हों या इनकी उपेक्षा की जाय ? ये बहुत भयंकर बुराइयाँ हैं, इन्हें

मूल रोग

दूर करने का यत्न श्रेयस्कर है; पर परदे के अन्दर, जड़ के नीचे, क्या हो रहा है इसे देखना क्या सबसे ज़रूरी नहीं ? जिस नींव पर पौध खड़ा किया गया है, जिससे उसके सब अंगों का जन्म हुआ है, उसके रोग का निदान क्यों न किया जाय ? समाज के, राष्ट्र के जीवन का जो मूल सोता है, उसमें जब तक जल न रहेगा, हम कभी पनप नहीं सकते। मनुष्य के जीवन की जो नींव है इसमें आज घुन लग गया है ! हर चीज को अपने-अपने स्थान पर ठीक-ठीक रखकर उससे काम लेने, उसका उचित उपयोग करने को बुद्धि नष्ट हो गई है, जीवन की समतुलता—बैलेंस—झुक गई है। सहानुभूति, जो प्रत्येक प्रकार की सामाजिक भावना की जननी है, नष्ट हो गई है। आत्म-वंचना ने उसका स्थान ले लिया है। इसका फल यह हुआ है कि व्यक्तिगत सदाचार से मनुष्य गिर गया है और इसीलिए आज घरों में स्त्री पुरुष को, पुरुष स्त्री को दोष देता है। कुटुम्ब भारतीय समाज की इकाई (यूनिट) है और व्यक्ति कुटुम्ब की इकाई है; इसलिए समाज की शान्ति और पवित्रता के लिए कौटुम्बिक शान्ति और घरेलू तथा व्यक्तिगत जीवन की पवित्रता आवश्यक है। जबतक प्रत्येक व्यक्ति, प्रत्येक स्त्री-पुरुष अपने कर्तव्य की ओर ध्यान न

देगा और अपने कर्तव्य का पालन करते हुए भी दूसरों के प्रति अपनापन, सहानुभूति, उदारता और स्नेह का अनुभव न करेगा, राजनैतिक या सामाजिक किसी भी क्षेत्र में सच्ची उन्नति कभी नहीं हो सकती। व्यक्तिगत जीवन की पवित्रता से ही समाज के सामूहिक कल्याण का जन्म होता है, इसलिए बिना उसके, किसी भी प्रकार का सुधार-सम्बन्धी प्रयत्न बहुत दूर तक सफल नहीं हो सकता। थोड़े में इसका मतलब यह है कि व्यक्तिगत सदाचार और कौटुम्बिक शान्ति के बिना समाज का सच्चा कल्याण संभव नहीं है।

जब हम कुटुम्ब को समाज की इकाई कहकर पुकारते हैं तो कुटुम्ब शब्द से हमारा अभिप्राय साधारणतः 'माता-पिता एवं सन्तान' (या पति-पत्नी और सन्तान) से होता है। इन तीनों पर ही समाज का भविष्य और हिन्दू संस्कृति का निर्माण निर्भर करता है। इसलिए चिरं० भगवती को को मैंने जो पत्र लिखे हैं या आगे लिखूँगा उनमें इस बात पर विचार किया गया है या करना चाहता हूँ कि लड़की एवं लड़के का जीवन किस तरह ऐसा बन सकता है कि विवाह की वेदी पर वे एक-दूसरे के लिए त्याग करना, एक-दूसरे के सुख-दुःख को अपना सुख-दुःख समझना सीखें; क्योंकि विवाह ही वह सूत्र है, जो उन्हें सुन्दर और कल्पनामय

पर गैरजिम्मेदार जीवन से अलग हटाकर माता-पिता के कर्तव्य, त्याग, सेवा और जिम्मेदारी के जीवन में बदल देता है। आज शिक्षित स्त्री-पुरुषों में अधिकार के लिए जो होड़ चल रही है और इससे गृहस्थ की सुख-शांति नष्ट होने का जो भय है, उससे हम कैसे बच सकते हैं और दोनों का जीवन दोनों के लिए कैसे परस्पर अवलम्ब का जीवन हो सकता है, इसपर विचार करना आवश्यक है।

आशा है तुम इस सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करोगी। तुम्हारे अनुभव मेरे लिए अत्यन्त मूल्यवान हो सकते हैं। आशा है, तुम अच्छी हो।

तुम्हारा भाई
'सुमन'

भाई के पत्र

[स्त्री-जीवन और विवाह-समस्या]

[१] —— कन्या

"जब मैं किसी देवी को देखता हूँ तो ऐसा मालूम होता है जैसे ईश्वर के सामने खड़ा हूँ! तू उसकी अन्तिम कारीगरी है! तू हृदय की शान्ति है! प्यारी लड़की! तू आज ऐसी है, बड़ी होकर पता नहीं क्या होगी?"

—अलेक्ज़ेण्डर स्मिथ

शिशु-जीवन

शिशु सृष्टि की एक बड़ी मनोहर वस्तु है। बच्चों से अधिक पवित्र, कोमल, आशापूर्ण और निरीह पदार्थ और क्या हो सकता है ? जब किसी छोटे बच्चे को धूल में बड़ी गंभीरता के साथ घर उठाते और भोजन बनाते देखता हूँ; जब उसे बड़े सरल और निर्दोष भाव से ऐसे-ऐसे प्रश्न पूछते देखता हूँ, जिन्हें कहने में हम बड़ों को लज्जा आ दबाती है; जब एक बच्चे को अपनी माँ से ही विवाह के लिए हठ करते देखता हूँ या जब एक बहुत छोटे बच्चे को साँप से लेकर चन्द्रमा तक सबको हाथ से पकड़कर गोद में ले लेने को उत्सुक पाता हूँ तो इस कलहपूर्ण संसार की अशान्ति से भागकर इन बच्चों में ही मिल जाने की इच्छा होती है। ऐसा मालूम होता है मानो इस स्वार्थ और द्वेष की दुनिया में जब जीव जीव की हत्या और विनाश में आनन्द अनुभव करता है, आश्रय का एक मात्र स्थान बचपन का क्रीड़ा-स्थल ही है। इनमें शत्रु-मित्र का, जाति-पाँति का भेद-भाव नहीं; ये देश-काल से परे हैं। इन्हें संसार की हवा नहीं लगी, मानो स्वर्ग से खेलते-खेलते सजीव खिलौने पृथ्वी पर उतर आये हों !

वह निर्दोष शिशु !

निश्चय ही बच्चों से बढ़कर निर्दोष हृदय और कहाँ मिल सकता है ? तभी तो ईसा ने बड़े व्यथातुर शब्दों में भगवान्

से हाथ जोड़ कर कहा था—"पिता! तू मेरा सारा महत्व, शक्ति, पवित्रता और यश ले ले और बदले में मुझे एक छोटा बच्चा बना दे।"

किन्तु यह एक आश्चर्य और दुःख की बात है कि जो शिशु इतना पवित्र है और जिसके समाज में स्वतः कोई ईर्ष्या-द्वेष तथा भेद-बुद्धि नहीं, उसके जीवन को भी अपने अविचार, स्वार्थपरता एवं आदर्शहीन व्यावहारिकता के कारण हमने जहरीला बना दिया है। बच्चों में स्वतः बालक-बालिका के प्रति सम-भाव और सम-बुद्धि होती है। एक बच्चा जब दूसरे बच्चे को प्यार करने लगता है तब यह नहीं देखता कि वह लड़का है या लड़की। वह तो उस निर्मल प्रेम की अज्ञात भावना से आकर्षित होता है, जो मनुष्य में मनुष्यता को खोजती है, और कुछ नहीं। इसलिए समाज में लड़की की आज जो दुरावस्था है और उसके महत्व का ध्यान लोगों को नहीं रह गया है, उसका कारण माता-पिता एवं कुटुम्बवालों की भेद-बुद्धि मात्र है। वे लड़की होते ही नाक-भौं सिकोड़ने लगते हैं। इतना ही हो तो भी गनीमत है, पर लड़कियों के पालन-पोषण में भी लड़कों की अपेक्षा भेद रक्खा जाता है। जरा भी रोने पर, जरा भी मचलने पर, उसे माता तक झिड़क देती है। लोग समझते हैं कि बच्चे कुछ नहीं समझते, पर यह विचार सर्वथा भ्रमपूर्ण है। यह ठीक है कि वे भाषा और शब्दों का पूरा-पूरा अर्थ नहीं जानते, पर वे भाव और कुभाव को, चेहरे पर उदित होनेवाले परिवर्तनों को, पहचानने में बहुत तेज होते हैं।

यह भेद भाव !

आश्रय देनेवालों के भावों की नक़ल करने की शक्ति बच्चों में बहुत बड़ी मात्रा में मौजूद रहती है। उनपर उनके पालकों के व्यवहार और मनोभावों का बड़ा प्रभाव पड़ता है। भविष्य में वे जो कुछ हो सकते हैं, उसका बीज इसी कोमल अवस्था में पड़ता है। इसलिए लड़कियों के प्रति अवज्ञा का भाव प्रकट करके न केवल हम उनके साथ अन्याय करते हैं, वरन् अपनी सन्तान के हृदय में भी अवज्ञा और उपेक्षा का बीज बोकर इस दुःसह और अवांछनीय परिस्थिति को सदा के लिए दृढ़ और स्थायी कर जाते हैं। यह ठीक है कि वर्तमान समाज में लड़कियों के प्रति उदासीनता का जो भाव पाया जाता है, उसका कारण आर्थिक स्वार्थपरता है। हम सोचते हैं कि लड़का तो बड़ा होकर हमें खिलाये-पिलायेगा, हमारी सेवा करेगा; उसके द्वारा कुटुम्ब की वृद्धि होगी और उसका यश अपना यश होगा, लड़की तो कुछ दिनों बाद पराये घर की हो जायगी पर इस स्वार्थपरता के मूल में बुद्धि और विवेक तो जरा भी नहीं है। पुरुष तो आत्म-प्रसारक प्राणी है; वह तो केवल अधिकार एवं अपने अन्दर की प्रभुत्व-भावना की तृप्ति चाहता है; वह ऐसी भूल करे तो आश्चर्य की बात नहीं; पर माताएँ, जिन्हें लड़की जनने में उतना ही कष्ट होता है, जितना लड़का जनने में और जिनके शरीर के खून से लड़की और लड़का दोनों के शरीर बनते हैं, यह कैसे भूल जाती हैं कि वे अपनी माताओं के पेट से लड़की के रूप में ही जन्मी थीं और यदि लड़कियाँ न होंगी तो लड़के कहाँ से होंगे ?

इसलिए, यदि हम ज़रा भी विचार से काम लें तो हमको मालूम होगा कि समाज के संचालन में और उसे ऊँचा उठाने में बालकों की अपेक्षा बालिकाओं का महत्व अधिक है। एक बालिका के अच्छे, गुणवान और सहृदय होने पर सैकड़ों प्राणियों का भविष्य और सुख-दुःख निर्भर करता है, क्योंकि बालिका ही आगे जाकर गृहणी और फिर माता होती है तथा उसके विचार एवं आचरण का कुटुम्ब और समाज की शान्ति, उन्नति और निर्माण पर बड़ा गहरा असर पड़ता है। एक लड़के के बिगड़ जाने, खराब निकल जाने और अशिक्षित एवं गुणहीन हो जाने से समाज की उतनी हानि नहीं हो सकती, जितनी एक लड़की के कलहप्रिय, असहिष्णु एवं खराब निकल जाने से हो सकती है। इसीलिए हमारे धर्मशास्त्रों में लड़कियों का स्थान बहुत महत्व का माना गया है। अब भी विशेष अवसरों पर कुमारी कन्याओं की पूजा की जाती है। वे देवी और लक्ष्मी-रूप मानी जाती हैं। फिर आजकल जब शिक्षित और विचारवान युवक अपने लिए योग्य गृहणियों तथा सच्ची सहधर्मिणियों की आवश्यकता अनुभव करने लगे हैं, अच्छी लड़कियों का महत्व दिन-दिन बढ़ता जाता है। अब लड़कियों के माता-पिताओं को अपना कर्तव्य समझना चाहिए। और यदि स्वार्थ की दृष्टि से भी देखें, तो लड़की के विनम्र, सुशील, आज्ञाकारिणी, सेवापरायण एवं वफ़ादार होने से पति-गृह तो सुधरता और स्वर्ग बन ही जाता है, किन्तु पितृ-गृह का भी यश और आदर

बालिकाओं का सामाजिक महत्व

बढ़ता है। लड़की पराये घर जानेवाली है, इस विचार से हमें लड़कों की अपेक्षा उसके लालन-पालन एवं शिक्षा-दीक्षा में ज्यादा ध्यान देना चाहिए। अन्यथा लड़की का जीवन नष्ट होगा, पति के गृह में अशान्ति बढ़ेगी एवं लड़की के पिता की बदनामी भी कुछ कम न होगी। स्वार्थ या परार्थ, जिस दृष्टि से देखें, भावी गृहणी और माता होने के कारण लड़के की अपेक्षा, कुटुम्ब और समाज दोनों की रचना में, लड़की का महत्व और मूल्य अधिक है। वे समाज की माताएँ हैं। बालक कितना ही गुणी हो, मातारूपी बालिका का शिशु है और जीवन में बिना उसके सहयोग के वह अपूर्ण—निकम्मा—रह जाता है। यदि हम अपने देश का पिछला इतिहास देखें तो मालूम होगा कि त्याग, बलिदान, श्रद्धा और वफादारी में स्त्रियाँ सदा पुरुषों से आगे रही हैं। सती, सावित्री, सीता, विदुला, दमयन्ती, चिन्ता इत्यादि सती नारियाँ हिन्दू जाति के इतिहास में हीरे की तरह चमक रही हैं। जब हम राम का ध्यान करते हैं, तब सती और तेजस्विनी सीता की याद तुरन्त आ जाती है। जब हम शिव का स्मरण करते हैं तब सती का तेज से चमकता हुआ चेहरा आँखों में नाचने लगता है। इन दोनों सतियों के सम्मुख, न्याय कीजिए तो, राम और शिव बहुत फीके पड़ जाते हैं। इसलिए प्रत्येक हिन्दू माता-पिता को लड़की होने पर न केवल प्रसन्न होना चाहिए, वरन् उन्हें अत्यधिक गौरव का अनुभव करना चाहिए कि भगवान् की कृपा से उन्हें ऐसी चीज मिली है कि यदि ठीक तरह से उसे रखा जाय

और उसका लालन-पालन किया जाय तो समाज के उत्थान और व्यक्तिगत एवं कौटुम्बिक सुख के लिए उससे बढ़कर दूसरी चीज दुनिया में नहीं हो सकती। जैसे कली खिले हुए फूल और फल का संक्षिप्त रूप है, वैसे ही लड़की माता का संक्षिप्त संस्करण है और जैसे कली फल का अविकसित रूप है वैसे ही लड़की सन्तान की आदि प्रतिमा है। इस प्रकार एक लड़की के अन्दर स्त्रीत्व, मातृत्व तथा शिशुत्व तीनों बीज रूप में वर्तमान रहते हैं।

लालन-पालन और शिक्षा

इसलिए बहनो! यदि तुम संसार में अपनी मृत्यु के बाद योग्य प्रतिनिधि छोड़ जाना चाहती हो, जिन्हें देखकर लोगों को तुम्हारी याद आती रहे, जो अपने जीवन को सार्थक करें, श्रद्धा-भक्ति से गुरुजनों की सेवा करें, सच्ची सहधर्मिणी होकर पति के कार्यों में हाथ बटावें एवं सच्ची माता के रूप में समाज को योग्य, सदाचारी एवं आदर्श सन्तति भेंट करें तो तुम्हारा कर्तव्य है कि तुम न केवल अपने मन से लड़कियों के प्रति अवज्ञा के भाव दूर कर दो, वरन् यदि कन्या उत्पन्न हो तो भगवान की विशेष कृपा एवं देन समझकर उन्हें सब प्रकार भावी जीवन के योग्य बनाओ।

कन्या की शिक्षा

पिछले अध्याय में यह बताया जा चुका है कि कन्या का समाज में क्या महत्व है और उसका स्थान कितना ऊँचा है। इससे यह नतीजा सहज ही निकलता है कि प्रत्येक माता-पिता अथवा अभिभावक को कन्या की शिक्षा में बड़ी सावधानी रखने की आवश्यकता है।

मृगतृष्णा के पीछे!

हमारे देश की अवस्था ऐसी गिर गई कि हम प्रत्येक क्षेत्र में अपना ठीक रास्ता भूल गये हैं या भूलते जा रहे हैं। सैकड़ों वर्षों की गुलामी ने हमारी मौलिक प्रतिभा और चिन्ताशीलता नष्ट कर दी है और हमें बिना सोचे-समझे सिर्फ नक़ल करने का आदी बना दिया है। इससे सबसे बड़ी हानि तो यह हुई है कि हमारी संस्कृति का आदर्श ही लुप्त होता जाता है! इमारत तो ढह गई है; साथ ही नींव में भी, जिस पर कभी हम फिर भविष्य का महल उठा सकते थे, घुन एवं कीड़े लग गये हैं। जो कुछ हमारा अपना था, वह सब हम भूलते जा रहे हैं। आज-कल मानव-जीवन का उद्देश्य ही कुछ अस्थिर-सा हो रहा है। हमारे जीवन का, हमारी सभ्यता का उद्देश्य और और आदर्श यह था कि विवेक एवं संयम के सहारे मनुष्य के अन्दर की पशुता को दूर करके उसमें देवत्व का विकास किया जाय और क्षणस्थायी शारीरिक सुविधाओं की

अपेक्षा मानसिक एवं आध्यात्मिक विकास के ऊपर ज्यादा ध्यान देकर निरतिशय—सर्वाधिक—आनन्द की खोज एवं प्राप्ति की जाय। इसलिए प्राचीन समय में हमारी शिक्षा के उद्देश्य एवं प्रकार भी भिन्न थे। ब्रह्मचारी विद्यार्थी जंगलों में, पशुओं के साथ घूम-घूमकर विश्वप्रेम का पाठ पढ़ते और सांसारिक क्षुद्र महत्वाकांक्षाओं से दूर, विवेक एवं शुद्ध बुद्धि के विकास के लिए त्यागी एवं विचारक गुरुओं से विद्या प्राप्त करते थे। उनके जीवन का उद्देश्य दूसरा था, इसलिए शिक्षा भी उसी के अनुकूल थी। आज वर्तमान सभ्यता ने शरीर को, सांसारिक एवं भौतिक समृद्धि को इतना महत्त्व दे दिया है कि मानव-जीवन का आध्यात्मिक आदर्श लुप्त हो गया है। सभ्यता के शरीर की रक्षा जरूरी थी, पर इसकी रक्षा में दुनिया ऐसी चिमटी कि शरीर के अन्दर शरीर का राजा प्राण भी है, जो भूख-प्यास से छटपटा रहा है, इसका ध्यान ही किसी को नहीं रहा। शरीर की रक्षा में प्राण एवं आत्मा की ऐसी उपेक्षा हुई कि शरीर की भी रक्षा न हो सकी। भौतिक सुविधाओं की जरूरत को कौन अस्वीकार करेगा? दुनिया में रहनेवाले साधारण प्राणियों को धन-धाम की आवश्यकता अवश्य है, पर इस धन-धाम का भी एक महत् उद्देश्य है, इसे जैसे नशे में सब भूल गये हैं। हमने चमक-दमक, चटक-मटक, भोग-विलास को जीवन का एकमात्र कार्यक्रम बना लिया है। इसलिए प्रत्येक विद्यार्थी के हृदय में, अपने चरित्र के उत्थान एवं समाज की सेवा के बदले, जिस प्रकार से भी हो, ज्यादा से ज्यादा कमाने का विषैला धुआँ आरम्भ से ही भर

जाता है। सुन्दर बँगला हो, ५००)—६००) रु० की नौकरी हो, ऐसा पद मिले कि हुकूमत की प्यास बुझाई जा सके और लोगों को दिखया जा सके कि हमारी शान क्या है। सुन्दरी, कमल-सी आँखों और चन्द्रमा-से मुखवाली, कल्पना के समान नशा करने वाली पत्नी हो, मोटर पर घूमें, भिखमंगों को दुरदुरायें, उम्मेदवारों को अकर्मण्यता के लम्बे-चौड़े उपदेश दें और कभी सिनेमा, कभी थियेटर, कभी क्लब में, मित्रों,—और यदि संभव हो तो विशेषतः स्त्री 'मित्रों'—के साथ हा-हा ही-ही करते, सिगरेट के चक्करदार धुएँ और बढ़िया विलायती शराब के—गालों पर गुलाब की पंखड़ियों की लाली की तरह खिलने वाले—नशे के बीच, हँसी-खुशी से जिन्दगी बीतती रहे। समाज, देश, सब इनके लिए त्रास हैं, मानो जो कुछ सुविधा वे पाते हैं, सब उन्होंने पेट से उत्पन्न की हो। यह आजकल का सभ्य जीवन-क्रम है; यह आजकल की शिक्षा है!

जब लड़कों की शिक्षा ही इतनी हो रही है कि नैतिक आदर्शों का उनसे लोप होता जाता है, तब लड़कियों को कौन पूछता है? भारतवर्ष की मिट्टी में पलनेवाले युवक, जिनके सर में—जीवन की अत्यन्त कोमल और प्रभावयोग्य अवस्था में—शेक्सपियर की जूलियट और बर्नर्डशा की 'मिसेज वारेन' के स्वप्न चक्कर काटने लगते हैं; जब ये सीता-सावित्री को भूलने लगते हैं और पीछे जब इन सतियों की वर्तमान छायारूप, अपनी पुरानी ढंगवाली (Old-Fashioned) पत्नियों में उन्हें वह चंचल, दिल गुद-

वे और ये !

गुदानेवाली पश्चिमी स्त्रियाँ, जिनके अतिरिक्त दूसरों को उन्होंने कभी न जाना और जो कालेज की अवस्था से ही किताबों के परदे में उनके साथ हो जाती हैं, उन्हें नहीं मिलतीं तो क्लबों, वेश्याओं और दूषित मित्र-मण्डलियों के शिकार हो जाते हैं; शराब-कबाब का दौर चलने लगता है। इन युवकों के साथ, इनकी-जैसी शिक्षा पाकर कालेजों की अधिकांश लड़कियाँ 'स्त्रीत्व' के आदर्श से गिरती जा रही हैं। उनके हृदय में शील, लज्जा, नम्रता की जगह अधिकार, भोग और कठोरता का उदय हो रहा है। एक ओर 'शिक्षित' रमणियों का यह हाल है, दूसरी ओर गाँव की सीधी-सादी स्त्रियाँ दुनिया की वर्तमान अवस्था से बिलकुल अनजान हैं। पर यदि स्त्री-शिक्षा का वही आदर्श हो जो आजकल हम कालेजों की लड़कियों में देखते हैं, तो ईश्वर हमारी इन ग्रामीण अशिक्षित बहनों को सलामत रक्खे, जिनके मक्खन-से कोमल हृदय में अब भी सतीत्व की सच्ची आभा और त्याग की ऊँची भावना चिनगारी की तरह चमक रही है।

× × ×

शिक्षा का स्थूल उद्देश्य पुरुष को सच्चा पुरुष और स्त्री को सच्ची स्त्री बनाना है। इसलिए बालिकाओं को जो शिक्षा दी जाय, उसमें उनके अन्दर सच्चे स्त्रीत्व एवं मातृत्व का विकास होना चाहिए।

यह स्त्रीत्व और मातृत्व क्या है ?

इस विषय में तो विरोध नहीं हो सकता कि स्त्री-शिक्षा का उद्देश्य स्त्री में सच्चे 'स्त्रीत्व' का विकास होना चाहिए। पर इस विषय में लोगों में बड़ा मतभेद दीख पड़ता है कि सच्चा 'स्त्रीत्व' क्या है ? कोई वीर, साहसी, अपने पैर पर खड़ा होने के लिए अधिकार माँगने और पुरुष से उसके अनुचित व्यवहारों के लिए जवाब तलब करने वाली नारियों में स्त्रीत्व का आदर्श पूरा होता देखता है, कोई लज्जा और संकोच के आवरण से ढकी, मन ही मन दीपशिखा-सी घुलने वाली पर कभी मुँह न खोलने वाली छुई-मुई को 'स्त्रीत्व' का आदर्श मानता है। समाज और साहित्य में एक ऐसा दल भी पैदा हो गया है जो स्त्री-पुरुष के विवाह-सम्बन्ध को एक शारीरिक आवश्यकता की वस्तु मानकर उसमें पवित्रता तथा धार्मिकता देखने वालों की हँसी उड़ाने में व्यस्त हैं। उनकी दृष्टि से या तो विवाह की प्रथा की वर्तमान रूप में बिलकुल आवश्यकता नहीं है और यदि है तो वैवाहिक सम्बन्ध में सतीत्व और शारीरिक पवित्रता की भावना केवल पुरुषों—पतियों—के स्त्री को निजी सम्पत्ति समझने के अधिकार का बहाना मात्र है। इन विचार-धाराओं एवं प्रकृतियों के बीच 'स्त्रीत्व' का आदर्श डांवाडोल हो रहा है।

परन्तु जब इन प्रवृत्तियों एवं विचार-धाराओं के मूल में पैठते हैं तब स्त्रीत्व का एक आदर्श स्थापित करने में विशेष कठिनाई का अनुभव नहीं करना पड़ता। पहले तो गृहजीवन की पवित्रता तथा समाज से उसके सम्बन्ध को कायम रखने के लिए

यह मान लेना चाहिए कि पुरुष-स्त्री का सम्बन्ध कुछ स्थायी प्राकृतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए है और यह सम्बन्ध एक ओर जितना ही मधुर, उदार तथा स्वतंत्र प्रवृत्तियों पर आश्रित होना चाहिए, दूसरी ओर उतना ही दृढ़, अन्योन्याश्रयी, व्यापक एवं परस्पर आत्म-समर्पणशील होना चाहिए। यदि इतनी बातें मान ली जायँ और स्त्रियाँ जहाँ अपने दृष्टिकोण को थोड़ा विशद बनावें वहाँ पुरुष ज्यादा उदार बनें और स्त्री को अपनी सम्पति समझने की अधिकार-भावना पर विजय प्राप्त करके थोड़ा नम्र और आत्मार्पणशील बन जायँ तो स्त्री-पुरुष-युद्ध अपने आप समाप्त हो जायगा। क्योंकि इन सब वाग्युद्धों के बीच भी दोनों को किसी न किसी रूप में एक-दूसरे का सहयोग प्राप्त करना ही पड़ता है।

इसलिए यदि स्त्री-पुरुष के परस्पर सम्बन्ध की वर्तमान अवांछनीय दशा का विचार छोड़ कर देखें, यदि पुरुष के पतन और हर हालत में नारी को अपनी सम्पत्ति और भोग्य वस्तु समझने से वर्तमान नारी के हृदय में प्रतिक्रिया के रूप में होड़ की जो आँधी चल रही है, उसे एक स्थायी समस्या न समझ स्त्री-पुरुष के साधारण सम्बन्ध को लेकर ही देखें तो नारी का अपना आदर्श क्या है, इसका विचार करके ही हमें नारीत्व का निश्चय करना पड़ेगा। अपनी अपूर्णता को लेकर प्राणी में जो आकुलता है उसी के सहारे नारी उसमें व्यवस्थित, सुन्दर और पूर्णतर जीवन का निर्माण करती है। पुरुष में सृजन की जो शक्ति है उसे जहाँ वह एक ओर मृदुल और सुन्दर बना कर

उसको एक आध्यात्मिक रूप देती है, वहाँ पुरुष के साथ अपने सहयोग से वह जिस नवीन जीवन की सृष्टि करती है, उसकी रक्षा, लालन-पालन भी करती है। इस नवीन प्राणी के तुच्छ मांस-पिण्ड में दया, ममता, प्रेम और सुन्दर चेतन का विकास करना उसी का काम है।

नारी के इस आध्यात्मिक रहस्य की ओर जब हम ध्यान देते हैं तो यह मान लेने में बाधा नहीं पड़ती कि ममता, दया, क्षमा, प्रेम, सहिष्णुता नारीत्व के लिए अधिक आवश्यक हैं क्योंकि इनके बिना वह न तो पुरुष की पशुता को सुन्दर और उपयोगी रूप दे सकती है, न नवीन जीवन की वृद्धि और विकास की जिम्मेदारी को संभाल सकती है।

इस प्रकार स्त्री को जो शिक्षा दी जाय उसमें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उसके कारण इन गुणों का विशेष विकास हो।

पहले पाँच वर्ष

माता का कर्तव्य है कि अपने कमरे में सती, सीता, सावित्री इत्यादि के चित्र लगा रक्खे और लड़की (या लड़के) को बचपन से इन्हें प्रणाम करना सिखावे। दो-तीन वर्ष की अवस्था से ही सतियों की, वीरांगनाओं की कहानियाँ मनोरंजक और सरल ढंग से उन्हें सुनाने का क्रम डालना चाहिए। इससे मातृत्व का गौरवमय भाव लड़कपन से उनके अन्दर पैदा हो जायगा और बड़ी होने पर वे कभी स्त्री-योनि में जन्म पाने के कारण अपने को हीन नहीं समझेंगी। शिशु को पालने में जो शिक्षा मिलती है, उसका असर जन्म-भर

रहता है । दूसरी बात

यह

है कि गोद की अवस्था से ही लड़की (या लड़के) में सफ़ाई की आदत डालनी चाहिए । इसके लिए माता

सफ़ाई

का सदा स्वच्छ रहना एवं उसमें बच्चे के पास जरा भी गंदगी होते ही उसे तुरन्त दूर कर देने की आतुरता होना जरूरी है । इससे सफ़ाई की आदत पड़ेगी और बच्चों का स्वास्थ्य अच्छा रहेगा ।

तीसरी बात, जो लड़के की भाँति ही, लड़की को ३-४ वर्ष की अवस्था से सिखानी चाहिए, सदा सच बोलने और किसी जीव को कष्ट न पहुँचाने की बात है । सच बोलने का अभ्यास करानेवाली माता को उचित है कि वह स्वयं सदा सच बोले और बच्चे के सामने कभी दो तरह की परस्पर-विरोधी बातें न करे । यदि आरम्भ से चेष्टा की जाय तो बच्चों के अन्दर सत्य-भाषण की आदत बड़ी सरलता से डाली जा सकती है । किसी को दुःख न पहुँचाने की भावना बच्चों में फैलाना जितना सरल है, उतना और कुछ नहीं । वे सहज ही कोमल, भेद-भाव-रहित और सब को अपनानेवाले होते हैं । जरा-से अभ्यास से उनमें यह भाव बहुत दूर तक बढ़ाया जा सकता है ।

पाँच से साढ़े छः

पाँच वर्ष की अवस्था में कन्या का विद्यारंभ संस्कार होना चाहिए। पहले गिनती, सती स्त्रियों की कहानियाँ एवं महापुरुषों के नाम याद कराने चाहिए। साथ ही गुरुजनों एवं माता-पिता तथा बड़े भाई-बहनों को नित्य उठकर प्रणाम करने का अभ्यास कराना चाहिए। गिनती इत्यादि याद हो जाने पर उन्हें अक्षरों का ज्ञान कराना ठीक होगा। ज्यों-ज्यों अक्षरों का ज्ञान होता जाय, उनसे महापुरुषों एवं प्राचीन सतियों का नाम पट्टी या स्लेट पर लिखाना चाहिए। इनके नाम का अभ्यास होने से उनमें स्वयं यह पूछने की उत्कण्ठा जाग्रत होगी कि ये लोग कौन थे? अपना नाम, पता एवं माता-पिता का नाम भी लिखाना चाहिए और साथ ही यह भी बताना चाहिए कि हमारा देश भारतवर्ष है, हम हिन्दू हैं, हमारी भाषा हिन्दी है और सदा सच बोलना एवं दूसरों की भलाई करना ही हमारा धर्म है। कभी-कभी सूर्य, चन्द्रमा, बादल, फूल, पेड़-पत्ते दिखाकर उन्हें इनका उपयोग बताना चाहिए। इससे बहुत शीघ्र बच्चे की प्रतिभा बढ़ेगी। लड़कियों को जो कहानियाँ बताई जायँ, उनमें स्त्रियों की वफ़ादारी, साहस, सत्कर्म और वीरता की कहानियाँ ज्यादा होनी चाहिएँ। आठ-नौ वर्ष की अवस्था तक लड़के-लड़कियों की शिक्षा में इसके सिवा और भेद नहीं होना चाहिए और जहाँ कहीं संभव हो ८-९ वर्ष तक लड़की-लड़कों को एक साथ ही पढ़ाना चाहिए। यदि सुशील माताएँ इस उम्र तक स्वयं शिक्षा दें तो और भी ज्यादा अच्छा प्रभाव पड़ सकता

है, क्योंकि बच्चे पुरुष की अपेक्षा, मातृभाव की प्रधानता के कारण, स्त्री के पास अधिक प्रेम और मनोयोगपूर्वक पढ़ते और सीखते हैं।

मेरी समझ से जितनी बातें मैंने ऊपर बताई हैं, वे पाँच वर्ष की अवस्था से लेकर साढ़े छः वर्ष की अवस्था तक—डेढ़ वर्ष में अच्छी तरह सिखाई जा सकती हैं। इतने दिनों तक इससे ज्यादा सिखाने की जरूरत नहीं; क्योंकि इस अवस्था के बच्चों को साधरणतः दो-ढाई घंटे रोज से अधिक पढ़ाना ठीक नहीं, इससे उनके स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ता है। साथ ही इस अवस्था में रटने की प्रवृत्ति पर कभी जोर न देना चाहिए। देखना यह चाहिए कि बच्चा उन शिक्षाओं को दैनिक जीवन में कहाँतक कार्यान्वित कर रहा है। यदि वह कोई भूल करे तो उसे प्रेम से समझाना चाहिए और उसे चुमकार कर ही उससे उसकी भूलों का पता लगाते रहना चाहिए। उन्हें कभी मारना-पीटना नहीं चाहिए। इससे बच्चों को लड़कपन से ही पशु-बल के सामने दब जाने की आदत पड़ जाती है और माता या शिक्षक की सारी शिक्षाएँ व्यर्थ होती हैं। जब माता या शिक्षक ने बच्चे को यह बताया हो कि क्रोध कभी न करना चाहिए और खुद क्रोध करके उसे पीटता हो, तो किसी तरह उस बच्चे के मन पर इस शिक्षा का प्रभाव नहीं पड़ सकता।

साढ़े छः वर्ष की अवस्था से लेकर नौ वर्ष की अवस्था तक लड़कियों को बोलने-चालने का ढंग सिखाना चाहिए तथा अपने सब काम धीरे-धीरे अपने ही हाथों करने की आदत डलवानी चाहिए। इसके साथ ही उन्हें भारत के इतिहास की चुनी हुई कहानियाँ, हमारी गुलामी की गाथा, देश की हीनावस्था, स्वाधीनता की आवश्यकता इत्यादि बातें खास तौर से बतानी चाहिए। सामाजिक बातों में परदे की हानियाँ, गहने की बुराई इत्यादि बातें सिखानी चाहिएँ। थोड़ा हिसाब-किताब और पत्र लिखना भी आ जाय, तो अच्छा। चरखा कातना इस अवस्था में प्रत्येक लड़की को जरूर जान लेना चाहिए और नियमित रूप से कम से कम एक घण्टा कातने का अभ्यास भी उसे करना चाहिए।

साढ़े छः से नौ

लड़की का स्वास्थ्य ठीक रहे, इसलिए उसे सुबह-शाम एकान्त और खुली जगह में दौड़ना चाहिए; घर साफ़ करने और दस-पाँच बार चक्की घुमाने का भी अभ्यास आवश्यक है।

यदि ठीक तरह से इस क्रम का पालन किया जाय तो पाँच से नौ वर्ष के बीच में—४ वर्षों में—लड़कियों का नैतिक, मानसिक और शारीरिक विकास यथेष्ट मात्रा में हो सकता है। इससे उन्हें इतिहास का थोड़ा ज्ञान हो जायगा, देश की वर्तमान अवस्था मालूम हो जायगी, थोड़ा हिसाब-किताब आ जायगा, वे चिट्ठी-पत्री लिखने लगेंगी, चरखा कातने का अभ्यास होगा, साधारण पुस्तकें पढ़ने-समझने की अक्ल आ जायगी

और स्वास्थ्य ठीक होने के साथ ही समाज में किस तरह उठना-बैठना बोलना-चालना चाहिए, यह भी वे सीख जायँगी।

नौ से बारह वर्ष की अवस्था लड़की के लिए बड़ी महत्व-पूर्ण अवस्था है। मेरा विचार है कि जो माता-पिता प्रबन्ध कर सकें, लड़की को संगीत की थोड़ी शिक्षा अवश्य दें। वीणा, सितार या हरमोनियम में से कोई एक चीज थोड़ा-बहुत बजाना जान लें तो अच्छी बात होगी। संगीत पति की, और अपनी भी, मानसिक चिन्ता दूर करने का एक रामबाण उपाय है, पर गानों में गजल इत्यादि की जगह ऊँचे विचार वाले भजन ही सिखाने चाहिएँ।

नौ से बारह

इस अवस्था में पुस्तक की, शिक्षा से भी, अधिक ध्यान घरेलू जीवन से सम्बन्ध रखनेवाली व्यावहारिक शिक्षा की ओर देना चाहिए। जैसे भोजन बनाना, कपड़े काटना एवं सीना, थोड़ा क़सीदे का काम, घर को कैसे साफ़-सुथरा रखना चाहिए तथा अतिथियों का स्वागत-सत्कार कैसे करना चाहिए, इत्यादि बातें खास तौर से सिखानी चाहिएँ। बड़ों के सम्मुख शील, संकोच और आदर से बोलना और छोटों से ममता एवं स्नेह-पूर्वक बात करना सिखाना चाहिए। एक बहुत जरूरी शिक्षा यह है कि घर का हिसाब-किताब कैसे रखना, जिसमें दो पैसा बचता रहे। इसकी व्यावहारिक शिक्षा इस तरह दी जा सकती है कि चार-छः महीने घर का खर्च लड़की की सलाह से ही चलाया जाय, जिससे उसे गृहस्थी के खर्च की सब कठिनाइयाँ मालूम हो जायँ।

इसके साथ-साथ पुस्तक की शिक्षा भी थोड़ी-बहुत होती रहनी चाहिए।

अनेक प्रान्तों की अनेक जातियों में, लड़की का विवाह बहुत छोटी अवस्था में हो जाता है, पर अब सरकारी क़ानून के अनुसार बारह वर्ष से पहले शादी नहीं हो सकती। धीरे-धीरे लोग स्वयं भी बाल-विवाह की हानियों को समझने लगे हैं। इसलिए १२-१३ वर्ष तक की शिक्षा का विवरण मैं यहाँ दे रहा हूँ।

ऊपर जिस शिक्षा की चर्चा की जा चुकी है, उसकी समाप्ति के बाद लड़की को बड़ी सावधानी के साथ भावी जीवन के लिए तैयारी करनी चाहिए। उसे धीरे-धीरे यह बताना चाहिए कि उसका विवाह होने वाला है; उसे दूसरे के घर जाना होगा तथा उस अपरिचित एवं बिल्कुल नई जगह में उसे एक पूरी गृहस्थी का भार सँभालना होगा। विवाह का क्या उद्देश्य है; पति, सास, श्वसुर, ननद, एवं भौजाइयों से कैसे बोलना-चालना, कैसा व्यवहार करना कि सब वश में हो जायँ, इत्यादि बातें समझानी चाहिएँ। यह भी बताना चाहिए कि विवाह के बाद लड़कपन की स्वतन्त्रता नहीं रह सकती, दूसरों के सुख-दुःख का हर समय ख़्याल रखना पड़ेगा और स्वयं कष्ट सहकर भी दूसरों को सुखी बनाना होगा।

भावी जीवन की तैयारी

मेरा अपना अनुभव तो यह है कि आज कल नारी-जीवन जो इतना दुःखमय हो रहा है उसके मूल में जहाँ अनेक

सामाजिक कुरीतियाँ काम कर रही हैं वहाँ माता-पिता या संरक्षकों के पालन-पोषण का ढंग भी इसमें सहायता करता है। लड़कियाँ या तो बहुत ज्यादा उपेक्षा के साथ पाली जाती हैं जिससे लड़कपन से ही उनके व्यवहार में कटुता और जीवन में सुस्ती तथा उदासीनता आ जाती है या उनका लाड़-प्यार इस ढंग से होता है कि उनमें कर्तव्य की अपेक्षा मोह का भाव ज्यादा आ जाता है। चूँकि लड़की को माता-पिता का घर छोड़ कर एक नई जगह जाना पड़ता है इसलिए उसके अन्दर ममता की जगह कर्तव्यशीलता का भाव लड़कपन से जगाना चाहिए। मेरा यह अपना अनुभव है कि बहुत-सी लड़कियाँ यद्यपि वे सुशील, अच्छे हृदय की और प्रेममयी होती हैं, अच्छे और उदार पतियों को पाकर भी अपना दाम्पत्य जीवन दुःखपूर्ण कर लेती हैं। लड़कपन से उनका लालन-पालन ही इस प्रकार होता है कि ससुराल जाने पर भी वे मायके की चिन्ता और मोह में पड़ी रहती हैं और दुःखी होकर अपना स्वास्थ्य खो बैठती हैं। इसका परिणाम यह होता है कि पति-पत्नी दोनों के सहृदय और प्रेमपूर्ण होते हुए भी दोनों के जीवन में एक प्रकार की उदासीनता छा जाती है और यदि वह शीघ्र दूर न की गई तो उसका असर अन्त तक रहता है और दोनों के जीवन में एक प्रकार का दुःख, एक तरह का अभाव बना रहता है। इस प्रकार मैंने देखा है कि निर्दोष होते हुए, एक-दूसरे को सुखी करने की इच्छा रखते हुए तथा परस्पर प्रेम होते हुए भी, लड़कियों का तथा उनके साथ उनके पतियों का भी, जीवन दुःखमय हो जाता

है। सच पूछो तो यह जीवन में एक बड़ी करुणाजनक घटना है। जहाँ हृदय ही ख़राब हो, प्रेम न हो वहाँ दुःख उतना दुःख नहीं देता जितना प्रेम होते हुए भी, कर्तव्य-बुद्धि के अभाव के कारण होने वाला दुःख जीवन को असह्य बना देता है।

इसका कारण यही है कि दुनिया में केवल प्रेम से ही सब समस्याएँ नहीं सुलझ सकतीं। प्रेम का किस प्रकार, कहाँ, कैसा प्रयोग करना चाहिए, यह जानना भी जरूरी होता है। प्रेम शक्ति है; कर्तव्य उस शक्ति को उपयोगी करके जीवन को मधुर और सुंदर के साथ ही कर्तव्यपरायण और विवेकशील बना देता है। इसलिए लड़कियों को आरंभ से ऐसी शिक्षा देनी चाहिए जिससे वे प्रेम के साथ ही कर्तव्य को प्रधानता दें। समझने योग्य अवस्था होते ही उन्हें यह बताना चाहिए कि जैसे उनकी माँ अपने माँ-बाप का घर छोड़ कर इस घर में आई वैसे उन्हें भी एक दिन माता-पिता का घर छोड़ कर दूसरे घर में जाना पड़ेगा और उसे ही अपना घर बनाना पड़ेगा।

इसके साथ ही लड़कियों को समय-समय पर अपने माता-पिता से दूर अपने निकट एवं विश्वस्त सम्बन्धियों के घर भी दो-दो, चार-चार महीने रखना चाहिए। इससे माता-पिता से दूर रहने का भी उन्हें अभ्यास होगा।

यदि इन बातों का ध्यान रक्खा जाय तो विवाह के बाद, मायके के मोह से, लड़कियाँ जो कई बार अपने को दुखी, चिन्तित और बीमार बना लेती हैं और सदा के लिए दाम्पत्य जीवन के सुख को खो बैठती हैं, उससे उनकी रक्षा होगी

माता-पिता अथवा संरक्षक यदि इन बातों का ध्यान रक्खें तो लड़कियों का कल्याण करेंगे।

इस सम्बन्ध में, विवाह-योग्य अवस्था की बहनों के लिए, अगले पत्र बहुत उपयोगी सिद्ध होंगे।

भाई के पत्र

[विवाह-समस्या और स्त्री-जीवन]

[२]  नारी

"कौन-सी ऊँचाई है जहाँ स्त्री चढ़ नहीं सकती ? कौन-सा ऐसा स्थान है जहाँ वह पहुँच नहीं सकती ? हज़ारों अपराध करो, वह क्षमा कर देती है। जब किसी बात पर अड़ जाय तो संसार की कोई भी शक्ति उसे रोक नहीं सकती। ऐ देवी ! बिना तेरे संसार के पुरुषों का क्या हाल होता ? निराशा, उदासी, दुःख सब मिल-कर तेरे हृदय से प्रेम-भाव को नहीं छीन सकते।" कार्लंटन

[१]

विवाह के पहले

लखनऊ

४. १०. ३०.

प्यारी भगवती,

इसे मैं भी जानता हूँ और तुम भी जानती हो कि अब बहुत दिनों तक तुम हमारे घर में न रह सकोगी। तुम्हारी अवस्था विवाह के योग्य हो गई है। पिताजी बहुत दिनों से शीघ्र विवाह कर देने पर जोर देते रहे हैं और मैं उसे टालता रहा हूँ। तुम यह भी जानती हो कि मेरे विचार इस सम्बन्ध में पिता जी के विचारों से भिन्न हैं। माँ बेचारी तो मँझधार में हैं। उसकी अवस्था प्राचीनताकी ओर झुकी हुई है; उसकी बुद्धि मेरी बातों का समर्थन करती है;किन्तु अब वह भी अधीर हो रही है।

मुझे भगवान् ने दुनिया में बहुत थोड़ी पूँजी देकर भेजा था। मुझे अपने कुटुम्ब से उन्नति के साधन कभी प्राप्त नहीं हुए।

समाज, कुटुम्ब, सबका रुख़ बराबर उलटा रहा और मुझे सदा विरोधी परिस्थितियों में रहकर, स्वजनों का विरोध सहकर, अकेले अपने बल पर रास्ता बनाना पड़ा। अब तो बहुत-सी बाधाएँ दूर भी हो गई हैं, पर अब भी मेरे पास अपने विचारों के अनुकूल तुम लोगों का निर्माण करने योग्य शक्ति नहीं है। जो कुछ साधन मैं जुटा सका, उसके अनुसार तुम्हें योग्य शिक्षा देने की मैंने सदा चेष्टा की। लगातार बाहर रहने के कारण मैं जिस क्रम और नियम से तुम्हें शिक्षा देना चाहता था, न दे सका। फिर भी मुझे सन्तोष है कि इस परिस्थिति में, अनेक चिन्ताओं और कार्यों के बीच, जो कुछ किया जा सकता था, मैंने किया है। मुझे हर्ष है कि पढ़ने-लिखने तथा अच्छी-अच्छी बातें एवं कलाएँ सीखने की तुममें लगन है। इसलिए मुझे विश्वास है कि तुम जहाँ भी रहोगी, थोड़ी-बहुत मात्रा में अपना अध्ययन जारी रक्खोगी।

मेरे जीवन का कार्यक्रम कुछ निश्चित नहीं है। मैं कब कहाँ रहूँगा, इसका भी कुछ ठीक नहीं है। सम्भव है, तुम्हारे विवाह के समय मैं उपस्थित न रहूँ, इसलिए इस सम्बन्ध में मुझे तुमसे जो कुछ कहना है, लिख रहा हूँ; यदि तुम इन बातों पर ध्यान दोगी तो सुखी रहोगी।

अब तुम निरी बालिका नहीं हो। माँ के या मेरे कहीं चले जाने पर तुम रोने लगती हो। इससे तुम्हारे हृदय की कोमलता सिद्ध होती है। यह ठीक है कि कोमलता स्त्री का एक विशेष गुण है, पर सबसे आवश्यक शर्त उसके जीवन को सुखी

बनाने के लिए यह है कि वह जहाँ, जिस अवस्था में रहे, अपने को उसके अनुकूल बना ले। यदि तुम इसका अभ्यास कर लोगी तो कभी दुखी न होगी। तुम्हारी अवस्था की अनेक लड़कियाँ आज बड़े-बड़े घरों को अकेले सँभाल रही हैं और कई तो तुम्हारी अवस्था में माताएँ भी हो जाती हैं। ऐसी हालत में तुन्हें गम्भीरतापूर्वक उस ज़िम्मेदारी के लिए, जो तुम पर आने वाली है, अपने को जल्दी से जल्दी तैयार कर लेना चाहिए।

यह ठीक है कि जिस माँ का तुमने दूध पिया है, जिस भाई की गोद में तुम खेली हो, जिस घर में तुम्हारे जीवन के सर्व-श्रेष्ठ सोलह वर्ष बीते हैं, उसे छोड़कर एक अपरिचित घर को अपनाने में, आरम्भ में, तुम्हें दुःख होगा। तुम्हें क्या, एक साधारण पशु को भी इतने दिन एक जगह रहने के बाद वहाँ से अलग होते कष्ट होता है। प्रत्येक प्राणी का यह स्वभाव है कि वह जहाँ रहता है, जिन लोगों के साथ रहता है, उनसे उसका अपनापन हो जाता है। फिर जिस माता-पिता के रक्त-मांस से तुम्हारा शरीर बना है, जिन भाइयों की शुभाकांक्षाओं की छाया में तुम इतने दिनों तक पली हो, उन्हें छोड़ते दुःख होना स्वाभाविक है, पर दुनिया केवल भावुकता की जगह नहीं है, समस्त संसार में, प्रत्येक देश और समाज में (एकाध जंगली जातियों को छोड़कर) विवाह होने पर लड़की को पिता का घर छोड़कर पति के घर जाना पड़ता है और उसके बाद पति का घर ही उसका अपना घर होता है, पति की सम्पत्ति ही उसकी

अपनी सम्पति होती है। वहाँ सास-ससुर का माता-पिता से भी बढ़कर सम्मान और आदर करना पड़ता है।

शास्त्रों में पति, स्त्री का देवता कहा गया है। इसका यह मतलब नहीं कि पति के सामने पत्नी का कोई स्थान ही नहीं है।

पति-पत्नी का सम्बन्ध

जहां पति देवता है, वहां पत्नी देवी है। पति विष्णुरूप और स्त्री लक्ष्मी-रूप है। बल्कि कई बातों में पत्नी का महत्व और जिम्मेदारी पति से भी अधिक है, क्योंकि पुरुष चाहे जो हो, वह स्त्री की सन्तान ही है।

पति को देवता मानने का अर्थ इतना ही है कि जिस प्रकार देवता की पूजा और उपासना में उसमें लीन हो जाना, अपने अस्तित्व को, अपनी हस्ती को, भूल जाना पड़ता है, वैसे ही पति में पत्नी को एकदम मिल जाना चाहिए। उसके सुख-दुःख को अपना सुख-दुःख समझना चाहिए; उसकी रक्षा, उसकी सेवा में अपनी शक्ति लगा देनी चाहिए।

विवाह के पूर्व ही तुम्हें यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि जिस घर में तुम जाओगी वह चाहे कैसा ही हो, स्वर्ग नहीं

भावी जीवन

होगा, न एकदम नरक ही होगा। दुःख-कष्ट, ईर्ष्या-द्वेष, कटुता एवं संघर्ष भी वहाँ होंगे और स्नेह, विश्वास, मृदुता एवं सहानुभूति भी होगी। इन दोनों की मात्रा में कमी-ज्यादती हो सकती है, पर किसी एक का बिलकुल अभाव हो, यह नहीं हो सकता। अब अपनी सहन-शीलता, अपने कोमल व्यवहार, अपनी सेवा एवं मृदुवाणी से कटुता का वातावरण दूर करके अँधेरे घर में उजाला करना,

अशान्त एवं असहिष्णु प्राणियों पर प्रेम एवं सेवा से विजय प्राप्त करना तुम्हारा काम है। लड़की को पिता के घर जितनी आजादी, जितनी बेतकल्लुफी और जितनी स्वच्छन्दता होती है, ससुराल में उसे प्रत्येक क्षण उतने ही बन्धन, शील, संकोच एवं संयम से काम लेना पड़ता है। वहाँ उसकी जिम्मेदारी बढ़ जाती है और प्रत्येक विषय में बड़ी गंभीरता, संयम और प्रसन्नता से काम लेना पड़ता है।

इसलिए सबसे पहली बात तुम्हारे जानने की यह है कि कुछ दिनों बाद तुम्हें एक ऐसा घर सँभालना पड़ेगा, जिसे पहले तुमने कभी नहीं देखा,—जहाँ के लोग तुम्हारे लिए बिलकुल अपरिचित हैं, किन्तु तुम्हें इन्हीं लोगों को अपना सब कुछ समझना पड़ेगा; वही तुम्हारा कुटुम्ब है, यह भावना मन में पैदा करनी होगी। पति हमारे लिए सब कुछ है, सास हमारे लिए माता-तुल्य है और श्वसुर पिता के समान हैं तथा देवर और ननद से भाई-बहन का स्नेह प्राप्त किया जा सकता है, इसे अच्छी तरह मन में समझ लेना चाहिए।

दूसरी बात यह है कि संसार में बहुत से लोग विवाह को सुख का खज़ाना समझते हैं, पर मैं तुम्हें पहले से बता देना चाहता हूँ कि यह बात गलत है। विवाह खेल की चीज नहीं; विवाह के बाद स्वतंत्रता कम हो जाती है; जिम्मेदारियाँ और चिन्ताएँ बढ़ जाती हैं। इसलिए तुम अपने मन में कभी बड़ी-बड़ी आशाएँ मत रखना। सदा यही सोचना कि जो जीवन आगे हम को बिताना है, उसमें सुख की अपेक्षा कष्ट ही अधिक होगा

और भोग की अपेक्षा त्याग और सेवा की ही उसमें प्रधानता होगी। भावी जीवन की कठिनाइयों के लिए तुम्हें अपना हृदय दृढ़ बनाना चाहिए और उसके लिए तैयार रहना चाहिए।

इस समय थक गया हूँ, इसलिए शेष दूसरे पत्र में लिखूँगा।

तुम्हारा भाई

'सुमन'

[२]

विवाह और उसका उद्देश्य

श्री गान्धी-आश्रम
हटुण्डी (अजमेर)
९-१०-३०

प्यारी भगवती,

तुमको इसके पहले विवाह के सम्बन्ध में एक पत्र लिख चुका हूँ। उससे तुम्हें इस बात का थोड़ा-बहुत ज्ञान हो गया होगा कि तुम्हें अब एक बिल्कुल ही नये प्रकार के जीवन के लिए तैयारी करनी है और उसी जीवन के सुख-दुःख पर तुम्हारा भविष्य निर्भर है।

इसके पहले कि तुम अपने मन से कुछ कल्पना कर लो, मैं तुम्हें इस सम्बन्ध की सारी बातें, थोड़े में, समझा देना चाहता हूँ।

जीवन-साथी

सबसे पहली बात यह है कि विवाह की आवश्यकता क्यों है और वह क्या चीज़ है? यह ठीक है कि अपने मन और शरीर को सब प्रकार से पवित्र और शुद्ध रखकर जीवन को सच्ची विद्या प्राप्त करने में लगा देना और उसकी सहायता से समाज की, मनुष्य-जाति की सेवा करना एक बड़ा भारी उद्देश्य और कार्य है; पर समाज को ठीक

तरह से चलाने के लिए प्रत्येक स्त्री-पुरुष को जीवन में आश्रय और सहायता की जरूरत पड़ती है। जीवन में हम अकेले नहीं रह सकते। हम जो कुछ करना चाहते हैं, उसके लिए सदा सहायक और साथी की आवश्यकता पड़ती है। अब यदि वह सहायक या साथी ऐसा हो कि जिन्दगी-भर दोनों का सहयोग बना रहे, दोनों के मन मिल जायँ और दोनों के सुख-दुःख एक हो जायँ तो एक-दूसरे से उन्हें बहुत अधिक उत्साह और संतोष प्राप्त होगा। जीवन में विवाह की आवश्यकता इसलिए नहीं है कि पुरुष को एक रोटी बनाने वाली और सेवा करने वाली की जरूरत पड़ती है और स्त्री को विवाहित होकर रहे बिना स्वर्ग नहीं मिल सकता; बल्कि विवाह की जरूरत इसलिए है कि उसके द्वारा स्त्री-पुरुष दोनों ऐसे साथी पा जाते हैं, जिनका साथ मृत्यु तक बना रहता है और जिनके स्वार्थ, जिनका सुख-दुःख और जिनका हृदय मिलकर एक हो जाने की संभावना की जा सकती है। जिसको जीवन में ऐसा साथी प्राप्त हो गया है जो उसके स्नेह को, उसके सुख-दुःख को, हृदय से समझता और अनुभव करता है; जिसे एक ऐसे मित्र का या एक ऐसी बहन का या एक ऐसे भाई का वह सच्चा स्नेह प्राप्त है जिसमें दोनों का हृदय मिल गया है, जिसमें एक का दुःख देखकर दूसरा तड़पने लगता है और सोचता है कि मैं स्वयं इसके बदले कष्ट उठाकर कैसे इसके दुःख को दूर कर दे सकता हूँ; जहाँ एक को सुखी देखकर दूसरा सन्तोष की साँस लेता है और अपने को सुखी समझता है, वहाँ निश्चय ही विवाह की आवश्यकता, मेरी समझ से, नहीं

है। जीवन में विवाह की सबसे बड़ी ज़रूरत अपना एक सच्चा साथी ढूंढ़ने के लिए है। और जिसे वह साथी मिल गया है, उसे विवाह की कोई वैसी ज़रूरत नहीं है।

किन्तु बिना विवाह किये सबको इस प्रकार का साथी मिल जाना कठिन, प्रायः असंभव, है। मान लो, किसी लड़की को एक ऐसा प्रेममय मित्र या भाई मिल गया, जो उसे बहुत स्नेह करता है। दोनों एक दूसरे के सुख-दुःख को ही अपना सुख-दुःख समझते हैं। उस भाई के माता-पिता ने उसका विवाह कर दिया, उसकी स्त्री आ गई और उसके प्रति उसकी ज़िम्मेदारी बढ़ गई। इधर उस लड़की की भी शादी हो गई—या शादी की बात हटा दें तो उसके माँ-बाप उसे लेकर कहीं दूर चले गये—तो दोनों में स्नेह रहते हुए भी, दोनों एक-दूसरे के सुख-दुःख में कुछ भाग न ले सकेंगे। समाज की वर्तमान अवस्था ऐसी है कि सिवा पति-पत्नी के और किसी प्रकार के सम्बन्ध में दो साथियों का हमेशा एक साथ रहना असंभव है; इसलिए साधारणतः विवाह के बिना जीवन में ऐसा साथी प्राप्त नहीं होता जिसे मृत्यु के सिवा दूसरी घटना अलग न कर सके और जिसका सहयोग सदा हमको प्राप्त होता रहे। इसलिए साधारण अवस्था में एक सच्चा जीवन-साथी प्राप्त करने के लिए विवाह ज़रूरी है।

विवाह के और भी कई आर्थिक और शारीरिक कारण हैं, पर मुख्य बात यही है। कुछ यह भी मानते हैं कि जब तक स्त्री माता न हो जाय या पुरुष को सन्तान न हो, वे अपने माता-पिता के ऋण से नहीं छूटते और न उन्हें स्वर्ग की प्राप्ति हो सकती है। यह तो कोई अच्छी दलील नहीं है, पर हाँ, यह स्वीकार किया जा सकता है कि समाज की रचना और विकास के लिए सन्तानोत्पत्ति की थोड़ी-बहुत आवश्यकता है। इस दृष्टि से भी विवाह को लोग जरूरी समझते हैं।

दूसरे पहेलू

हम हिन्दुओं के यहाँ विवाह एक धार्मिक संस्कार है। इसका उद्देश्य, दो हृदयों का, दो प्राणों का सच्चा मिलन है। इससे प्रत्येक स्त्री-पुरुष को एक-दूसरे के लिए त्याग और बलिदान करने की शिक्षा मिलती है। प्रत्येक विवाहित स्त्री का धर्म है कि वह अपनी अपेक्षा अपने पति के, अपने सास-ससुर के, अपने कुटुम्बियों के सुख का ध्यान अधिक रक्खे। वह अपने सुख का पति और कुटुम्ब के, लिए बलिदान करती है और उन्हीं के सुख से सुखी होना सीखती है। इससे उसे त्याग और सेवा की, अपनी अपेक्षा दूसरों के सुख का ज्यादा ख्याल रखने की शिक्षा मिलती है। इसी प्रकार पति पत्नी की रक्षा, सुख-सुविधा तथा उसकी सहायता से माता-पिता एवं कुटुम्बियों की सेवा और उनके पालन में अपनी शक्ति, समय और बुद्धि लगाता है। इस तरह विवाहित जीवन भोग-विलास और स्वार्थ की अपेक्षा, अपने सच्चे अर्थ में, त्याग-तपस्या, कष्ट-सहिष्णुता और सेवा

तथा परोपकार की भावना से मिश्रित परस्परावलम्बन—एक दूसरे की सहायता—का जीवन है। इस दृष्टि से समाज के ऊपर गृहस्थ-जीवन के अच्छे-बुरे होने का बड़ा असर पड़ता है।

कल्पना के महल !

किन्तु विवाहित जीवन के अच्छे होने के लिए इस बात की जरूरत है कि स्त्री सुख के बड़े-बड़े सपने लेकर ससुराल न जाय। वह यह कभी न सोचे कि वहाँ रुपये-पैसे, खाने-पीने का सुख रहेगा; वहाँ मैं आराम से रहूँगी; सुख और भोग-विलास का जीवन बिताऊँगी; अच्छी सास मिलेगी, जो मुझे अपने हाथ से जल्दी कोई काम न करने देगी; नौकर-चाकर मिलेंगे; पति का प्रेम प्राप्त होगा। ये सब सपने, ये सब कल्पनायें देखने में सुन्दर हैं, पर ये मृगतृष्णा की तरह धोखा देकर निराश और दुखी कर देने वाली हैं। जो स्त्री इन बड़े-बड़े सपनों को लेकर ससुराल जाती है, वह अवश्य धोखा खाती है, उसे बहुत संभवतः निराश होना पड़ता है और उसकी नासमझी से उसका जीवन दुःखमय हो जाता है। ऐसी बातें सोचना स्वयं अपने भावी जीवन को दुखी करने, कष्टमय बनाने के समान है।

आत्मोत्सर्ग

सच बात यह है कि विवाह होने के बाद तो लड़की का वह लड़कपन का सरल, स्वच्छन्द और स्वतंत्र जीवन छिन जाता है। उसकी जिम्मेदारी, उसका बोझ, बढ़ जाता है और जीवन की प्रत्येक घड़ी में अपने सुख के बदले, ससुराल के लोगों के सुख का ज्यादा खयाल रखना पड़ता

है। विवाह होने के बाद मृत्यु तक उसकी सारी जिन्दगी कष्ट-सहन, त्याग, सेवा और कर्तव्यपरायणता की जिन्दगी होती है। एक विवाहित स्त्री फूल की उस कली के समान है, जो एक देवता के चरणों पर चढ़ चुकी हो और अपने हृदय की सारी सुगन्ध को देवता के मन्दिर में बिखराती हुई एक दिन सूख जाय। इसलिए प्रत्येक विवाहित लड़की को इस तरह का ख्याल कभी न रखना चाहिए कि मुझे विवाह के बाद यह सुख मिलेगा, वह सुख मिलेगा। उसको सदा यह सोचना चाहिए कि किस प्रकार मैं अपने पति को, अपने सास-ससुर इत्यादि को सब तरह से सुखी कर सकती हूँ; कौन काम किस ढंग से किया जाय, कौन बात किस तरह कही जाय कि ससुराल के सब लोग ज्यादा से ज्यादा सुखी हों। उसको अपने सुख का ध्यान ही न करना चाहिए और सच्चे हृदय से प्रत्येक समय अनुभव करना चाहिए कि पति इत्यादि सुखी हैं तो मैं भी सुखी हूँ।

समानता का भाव

प्रेममय दाम्पत्य जीवन के लिए यह आवश्यक है कि पत्नी और पति दोनों एक-दूसरे के हृदय को, एक-दूसरे के भावों और विचारों को समझें और सदा एक-दूसरे में विश्वास रखते हुए मिलजुलकर काम करें। किन्तु इस विषय में पुरुष बड़े जल्दबाज, नासमझ और ग़ैर-जिम्मेदार होते हैं। दुनिया में प्रत्येक पुरुष यह चाहता है कि मेरी पत्नी पूर्णतः पतिव्रता और सीता-पार्वती जैसी हो; वह यह भी चाहता है कि मैं चाहे कैसा ही होऊँ पर मेरी स्त्री मुझे देवता समझे और सदा मुझ पर श्रद्धा रक्खे और मेरा अनु-

करण करे। वह भूल से, पहले से ही, समझ लेता है कि मानों पत्नी का प्रेम प्राप्त करने के लिए मुझे कुछ नहीं करना है; वह स्त्री पर स्वभावतः अपना अधिकार समझता है और सोचता है कि मेरी पत्नी का यह धर्म है कि वह हर अवस्था में मेरी बात माने और मेरी प्रशंसा करे—मुझ पर श्रद्धा रक्खे। वह यह भूल जाता है कि मेरी पत्नी भी मनुष्य है, उसके पास भी मेरे ही जैसा, बल्कि मुझसे भी कोमल, एक हृदय है जो सुख-दुःख अनुभव कर सकता है, जो मेरी ओर से दो मीठे शब्द सुनने के लिए, मेरी सहानुभूति पाने के लिए विकल है। पुरुष ने सदा ग्रहण करना, अधिकार जताना और शासन करना सीखा है; देना, आत्म-समर्पण करना और शासित होना उसने कभी नहीं जाना। इससे जहाँ पुरुष कठोर, साहसी, हठी, उद्दण्ड और असन्तुष्ट हो गया है, वहाँ स्त्री ने बहुत अंशों में अब भी, अपनी कोमलता, सहिष्णुता, दया, क्षमा, प्रेम, सेवा और सन्तोष को क़ायम रक्खा है। यह एक स्वीकृत बात है कि साधारणतः आजकल भी स्त्रियाँ पुरुषों की अपेक्षा ज्यादा वफ़ादार हैं; उनमें त्याग, बलिदान और आत्म-समर्पण की भावना अब भी बनी है। सार्वजनिक क्षेत्र में आकर पुरुष जहाँ यश इत्यादि के प्रलोभन में पड़ गया है; जहाँ पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष, दंभ और दलबन्दी में उसने अपने व्यक्तिगत सदाचार को नष्ट कर दिया है और घरेलू मामलों में बहुत नीचे गिर गया है, वहाँ स्त्रियों ने अपनी धर्मशीलता, श्रद्धा, गृहस्थ-सम्बन्धी सदाचार और सन्तोष की वृत्ति को क़ायम रखा है। यदि निष्पक्ष होकर तौला

जाय तो आज भी एक साधारण स्त्री के साथ, पवित्रता और आचार-विचार की सुन्दरता में, एक साधारण पुरुष तुल नहीं सकता।

इसलिए मेरा तुमको यह उपदेश है कि पति की अपेक्षा सदा तुम्हें अधिक त्याग करने को तैयार रहना चाहिए। पुरुष से स्त्री को कभी अधिक आशा न करनी चाहिए। वह इस विषय में बहुत निकम्मा और क्षुद्र हो गया है। अपने चारों ओर उसने अनेक झूठे प्रलोभनों और कल्पनाओं का जाल बिछा रक्खा है और उसमें खुद ही फँस गया है। इसलिए पुरुषों की बेवफ़ाई और स्वार्थवृत्ति को देखते हुए स्त्रियों से अधिक त्याग के लिए कहना यद्यपि उनके साथ एक प्रकार का अन्याय है, फिर भी समाज की रक्षा और उन्नति के लिए ज़रूरी है कि जब पुरुष अपने सच्चे गौरव को भूल गये हैं, स्त्रियाँ अपने स्त्रीत्व के गौरव और आदर्श को क़ायम रक्खें।

स्त्रीत्व का गौरव

इसलिए विवाह के बाद प्रत्येक लड़की को समझना चाहिए कि वह लड़कपन की सुखमय सुनहली स्वतंत्रता छोड़कर नारीत्व के कठोर शासन में आ गई है। पहले जहाँ उसका जीवन अपने ही तक था, वहां अब उसका सुख-दुःख दूसरों के सुख-दुःख से मिल गया है। अब उसका अपना स्वतंत्र अस्तित्व नहीं; अब उसका जीवन, उसका सुख-दुःख, दूसरे के जीवन और सुख-दुःख पर निर्भर है।

इसलिए लड़कियाँ अपने साथ अपने सुख के जितने ही कम सपने लेकर ससुराल जाएँगी, अपने सुख-दुःख के बारे में जितना

ही कम सोचेंगी तथा ससुरालवालों के सुख का, सुविधा का, ख़याल रखकर निष्कपट और उदार-हृदय से उनकी सेवा में जितना ही परिश्रम करेंगी, उतनी ही सुखी होंगी ।

तुम इन बातों को अच्छी तरह समझ लेना। यदि हम किसी से दो पैसे की आशा रक्खें और हमें एक ही पैसा मिले तो उतना दुःख न होगा, पर यदि हम पहले से ही एक रुपये की आशा मन में बाँध लें और एक ही पैसा मिले तो हमें ज्यादा निराशा होगी और फलतः ज्यादा चोट भी लगेगी । इसलिए यदि पहले से ही बड़ी-बड़ी आशायें न करके थोड़ी ही आशा की जाय तो सदा आदमी दुःख से बच सकता है। यदि तुम मेरी इन बातों को मन में अच्छी तरह रक्खोगी तो कठिन अवसरों पर भी बहुत से दुःखों और चिन्ताओं से बच जाओगी ।

भगवान् तुम्हें सुखी करें ।

तुम्हारा भाई
'सुमन'

[३]

सुखमय दाम्पत्य जीवन

अजमेर

१०-१०-३०

प्यारी भगवती,

इसके पहले के दो पत्रों से विवाह के सम्बन्ध में तुम्हें बहुत-सी बातें मालूम हुई होंगी। मोटी-मोटी प्रायः सभी बातें उनमें बताई जा चुकी हैं। उच्चकोटि का दाम्पत्य जीवन कैसे बिताया जा सकता है, इस सम्बन्ध में यहाँ चन्द बातें लिखता हूँ।

पति का ज्ञान

प्रत्येक विवाहिता कन्या के लिए सबसे पहली जरूरी बात यह है कि वह पति को भली प्रकार समझ ले। पति के क्या विचार हैं, उनकी क्या आज्ञायें हैं, किन बातों से वह सुखी हो सकते हैं, किन बातों में अधिक रुचि रखते हैं, इन सब पर ध्यान रखना चाहिए। उनमें जो अच्छी बातें हों उनका प्रतिक्षण अनुकरण करने की चेष्टा करनी चाहिए। उनके कार्य में यथासंभव सहायता करनी चाहिए। यदि कोई दोष हो तो उससे निराश, उदासीन या क्रुद्ध न होकर, भगवान् में विश्वास रखते हुए, अपनी सेवा,

अपने प्रेम और अपने सद्भावों के बल पर उसे धीरे-धीरे दूर कराने का यत्न करना चाहिए।

जो स्त्री पति को कोई ग़लती करते देख नाराज होकर चुपचाप बैठ रहती है, या झगड़ा कर बैठती है, वह अपने पाँव में आप कुल्हाड़ी मारती है। इससे न उसका काम बनता है, न पति की वह बुराई ही दूर होती है। स्त्री को सदा यह ख्याल रखना चाहिए कि हृदय ऐसी चीज नहीं जो बाजारू चीजों की तरह रुपये-पसे या साधारण प्रलोभनों से ख़रीदा जा सके, न वह ऐसा सस्ता पदार्थ है, जिस पर बिना त्याग, बलिदान और निरन्तर-प्रेम के अधिकार मिल जाय। हृदय एक अत्यन्त रहस्यमय वस्तु है। विशेषतः पुरुष का हृदय बहुत चंचल, एक स्थान पर स्थिर न रहनेवाला और बिना क़ीमत चुकाये सुख प्राप्त करने को लालायित रहने वाला होता है। इसके विरुद्ध, स्त्री का हृदय शान्त, कोमल, लजीला और स्थिर होता है। स्त्री पहले तो बहुत डरती-डरती हृदय को प्रकाशित करती है; हृदय-दान करने में वह पुरुष-जितनी जल्दबाज नहीं होती, पर, एक बार स्नेह करने पर, एक बार हृदय दान करने पर, वह देती ही जाती है और सब-कुछ चढ़ा देती है। स्त्री के लिए स्नेह और प्रेम जीवन-भर की बात है, जब कि पुरुष के लिए वह एक खेल और मन-बहलाव तथा स्त्री को विजय करने, उसपर अधिकार करने का साधन-मात्र है। फलतः पुरुष प्रायः ज्यादा दिनों तक अपने प्रेम को क़ायम नहीं रख सकता, बल्कि इसे एक झंझट समझने लगता है।

स्त्री और पुरुष का हृदय

इसलिए स्त्री को पुरुष के दोषों को दूर करने की चेष्टा में बहुत सावधानी से काम लेना चाहिए।

अविश्वास का परिणाम

दूसरी बात यह कि आजकल जमाना बुरा है। हमारा समाज इतना गिर गया है, हमारे हृदय इतने कलुषित हो गये हैं और हमारा जीवन इतना स्वार्थमय हो गया है कि निर्मूल कल्पनाओं के लिए कितने ही घर चौपट हो जाते हैं। अभी बहुत दिन नहीं हुए, जब एक शिक्षित पति ने अपनी पत्नी की हत्या इसलिए कर डाली थी कि उसने उसे अपने एक मित्र के कन्धे पर हाथ रक्खे हुए देख लिया था। बात असल में यह थी कि पति महोदय मदिरापान और रण्डीबाजी में फँस गये थे। उनके एक घनिष्ठ मित्र से, जो उनके घर प्रायः आया-जाया करते थे, उनकी पत्नी रोती और बार-बार सहायता के लिए याचना करती थी। उनके मित्र अवस्था में उनसे छोटे थे और अपने मित्र की पत्नी को अत्यन्त पूज्य मातृ-भाव से देखते थे। एकदिन वह कोई उपयुक्त उपाय सोचकर अपने मित्र की रक्षा के लिए विदा ले रहे थे कि पति महोदय कहीं से आ गये और अपनी स्त्री को उनके कन्धे पर हाथ रक्खे देख दूर ही से चुपचाप लौट गये। उन बेचारों को पता भी न चला। स्त्री अत्यन्त पतिव्रता और स्वामी की मंगल-कामना में दिन-रात बितानेवाली थी, पर बिना समझे-बूझे पति ने रात में सोते समय उसकी हत्या कर डाली। पीछे उसके बिस्तर के नीचे उनके मित्र का एक पत्र मिला जो उनकी पत्नी के नाम लिखा गया था। इस पत्र का आरम्भ

यों था—

"आदरणीया मातेश्वरी ...."

इसे पढ़ कर पति की आँखें भर आईं। फूट-फूट कर रोने लगे; पर अब क्या हो सकता था ? पीछे इन्हें भी फाँसी हो गई।

क्या स्त्री केवल भोग की वस्तु है ?

यह तो एक नमूना है। इस तरह की अनेक दुर्घटनायें हमारे समाज में अविश्वास और हृदय की दुर्बलता के कारण रोज हुआ करती हैं। हमने स्त्रियों को केवल भोग-विलास की सामग्री समझ रक्खा है; इसलिए हमारा हृदय इतना विषमय हो गया है कि एक स्त्री और एक पुरुष को बात-चीत करते देख तुरन्त हमारे मन में अनुचित और भ्रष्ट शंकायें उठ खड़ी होती हैं। हालत यहाँ तक खराब हो गई है कि यदि सड़क पर से कोई भाई अपनी किसी सुन्दरी बहन के साथ कहीं जा रहा हो, तो बहुत से नीच पुरुष यही सोचते हैं कि न जाने इन दोनों में क्या सम्बन्ध है ? इस विषमय वातावरण का असर यहाँ तक पड़ा है कि अपनी पत्नियों के प्रेम में विश्वास रखने वाले कितने ही अच्छे विचार के पति भी अपनी पत्नियों से दूसरे पुरुषों की घनिष्ठता को शङ्का की दृष्टि से देखने लगे हैं। * इसी तरह अनेक स्त्रियाँ भी पति का दूसरी स्त्रियों की ओर ममता और स्नेह देखकर जल

* अभी कुछ दिन पहले बात-चीत के सिलसिले में, यहाँ के, एक मित्र ने कहा—"मैं अपनी पत्नी को किसी से हँसकर बोलते देखता हूँ तो हृदय में जलन होने लगती है।"

उठती हैं। मानो वासना-रंजन और शारीरिक सम्बन्ध के अतिरिक्त स्त्री-पुरुष में कोई पवित्र घनिष्ठ बंधन हो ही नहीं सकता।

इस प्रकार की अविचार-मूलक कल्पनाओं के कारण पति-पत्नी के अन्दर प्रायः ग़लतफ़हमी फैलने की आशङ्का रहती है; जिसका फल आगे जाकर बड़ा खराब निकलता है। इसलिए प्रत्येक अवस्था में पति-पत्नी को एक-दूसरे में विश्वास रखना चाहिए। इस विश्वास का फल सदा मीठा होगा। दोनों को इस विषय में ऐसा आदर्श क़ायम कर लेना चाहिए कि यदि एक बार कोई ऐसी बात देख भी ले तो यही समझे कि यह आँखों का भ्रम है। जीवन में कितनी ही घटनायें ऐसी होती हैं जो ऊपर से देखने में कुछ दूसरी लगती हैं, पर उनके भीतर कुछ दूसरी ही बात छिपी रहती है। इसलिए किसी बात को देखते ही उत्तेजना में कोई निश्चय नहीं कर लेना चाहिए। पति-पत्नी एक-दूसरे में सन्देह और शङ्का रखने की जगह, एक-दूसरे में विश्वास रक्खें और एक-दूसरे को समझने-समझाने की कोशिश करते रहें तो वे बहुत-सी ग़लतफ़हमियों और उनसे पैदा होनेवाले दुःखों और कठिनाइयों से बच जायँगे।

पतिव्रत और सतीत्व

स्त्री के लिए तीसरी और शायद सबसे बड़ी शर्त यह है कि वह मन और शरीर दोनों से पतिव्रता हो। पतिव्रता का अर्थ यह है कि वह सदा अपने पति का कल्याण और मंगल चाहने वाली हो और अपने शरीर को कभी दूसरे पुरुष द्वारा अपवित्र न होने दे। पति के अतिरिक्त अन्य किसी पुरुष की ओर उसका शारीरिक—वैषयिक

झुकाव न हो। पतिव्रता होने का यह मतलब नहीं है कि स्त्री के हृदय में पति के सिवा दूसरे किसी के लिए स्थान ही नहीं हो और न इसका यही अभिप्राय है कि विवाहिता स्त्री अपने भाई को, अपने देवरों को या अन्य किसी पुरुष को पवित्र एवं घनिष्ठ स्नेह के बन्धन में बाँध नहीं सकती। एक स्त्री पूर्ण पतिव्रता और पतिपरायणा होते हुए भी दूसरों को अपने कोमल हृदय के मधुर स्नेह से सींच सकती है, पर कितनी सीमा तक इस प्रकार का स्नेह किया जा सकता है, यह सब पति-पत्नी के हृदय की उच्चता, पति की उदारता और दोनों के पारस्परिक विश्वास पर निर्भर है।

सत् या सतीत्व स्त्री का प्राण है। जो स्त्री इसके महत्व को नहीं समझती, वह स्त्रीत्व के आदर्श और रहस्य को भी नहीं समझती। हमारे धर्म-ग्रन्थ सती नारियों के ऊँचे त्याग की कहानियों से भरे हैं। सतीत्व का अर्थ केवल शरीर की पवित्रता नहीं है। पत्नी को मन, शरीर और वचन सबमें पतिव्रता होना चाहिए। वह स्त्री सती या पवित्र नहीं हो सकती, जिसका मन तो पवित्र नहीं, पर वह लोक-लज्जा के भय से अपनी शारीरिक पवित्रता बनाये हुए है।

पहले जमाने की अपेक्षा आजकल हमारा जीवन बहुत बनावटी हो गया है। शान-शौक़त, रंग-रूप, चमक-दमक का आकर्षण बढ़ता जाता है। शहरों का जीवन तो ख़राब हो ही गया है, पर देहात में भी छल-कपट ने अपना घर बना लिया है। जहाँ किसी गाँव के एक

पुरुषों की बेवफ़ाई

घर की बेटी को सब गाँव वाले अपनी बेटी समझते थे, वहाँ समय के प्रभाव से एक ही कुटुम्ब में भी पवित्र। सम्बन्ध को बनाये रखना कठिन हो रहा है। इसलिए सीता और साबित्री के समय से आजकल की स्त्रियों के लिए अपनी रक्षा करना अधिक कठिन हो गया है। फिर सीता और सावित्री-जैसी स्त्रियाँ तो अब भी मिल जाती हैं, पर राम और सत्यवान का हममें बिलकुल अभाव हो गया है। हमारा पुरुष-वर्ग बहुत गिर गया है। जहाँ प्रत्येक पुरुष अपनी पत्नी को पतिव्रता का आदर्श उपस्थित करते देखना चाहता हैं, वहाँ स्वयं पत्नी-व्रत की बात चलते ही झुँझला उठता है। मानो पुरुष के लिए कहीं कोई नियम-बंधन और उच्छृंखलता की सीमा ही नहीं है। स्त्री को चिता पर धूल में मिलाकर आते ही शादी की बात चलने लगती है और इतनी बेवफ़ाई और निर्लज्जता से मरी हुई पत्नी की याद की जाती है कि आश्चर्य और दुःख होता है। कितने ही सभ्य और शिक्षित तथा सदाचार की महिमा जाननेवाले पुरुष भी अनेक घरेलू कठिनाइयों की आड़ लेकर, अपनी सफ़ाई देते हुए, दूसरा विवाह कर लेते हैं, जब स्त्री के विषय में ऐसी बात आते ही शास्त्रों और पुराणों की गाड़ी लाकर सामने खड़ी कर दी जाती है। मेरी समझ से यह स्पष्टतः पुरुषों की कमजोरी है। पति के मर जाने पर पत्नी को जितनी कठिनाइयाँ पड़ती हैं, पत्नी के मर जाने पर साधारणतः पति को उतनी कठिनाइयाँ नहीं पड़तीं। इसलिए जब हम दीन-हीन और असहाय विधवा बहनों से सतीत्व और आजीवन पतिव्रत की आशा कर सकते हैं

तो शक्तिमान् और समर्थ पुरुषों को कठिनाइयों की दोहाई देते देख उनपर घृणा और लज्जा आती है। मेरी समझ से अब वह समय आ गया है जब पतिव्रत धर्म की तरह पत्नी-व्रत धर्म को भी विवाह की एक आवश्यक शर्त्त बना देना चाहिए। जब तक ऐसा न होगा, स्त्री-पुरुषों का जीवन बहुत ऊँचा नहीं उठ सकता।

फिर भी मेरा तुमसे, और तुम्हारे रूप में समाज की बहनों से, यहीं नम्र निवेदन है कि वे यह देखकर न चलें कि पुरुष कैसे हैं। पुरुष गिर गये हैं, इसलिए उन्हें भी गिर जाना चाहिए, यह कोई तर्क नहीं है। स्त्री समाज का निर्माण करनेवाली है। वह पुरुष की माता है, इसलिए पुरुष के बनने-बिगड़ने का समाज पर, सन्तान पर, उतना ही असर नहीं पड़ता जितना स्त्री के ऊँचा उठने या नीचे गिरने का पड़ता है। आज पुरुषों ने अपना तेज, अपना गौरव, अपना पुरुषत्व खो दिया है तो हमारी माताओं, बहनों और बहू-बेटियों का कर्त्तव्य है कि अपने जीवन की पवित्रता क़ायम रखते हुए, अपने त्याग और बलिदान, अपनी सेवा और कष्ट-सहिष्णुता से हमारे सामने सच्चे नारीत्व का, सच्चे मातृत्व का, प्रकाश उपस्थित कर हमें सच्चा रास्ता दिखाएँ; हम गिरे हुए पुरुषों को भी ऊपर उठाएँ। यह हमारे लिए कम गौरव की बात नहीं है कि जब पुरुषों ने अपनी लज्जा और अपने गौरव को फाँसी लगा दी है, समाज में कितनी ही बहनें अपनी आँखों के आँसू और अपनी पवित्रता की आग से

बहन ज्यादा मूल्यवान है !

उनके पापों को धोकर बहातीं और उनके जीवन को प्रकाशित करती रही हैं। ये बातें मैं एक पुरुष की हैसियत से, पुरुषों के प्रतिनिधि की हैसियत से, नहीं कह रहा हूँ। पुरुषों का, स्त्रियों से कुछ कहने का मुँह नहीं रह गया है। उनको पहले अपनी ओर देखना चाहिए; मैं तुमसे, तथा तुम्हारे द्वारा अन्य बहनों से, सतीत्व के महत्व की बात इसलिए कह रहा हूँ कि मैं अपने अभागे भाइयों की तरह अपनी बहनों को भी नीचे गिरते देख नहीं सकता हूँ। मैं जानता हूँ कि पुरुष-हृदय बहुत मलिन हो गया है, फिर भी अपनी बहनों की ओर देखकर आशा की हलकी साँस ले सकता हूँ। उन्हें देखकर विश्वास होता है कि हमारे पास संसार को दिखाने योग्य जो कुछ था, वह सभी नष्ट नहीं हो गया है। उसमें अभी कुछ बचा भी है, जिसे देखकर, जिसकी सहायता से सम्हलकर, संभव है कि हम बाज़ार में अपनी साख फिर क़ायम कर सकें। इसलिए जब एक पुरुष को पतित होते देखता हूँ तो क्रोध आता है, पर एक बहन को गिरते देखता हूँ तो दिल को चोट लगती है, कलेजा मुँह को आने लगता है और रोना आता है। मेरे नजदीक बहन भाई से ज्यादा मूल्यवान चीज है, इसलिए एक भाई को खोने का दर्द सहा जा सकता है पर एक बहन को खोकर संसार सूना-सा अनुभव करता हूँ!

सेवा, स्त्री-जीवन को सुखी बनाने के लिए चौथी जरूरी बात है। केवल पतिव्रता होने से गृहस्थ का काम नहीं चल सकता; उसे मधुर और सुखी बनाने के लिए, अथक परिश्रम और सेवा की जरूरत पड़ती है। ससुराल में पति का प्रेम प्राप्त कर लेने के बाद भी बहुत से आवश्यक कर्त्तव्य रह जाते हैं। फिर कितनी ही स्त्रियाँ पति की वासनामय अनुरक्ति को प्रेम समझ बैठती हैं और सोचती हैं अब क्या, मेरा पति तो मुझे प्राणों से भी अधिक चाहता है। पर जब यह क्षणिक आवेश, यह रूप की प्यास और मोह, शरीर के साथ ही शिथिल और नष्ट होने लगता है, तब आँखे खुलती हैं। दुनिया में बहुत थोड़े लोग सच्चा प्रेम करते देखे जाते हैं और उनसे भी कम में सच्चे प्रेम को पहचानने की शक्ति होती है। पर सदा यह समझना चाहिए कि जहाँ इच्छायें बढ़ती जा रही हों, जहाँ प्रेम में स्थिरता न हो, जहाँ बहुत जल्द एक-दूसरे में प्राणों से भी अधिक प्रेम करने की बातें होने लगें वहाँ प्रेम नहीं, क्षणिक मोह है और बहुत दिन तक इस पूँजी से दूकान न चलाई जा सकेगी। प्रेम हृदय के एक हो जाने से होता है और इसीलिए प्रेम ज्यों-ज्यों शुद्ध और सच्चा होता जाता है, त्यों-त्यों शरीर का ख़याल उसमें कम होने लगता है। जहाँ भोग-वासना और शारीरिक मिलन की कामना बलवान रहती है, वहाँ सच्चा और कभी न मिटनेवाला प्रेम पनप नहीं सकता। स्त्री-पुरुष दोनों को यह भलीभांति गाँठ बाँध लेना चाहिए कि प्रेम का भोजन शरीर-सुख नहीं, हृदय की अनुभूति

नकली बनाम असली प्रेम!

है। आजकल बाजार में प्रेम के नाम पर अत्यन्त दूषित और कलुषित चीजें बिकने लगी हैं। शारीरिक आकर्षण और मोह को, भूल से, प्रेम का नाम दे दिया गया है। विवाह के बाद पति-पत्नी में इस प्रकार का झूठा 'प्रेम' (जो असल में विषय-भोग का एक प्रवाह मात्र होता है) बहुत देखा जाता है। इस-लिए जो पति-पत्नी आजन्म स्नेह बनाये रखना चाहें, उन्हें यह समझना चाहिए कि यद्यपि उनका सम्बन्ध बिलकुल शुद्ध और भाई-बहन की तरह पवित्र और ऊँचे प्रेम से पूर्ण नहीं हो सकता, क्योंकि उसमें शारीरिक वासना का कुछ भाव रहता ही है, पर वे चाहें तो अपनी वासना को बहुत नियमित करके अपने स्नेह को एक सीमा तक पवित्र बना सकते हैं और शारीरिक मोह को प्रेम में बदल सकते हैं।

सेवा का मेवा

जहाँ पति और पत्नी अपने कर्तव्य को ठीक-ठीक समझते हैं; जहाँ उनके जीवन का उद्देश्य सिर्फ चौके-चूल्हे, भोग-विलास और सन्तानोत्पत्ति ही नहीं है और वे एक दूसरे की सहायता से ऊँचा उठना, किसी आदर्श को प्राप्त करना चाहते हैं, वहाँ उनको अधिक से अधिक संयम से काम लेना चाहिए।

इस संयम के लिए स्त्री में सेवा की और पुरुष में परोपकार और त्याग की लगन होनी चाहिए। आजकल कितने ही पति, पत्नी के शारीरिक आकर्षण में पड़कर अपने सामाजिक और घरेलू दोनों प्रकार के कर्त्तव्य भूल जाते हैं। माँ-बाप का अना-दर तक करने लगते हैं। यदि माता या घर की कोई और स्त्री

उनकी पत्नी से कोई काम करने को कह दे तो वे झुँझला उठते हैं। ऐसे पति वासना और मोह के कारण अपनी पत्नियों को सिर्फ भोग-विलास की मूर्ति और शृंगार करके देखते रहने की वस्तु समझते हैं। इसी तरह कितनी ही स्त्रियाँ इतनी अनुदार और ईर्ष्यालु होती हैं कि यदि घर में उनका पति ही कमाने वाला है तो सास-सुसर, देवरों-ननदों इत्यादि को चोट पहुँचाने-वाले व्यंग-बाणों से घायल किया करती हैं, जिसका फल कभी-कभी जहरीला और दुःखदाई हो जाता है। पति को पत्नी पर और पत्नी को पति पर अपना अधिकार तो जरूर समझना चाहिए पर इस अधिकार का उपयोग अच्छी बातों में होना चाहिए। पत्नी को यह सदा ख़याल रखना चाहिए कि उसकी सास ने ही उसके पति को जन्म दिया है, उसने उसके पति के लिए अगणित कष्ट सहे हैं; उसका पति जो कुछ है, उसमें उसकी सास का बहुत बड़ा हिस्सा है, इसलिए उसके पति पर उसकी सास का कुछ कम अधिकार नहीं है। यदि पति अच्छा है, तो इसका श्रेय सास को ही है। इस ख़याल से प्रत्येक विवाहिता लड़की को सदा पति के साथ ही, सास-सुसर एवं घर के अन्य लोगों की सुविधा और सेवा का अधिक ख़याल रखना चाहिए और स्वयं कष्ट सहकर भी उन्हें सुख पहुँचाने का यत्न करना चाहिए।

निस्वार्थ सेवा और प्रेममय हृदय से बढ़कर मनुष्य को ऊँचा उठाने वाली दूसरी चीज दुनिया में नहीं है। जो स्त्री जीवन का सच्चा सुख चाहती हो उसे कभी आलस्य न करना चाहिए और सदा, यथासंभव, घर को सुधारने, छोटे-बड़ों की सेवा करने में लगा रहना चाहिए। भूल से, बहुत से लोग सेवा को दासता का चिन्ह और एक बुरी चीज समझते हैं। वे यह नहीं जानते कि सेवा भी कई प्रकार की होती है। एक कुली भी सेवक है और महात्मा गाँधी भी अपना समय सेवा में लगाते हैं, पर जब एक कुली का काम लोग नापसन्द करते हैं, महात्मा गांधी-जैसी सेवा के लिए बड़े-बड़े लोग तरसते हैं। इससे यह सहज ही समझा जा सकता है कि सेवा कोई बुरी वस्तु नहीं है। हाँ, उसका ढंग अच्छा या बुरा हो सकता है। जिस सेवा में अपने लाभ या स्वार्थ का भाव जितना ही कम होता है, वह उतनी ही ऊँची समझी जाती है। इससे हम दूसरों की सहायता तो करते ही हैं, अपने मन को भी निर्मल बनाते हैं। झूठा अहंकार और आलस्य हमारे पास नहीं फटकने पाते और शरीर का उपयोग अच्छे काम में होता है। इसके अतिरिक्त सच्ची और प्रेममय सेवा से हम विरोधी के हृदय में भी स्थान पा सकते हैं और उसके हृदय से भी ईर्ष्या-द्वेष और जलन दूर करके उसे भी अपने साथ ऊपर उठा सकते हैं।

गलत धारणा

हिन्दू स्त्रियों को सेवा का उपदेश देना एक प्रकार से व्यर्थ है। उनका सारा जीवन ही सेवा और त्याग का जीवन होता है, पर इतनी बात लिखने की आवश्यकता इसलिए पड़ी कि सेवा

करते हुए बहुत-सी स्त्रियाँ, अपने को दुःखी और दासी के रूप में अनुभव करती हैं, इसलिए उनकी सेवा का जो मधुर परिणाम होना चाहिए वह नहीं होता। मन में खीझकर सेवा करने से लाभ के बदले उलटे हानि होती है, इसलिए तुमको, और अन्य बहनों को, अच्छी तरह समझना चाहिए कि सेवा कोई बुरी चीज नहीं है और इससे चाहे दूसरे प्रसन्न न भी हों तो भी स्वयं अपना हृदय बहुत शुद्ध और निर्मल हो जाता है।

इस पत्र में दाम्पत्य जीवन की मुख्य-मुख्य बातें मैंने लिख दी हैं। कुछ व्यावहारिक बातें जो अभी लिखनी रह गई हैं, अगले पत्रों में लिखूँगा।

आशा है, तबतक तुम इन पत्रों की बातों को, भली प्रकार, मन में धारण कर लोगी। भगवान् तुम्हारा मंगल करें।

तुम्हारा भाई

'सुमन'

[४]

पुरुष-हृदय का रहस्य

श्रीगाँधी-आश्रम,
हटुण्डी
(राजपूताना)
१४-१०-३०

प्रिय भगवती,

पिछले पत्रों में विवाहित जीवन से सम्बन्ध रखने वाली बहुत-सी बातें मैं तुम्हें लिख चुका हूँ। उनको जानने, समझने और उनके अनुसार चलने से भावी जीवन की तुम्हारी कितनी ही कठिनाइयाँ दूर हो जायँगी किन्तु उनके साथ ही प्रत्येक स्त्री को यह भी जानना चाहिए कि पुरुषों और स्त्रियों के हृदय और स्वभाव में अन्तर है। इस विषय में भी पिछले किसी पत्र में मैं थोड़ा बहुत लिख चुका हूँ, पर यहाँ कुछ विस्तार से समझाने की आवश्यकता है।

मैंने लिखा था कि पुरुष अधिकार चाहता है; शासन करने, हुक्म देने की उसकी आदत है इसलिए वह हर अवस्था में शासन करना और इस प्रकार अपने मन में भरे हुए अभिमान की भूख मिटाना चाहता है। चाहे कितने ही सुधरे विचार का, कितना ही उदार पुरुष हो,

अधिकारप्रिय पुरुष

वह सदा यह चाहता है कि स्त्री उसकी आज्ञा माने, उसकी इच्छाओं के पीछे चले। बहुत-से पुरुष इसे अस्वीकार करेंगे और अपनी पत्नियों से कहेंगे कि 'यह तो मेरी इच्छा है पर तुम ठीक न समझो तो जाने दो।' किन्तु यह कहने वाला पुरुष भी मन में यही चाहता है कि स्त्री उससे कहे कि 'नहीं, मेरी इच्छा क्या ? जो आपकी इच्छा है वही मेरी इच्छा है।' यदि स्त्री मतभेद ही प्रकट करके रह जाय और कहे कि 'मेरा तो यह मत है किन्तु आपकी बात मानना ही मेरा धर्म है' तो पुरुष के गर्व की भूख मिट जाती है; वह सोचता है कि मेरी स्त्री संपूर्णतः मेरे अधिकार को मानती है। यदि स्त्री जिस बात को ठीक समझती है, उसी को करती जाय, तो जो पुरुष स्त्रियों की श्रेष्ठता और बराबरी के अधिकार को मानता है, वह भी मन में असन्तोष का अनुभव करेगा।

जहाँ स्त्री से पुरुष सदा अपने पीछे चलने की आशा रखता है, वहाँ वह स्वयं मतभेद होने पर स्त्री की बात मान कर चलने को तैयार नहीं होता। वह हर अवस्था में यही चाहता है कि उसी की बात मानी जाय।

अन्तर !

मैंने अनेक ऐसी स्त्रियों को देखा है, जिन्होंने अपने अस्तित्व को, अपने विचारों को और अपनी इच्छाओं को पतियों की इच्छाओं पर बलिदान कर दिया, किन्तु अभी तक ऐसा पुरुष नहीं देखा जिसने मतभेद होने पर जीवन की अपनी खास धारणाओं और सिद्धान्तों को पत्नी की इच्छा और सम्मति पर बलिदान कर दिया हो। यदि कहीं दो-एक ऐसे उदाहरण मिलते भी हैं तो

उनमें शारीरिक भोग-विलास और यौवन-उन्माद की प्रधानता होती है। पुरुष सदा यह चाहता है कि उसका अधिकार माना जाय, पर वह खुद अपने ऊपर अधिकार नहीं देना चाहता। वह बन्धन में रखना जानता है, पर बन्धन मे रहना उसने नहीं सीखा। उसके स्वभाव में लेना ही लेना है, देना नहीं।

ऐसा नहीं कि पुरुष स्नेह करता ही नहीं। वह स्नेह करने लगता है तो बहुत शीघ्र पागल हो जाता है; देर उसे असह्य हो जाती है। वह स्नेह के लिए प्राण दे सकता है, पर स्त्री की तरह जीवन-भर धीरे-धीरे, तिल-तिल जलना उसकी प्रकृति के विरुद्ध है। वह एक-बार सब कुछ त्याग कर सकता है पर उस सब को धीरे-धीरे जन्मभर दान करते रहना और अन्त तक पूरी तरह और पहले की भाँति वफ़ादार बना रहना उसके लिए कठिन है। वह सदा झंझट से बचना चाहता है और इसके लिए बुद्धि और सिद्धान्त की आड़ में कई बार ऐसे बहाने ढूँढ़ता है कि भोली स्त्री को उसके साथ चलना ही पड़ता है। सन्तान के सम्बन्ध में न्यायतः माता-पिता दोनों की जिम्मेदारी बराबर ही है किन्तु व्यवहारतः पुरुष उस 'झगड़े' को स्त्री पर छोड़ देता है। अपने बच्चे को देखकर वह प्रसन्नता प्रकट करता है; वह चाहता है कि मेरे आते ही मेरा बच्चा प्रिय सम्बोधनों से पुकारता हुआ, दौड़कर, मेरी गोद में आजाय, पर यदि माता यह चाहे कि चार-छः महीने पिता बच्चे को सम्हाले तो पिता इसके लिए कभी प्रसन्नतापूर्वक तैयार न होगा। वह दाई, नौकरानी रख दे सकता है, पर स्वयं इस 'झंझट' में नहीं फँसेगा। पुरुष सदा घरेलू

जीवन की जिम्मेदारियों और बन्धनों से उदासीन रहता है, पर वही पुरुष यह भी चाहता है कि स्त्री उन्हीं बन्धनों में जीवन के सुख का अनुभव करे। यह कैसी विचित्र बात है!

पुरुष की प्रकृति केन्द्रापसारी (Centrifugal) है अर्थात् वह अपने को, अपने अस्तित्व को विस्तृत करना—फैलाना चाहता है। वह बाह्य का, बाहरी जीवन का, बाहरी संसार का प्रेमी है; एक को स्नेह करके उसी के लिए जीवन उत्सर्ग कर देना और दुनिया की अन्य बातों का ख़याल न करना—यह पुरुष से नहीं हो सकता। पुरुष केवल यही नहीं चाहता कि उसकी स्त्री उसे स्नेह करती रहे; वह यह भी चाहता है कि उसकी स्त्री उसके प्रति अपने स्नेह को बार-बार प्रकट करती रहे। वह पत्नी के चुपचाप शान्त और मधुर भाव से स्नेह करने से ही सन्तुष्ट नहीं हो जाता, वह चाहता है कि पत्नी आकर उससे कहे—"प्राणनाथ, तुम्हारे प्रेम में मेरी बुरी दशा है; मुझे तुम्हारे न रहने पर खाना-पीना कुछ अच्छा नहीं लगता।" वह प्रेम भी चाहता है और उस प्रेम का प्रकाशन—विज्ञापन भी चाहता है। बिना इसके चुपचाप प्रेम के अमृत को पीकर तृप्त हो जाने वाला प्राणी वह नहीं है। वह तो स्त्री ही है जो भीतर के 'अनबोलते' (मूक) को पाकर ही तृप्त हो जाती और अपने को धन्य अनुभव करती है।

दूसरी बात यह है कि पुरुष यद्यपि अपने को स्त्री का रक्षक और स्वामी समझता और अनुभव करता है, फिर भी वह चाहता है कि मेरी स्त्री मेरी सेवा एवं देख-रेख इस तरह करे और मेरा इस तरह ख़्याल रक्खे जैसे वह अपने बच्चे का रखती है या रख सकती है। यह बात केवल पति-पत्नी के लिए ही नहीं है। पुरुष जिस रूप में भी किसी स्त्री को स्नेह करे—फिर चाहे वह बहन हो, मित्र हो, पुत्री हो—वह सदा उससे ऐसी आशा रखता है। वह चाहता है कि जैसे माँ, बच्चे की बीमारी में क्षणभर उसे नहीं छोड़ती; जैसे वह उसके लिए तड़पने लगती है, वैसे ही जिस स्त्री को मैं स्नेह करता हूँ और जिसके साथ अपनेपन का अनुभव करता हूँ, वह भी मेरे दुःख-दर्द में माता के समान मेरी सेवा करे; मुझे अपने आश्रय और छाया से अलग न करे; मेरी जरूरतों का, मेरी सुविधाओं का वह उसी तरह ख़्याल रक्खे जैसे माँ बच्चे का रखती है। स्त्री-पुरुष में किसी तरह का स्नेह–सम्बन्ध हो, पुरुष स्त्री पर ही अपनी सुविधाओं की जिम्मेदारी डालना चाहता है; वह इस मामले में उस पर पूर्णतः निर्भर करता है। वह यह नहीं चाहता कि अपने कपड़े-लत्ते की खबर मुझे रखनी पड़े, वह यह भी नहीं चाहता कि मुझे खाने-पीने के लिए स्त्री को हिदायत करनी पड़े। वह यह चाहता है कि स्त्री उसे खिलावे-पिलावे, उसके साथ हँसे-बोले, दुःख में हाथ में हाथ लेकर धीरज दे और कहे कि 'तुम घबड़ाओ मत, भगवान् जो करेंगे, अच्छा ही होगा। तुम दिल छोटा मत करो।' हर एक पुरुष चाहता है कि

आश्रय की आकांक्षा

वह बीमार पड़े तो उसकी स्त्री या उसकी स्नेहपात्री पास बैठी रहे और कहने पर भी न उठे; अपने तन-बदन की सुध भूलकर सेवा करे। बीमार पुरुष स्त्री से कहता है कि 'जाओ भोजन करो, नहीं देर हो जायगी और तुम भी बीमार पड़ोगी तो मुझे और दुःख होगा; तबीयत और ख़राब होगी।' किन्तु स्त्री यदि तुरन्त उसकी बात मानकर वहाँ से चली जाय तो उसे उतना सुख और सन्तोष अनुभव न होगा जितना उस अवस्था में होगा जब स्त्री कहे "जाती हूँ, तुम्हें ज़रा नींद आ जाय तो चली जाऊँगी।" या ' हाँ जाती हूँ, पर भोजन करने की ओर रुचि नहीं होती।" इन बातों को सुनकर पुरुष का हृदय खिल उठता है और वह सन्तोष की साँस लेता है। ज़रा भी बीमारी में, ज़रा भी कष्ट में, पुरुष घबड़ा जाता है तथा अभाव का अनुभव करता है और उस स्नेह के लिए तड़पने लगता है जो बच्चे का माँ के प्रति होता है। तुमने देखा होगा कि जब हम-लोग बीमार पड़ते हैं तो अनायास माँ की याद आ जाती है और कई कई बार उसे उसकी अनुपस्थिति में भी पुकारने लगते हैं। इसका कारण पुरुष के अन्दर बनी हुई बचपन की स्मृति है। स्त्रियों को पुरुषों के प्रति इस अभाव का इतना अनुभव नहीं हो सकता क्योंकि स्त्री की माता तो स्वयं स्त्री ही है, पुरुष नहीं; पर पुरुष—चाहे वह पति रूप में हो, पुत्र रूप में हो, या भाई के रूप में हो—हर हालत में स्त्री का ही पुत्र है, उसीके पेट से उत्पन्न हुआ है; इसलिए स्वभावतः स्त्री को पाने के लिए, उसके अभाव में, उसका हृदय, मातृहीन बालक के समान, तड़पने

लगता है। जब बचपन में बच्चे को जरा-सी चोट लग जाती है, जब वह जरा-सी बात के लिए रोने लगता है, तो माँ के लिए उसकी वह जरा-सी पीड़ा भी असह्य हो जाती है, वह बच्चे को गोद में चिमटा लेती और उसका मुख चूमकर उसे सान्त्वना देती है। जब पुरुष बड़ा हो जाता है, जब वह विवाहित होकर गृहस्थ-धर्म के बन्धन में बँध जाता है, तो माता की अपेक्षा पत्नी पर वह अधिक निर्भर करता है; इसलिए बचपन में जो आशा उसे माँ से होती है, वह विवाहित जीवन में, जरा बदले हुए रूप में, पत्नी से होती है। पुरुष स्त्री को प्रेम प्रकाशित करते देखने के लिए इतना अधीर होता है कि जरा-सा सिर-दर्द होने पर यदि वह अपनी स्त्री को व्याकुल और घबड़ाई हुई न देखे तो यही समझेगा कि स्त्री बिलकुल पत्थर का दिल रखती है। यहाँ तक कि कभी-कभी स्त्री के स्नेह में ही शंका होने लगती है।

जैसा कि मैं लिख चुका हूँ, यह बात विवाहित पुरुषों के लिए ही नहीं है। पुरुष चाहे विवाहित हो या अविवाहित, जिस स्त्री को वह अधिक स्नेह या आदर या श्रद्धा करता होगा, कोई शारीरिक या मानसिक कष्ट उपस्थित होने पर यही आशा रखता है कि वह माँ के समान मेरी सेवा-सुश्रूषा करेगी; मुझे धीरज देगी और मेरे दुःख में हाथ बटायेगी। यह बात अनेक यूरोपीय और भारतीय विद्वानों ने तो लिखी ही है, पर मेरा निजी अनुभव भी ऐसा ही है।

यह यों भी साधारण समझ की बात है कि जिसे हम स्नेह करते हैं या जिसको अपना समझते हैं, दुःख या कष्ट में उसकी याद पहले आती है। इसलिए तुम इस बात को सदा याद रखना कि सेवा करने में पति का भी बच्चे के समान ही ध्यान रखना चाहिए और अच्छा काम करने पर उसको प्रशंसा करनी चाहिए; कष्ट या दुःख में होने पर उसको धीरज देना चाहिए।

तीसरी बात यह है कि हम हिन्दुओं के संस्कार कुछ ऐसे पड़ गये हैं और उनका प्रभाव हमारे दिल पर कुछ इस तरह का पड़ा है कि प्रत्येक पति चाहता है कि उसकी पत्नी उसमें श्रद्धा रक्खे और उसे देवता समझे।

देवता के रूप में

यद्यपि बहुत से पुरुष इस बात को स्वीकार न करेंगे और कितने ही अपनी पत्नियों से उनकी योग्यता एवं शील की प्रायः प्रशंसा करके यहाँ तक कह देते हैं कि मेरे जीवन में इतना सुख और शान्ति तुम्हारे ही कारण है, पर सच्ची बात तो यह है कि प्रत्येक पुरुष मन में यह समझता है कि उसने अपनी स्त्री पर बड़ी कृपा की है जो उससे विवाह करके उसे अपने घर की मालकिन बना दिया है। वह चाहता है कि उसकी स्त्री इस बात को अनुभव करे और संभव हो तो कभी-कभी कहे भी कि "ईश्वर को धन्यवाद है कि उसने मुझ दासी को तुम्हारे चरणों में स्थान दिया। तुम्हारे साथ मेरा जीवन धन्य हुआ है।" पति सोचता है कि मैंने विवाह करके अपने ऊपर बड़ी झंझट मोल ले ली है और इतना पत्नी के ही लिए किया है, इसलिए इस

उपकार से पत्नी कभी उऋण नहीं हो सकती !

इस विचार के कारण पति यही चाहता है कि स्त्री मुझे देवता समझे; उसके रोम-रोम से मेरी प्रशंसा निकले; वह यह विश्वास दिलाती रहे कि उसकी दृष्टि में मैं एक महान् पुरुष हूँ और मुझे पाकर वह पूर्णतः सन्तुष्ट है, तथा मुझसे अधिक समर्थ एवं योग्य पुरुषों को देखकर भी कभी यह नहीं सोचती कि मेरा विवाह और अच्छे पुरुष के साथ क्यों न हुआ। यह भाव भी उस अहंकार का परिणाम है जो स्त्री पर अपना अधिकार और प्रभुत्व रखने के कारण प्रत्येक पुरुष के अन्दर होता है। प्रत्येक पुरुष, प्रत्येक पति, पत्नी द्वारा अपनी बहुत बढ़ाकर की जाने वाली प्रशंसा या प्रशंसापूर्ण सम्बोधनों से सन्तोष और प्रसन्नता का अनुभव करता है। जब पत्नी पति को 'प्राणनाथ' लिखती है, तो पति को प्रसन्नता होती है; यद्यपि सच्चे अर्थ में इस शब्द का कोई मूल्य नहीं, क्योंकि यदि कोई इन प्राणों का नाथ है तो वह ईश्वर है। जिस पति के अधिकार में प्राण देना और प्राण लेना दोनों ही नहीं है, उसे 'प्राणनाथ' कहना एक प्रकार से भगवान् के अस्तित्व की हँसी उड़ाना है। प्राण का निर्माण करने में पति की अपेक्षा माता-पिता अधिक सहायक और कारण होते हैं। पति शरीर और हृदय तक का ही स्वामी हो सकता है। कौन पति इस बात को नहीं जानता, पर इस सम्बोधन से उसके अहंकार की भूख मिटती है और सन्तोष होता है,इसलिए वह चाहता है कि स्त्री उसे ही जीवन में अपना सर्वस्व समझे, वह उसे ही अपना ईश्वर, अपना देवता माने।

यद्यपि मैं इस बात में विश्वास नहीं रखता कि पति ही पत्नी के लिए ईश्वर है और दूसरे किसी देवता या ईश्वर की कल्पना करने की ज़रूरत उसके लिए नहीं है, फिर भी अभी हमारे समाज में, शिक्षा और विवेक की कमी के कारण, ऐसी अवस्था उत्पन्न नहीं हुई है कि हम इस धारणा के, इस विचार के, विरुद्ध विद्रोह करें। इससे स्त्रियों की ही हानि की संभावना अधिक है क्योंकि वे असहाय एवं अशक्त हैं, तथा पति पर ही सब अवस्था में निर्भर करती हैं। इसलिए सुख की इच्छा रखने वाली पतिव्रता बहनों को, जहाँ तक हो सके, पति के अन्दर श्रद्धा रखने की चेष्टा करनी चाहिए और उसके साथ रहने में सन्तोष का अनुभव करना चाहिए।

सखा और मित्र के रूप में

चौथी बात यह कि प्रत्येक पुरुष चाहता है कि उसकी स्त्री भी उन्हीं बातों को पसन्द करे जो उसे अच्छी लगती हैं; जो लोग उसके प्रिय हैं वे उसकी स्त्री को भी प्रिय हों। पुरुष चाहता है कि स्त्री मुझे घर की कठिनाइयों से तो मुक्त रक्खे ही पर घर-बार सम्हालते हुए मेरे दुःखों और कठिनाइयों में भी भाग ले; मेरे बाहर के कामों के बारे में उत्साह प्रकट करती रहे। जैसे किसी का पति देश-सेवक है तो वह चाहता है कि स्त्री भी, मेरी तरह आन्दोलन में भाग न ले तो कम से कम, मेरे कामों की ओर निगाह रक्खे; मेरे साथियों का आदर करे और मेरा अनुसरण करने के लिए तैयार रहे। इसलिए स्वयं दुःख और कष्ट उठा कर भी स्त्री को पति के अच्छे कामों का अनुसरण करने के लिए तैयार रहना चाहिए।

पुरुष विवाह करके अपनी स्त्री को अर्द्धांगिनी के रूप में स्वीकार करता है। आधे अंग का काम पूरा करना स्त्री का परम धर्म है। स्त्री के हिस्से में जो काम आते हैं उनमें घर का सम्हालना मुख्य है। पति के लिए सुख-शान्तिमय घर तैयार करना उसका कर्तव्य है और उसका बहुत-सा सुख-दुःख इसी बात पर निर्भर करता है। अनेक स्त्रियाँ जीवन में घर का महत्व नहीं समझतीं। स्त्री को समझना चाहिए कि पति के हृदय की सुख-शान्ति बहुत-कुछ घर के वातावरण पर निर्भर है। पुरुष-हृदय चंचल और अस्थिर है। जब घरेलू झगड़ों और अशान्ति के कारण वह उद्विग्न हो जाता है तो कभी-कभी बड़े भयानक काम कर डालता है, अथवा घर एवं पत्नी से भीतर ही भीतर उदासीन और विरक्त होता जाता है। तब वह घर से बाहर के लोगों की सहानुभूति खोजता फिरता है। यहीं से स्त्री के सोहाग का सर्वनाश होने लगता है। इसलिए जो चतुर स्त्री है, वह पति के लिए सदा सुखमय परिस्थिति तैयार करती है। पुरुष यह चाहता है कि घर उसके लिए आराम की जगह हो, जहाँ जाकर वह संसार की चिन्ताओं और कष्टों से क्षणभर के लिए छुटकारा पा सके और सुख की साँस ले। जो स्त्री अपने दाम्पत्य-जीवन को सुखी बनाना चाहे, वह सदा घर को ईर्ष्या-द्वेष और झगड़ों से मुक्त रक्खे और यदि साधारण झगड़े खड़े हो जायँ तो अपनी सहनशीलता और मृदु-स्वभाव से उनका अन्त कर दे; पति को उस झगड़े में डालकर उसकी शान्ति नष्ट न करे।

स्त्री का हिस्सा

डाक का समय हो गया है; इसलिए आज यहीं तक। स्त्री-हृदय की विशेष बातें अगले पत्र में लिखूँगा।

आशा है, तुम प्रसन्न होगी। भगवान् तुम्हारा कल्याण करें।

आशीर्वाद के साथ—

तुम्हारा भाई

'सुमन'

[५]

स्त्री--हृदय का रहस्य

श्री गाँधी-आश्रम
हटुण्डी
(राजपूताना)
१७-१०-३०

प्रिय भगवती,

पिछले पत्र में मैंने तुम्हें यह लिखा था कि पुरुष और स्त्री के हृदय में भिन्नता होती है और यह भी बताया था कि पुरुष का हृदय स्त्रियों से क्या चाहता है और क्या करने से स्त्री पुरुष को सन्तुष्ट रख सकती है। इस पत्र में मैं यह लिखना चाहता हूँ कि स्त्री क्या चाहती है और उसके हृदय की भावनायें किस तरह काम करती हैं।

मेरी यह ढिठाई यदि अन्य बहनों को मालूम हो तो निश्चय ही उन्हें हँसी आयेगी। मैं, एक-पुरुष, जिसके पास इस संबंध में बहुत कम अनुभव है, स्त्री-हृदय के बारे में क़लम उठावे, यह निस्सन्देह कुछ समझ में आ सकने योग्य बात नहीं है। किन्तु मैंने अपने विवाहित मित्रों से एवं अपनी कई विवाहित बहनों से इस विषय में जो कुछ जानकारी प्राप्त की है, उसे तुम तक पहुँचा देना मेरा कर्तव्य

है। मेरे पास जो है, वही तो मैं तुम्हें दे सकता हूँ। यदि मेरे पास लाखों रुपये नहीं हैं, तो इसका यह मतलब नहीं कि मेरे पास सौ-पचास जो हैं, उनसे तुम्हारी सहायता न करूँ? फिर स्त्री का एकमात्र पत्नी ही रूप तो नहीं है; अविवाहित भी है; विधवा भी है। इसलिए जब मैं स्त्री-हृदय के रहस्य तुम्हें बताने चला हूँ, तो इसका यह आशय नहीं कि केवल विवाहित स्त्रियों के हृदय की चर्चा करना मेरा उद्देश्य है; मैं सभी प्रकार की स्त्रियों की बात कर रहा हूँ। विवाहित और अविवाहित की आकांक्षाओं के प्रकाशन में भेद हो सकता है, पर हृदय की मूल भावनायें बहुत कम बदलती हैं।

यह ठीक है और इसे मैं आरंभ में ही स्वीकार कर लेना चाहता हूँ कि स्त्री-हृदय को जान और समझ लेना पुरुष-हृदय को जानने के समान सरल नहीं है। सभ्यता के आरम्भकाल से ही स्त्री एक बहुत ही गूढ़ और रहस्यपूर्ण वस्तु रही है। इतने दिनों के अनुभव के बाद भी उसके बारे में लोगों में बहुत मत-भेद है। इसका कारण यह है कि स्त्री का हृदय बहुत संकोचशील होता है। जहाँ पुरुष बाह्य का, बाहरी संसार का, प्रेमी है वहाँ स्त्री अन्तर की, आन्तरिक संसार की, प्रेमिका है। पुरुष के पास जो कुछ है, उसका वह विज्ञापन, प्रकाशन चाहता है—दुनिया भर पर छा जाना चाहता है। स्त्री के पास जो कुछ होता है, उसे वह अपने ही अन्दर छिपाकर रखना चाहती है। इसलिए पुरुष जहाँ जल्द पहचान लिया जाता है, वहाँ स्त्री, अपने को छिपाकर रखने के कारण, देर में

स्त्री-जाति की गूढ़ता

६

पहचानी जाती है या उसको पहचानने में पुरुष प्रायः ग़लती कर जाता है। कितनी ही स्त्रियाँ ऐसी हैं जो अपने पतियों को देवता मानती हैं, पूर्ण पतिव्रता हैं और हृदय से स्नेह करती हैं, पर स्वभाव, संस्कार, लज्जा और कौटुम्बिक परिस्थिति के कारण अपने प्रेम को लम्बी-चौड़ी बातों और पुरुष को प्रिय लगनेवाले प्रशंसात्मक वाक्यों में प्रकट नहीं कर सकतीं। यहाँ तक कि कई बार पुरुष का उतावला और अधीर हृदय, ग़लती से, कुछ का कुछ समझ बैठता है। विवाह के बाद, कुछ दिनों तक लज्जा के कारण यह अवस्था विशेष कर देखी जाती है।

स्त्री और पुरुष

पुरुष समझता है कि विवाह करते ही मैं स्त्री के सर्वस्व का स्वामी हो गया। इसलिए उसके पास जो कुछ है, वह सब अविलम्ब मुझ पर प्रकट कर दे या सौंप दे। यह पुरुष की, विवाहित जीवन में, स्त्री के सम्बन्ध में, सबसे बड़ी मनोवैज्ञानिक भूल है। स्त्री के पास, उसके अन्दर, उसके हृदय में, जो कुछ होता है, उसी पूँजी से उसे जन्मभर अपना काम चलाना पड़ता है। एक-मात्र पति के साथ ही बँध जाने के कारण उसका ध्यान संसार की अन्य वस्तुओं से हटकर एक पुरुष में केन्द्रित हो जाता है; वह पुरुष ही उसका सर्वस्व हो उठता है, इसलिए जन्मभर उस पुरुष में ही अपने जीवन के सुख को अनुभव करने का प्रयत्न स्त्री को करना पड़ता है। यदि स्त्री अपने हृदय की ममता, प्रेम और सहानुभूति को, पुरुष के उतावलेपन को सन्तुष्ट करने के लिए, अपने जीवन की यात्रा के आरम्भ में ही दान कर दे या प्रका-

शित कर दे, तो आगे वह कैसे अपना रास्ता तै कर सकेगी ? पुरुष के लिए संसार में आकर्षण की, ध्यान देने की, बहुत-सी चीजें हैं। जो पुरुष सदाचारी है, अपनी पत्नी को हृदय से प्रेम करता है, वह भी केवल स्त्री के स्नेह पर ही जीवित नहीं रह सकता; उसे दुनिया में और भी काम हैं। प्रेम उसके जीवन के कार्य-क्रम का एक हिस्सा है; उसके लिए वह अन्य सब कामों का त्याग नहीं कर सकता। स्त्री के लिए ऐसी कोई बात नहीं। उसके लिए प्रेम ही सब कुछ है। प्रेम ही उसके लिए जीवन है। पति का, या जिसे वह स्नेह करती हो उसका, प्रेम प्राप्त किये बिना, या स्वयं उसके प्रेम में अपनेको बलिदान किये बिना, कोई स्त्री, यदि वह सचमुच स्त्री है, रह नहीं सकती। एक विवाहिता स्त्री घर के सब कष्टों को सहती है, इतना बड़ा बोझ उठा लेती है, उसमें अपने स्वास्थ्य तथा जीवन तक का बलिदान कर देती है। क्यों ? केवल पति के कारण। इसलिए विवाहित या अविवाहित किसी प्रकार के जीवन में लड़कियाँ बिना प्रेम किये नहीं रह सकतीं। इस प्रेम का मतलब शारीरिक वासना नहीं है। एक लड़की अपने पिता में या अपने भाई में ही इतनी श्रद्धा, इतना स्नेह रख सकती है कि दुनिया को भूल जाय। स्त्री के लिए स्नेह करने को कोई ऐसा प्राणी चाहिए जिसमें वह अपने को भूल जाय; जिसके लिए वह बड़ा से बड़ा त्याग करने में सुख का अनुभव करे। लड़कपन में पिता-माता, भाई-बहन में से किसी एक को, विवाहित अवस्था में पति को और माता हो जाने पर सन्तान को प्रायः स्त्रियाँ बहुत अधिक स्नेह करतीं, उनके स्नेह में

विकल देखी जाती हैं। इस लिए मैंने ऊपर जो-कुछ लिखा है, वह केवल विवाहिता स्त्रियों के ऊपर ही घटित नहीं होता, सब पर लगता है।

बात यह है कि जहाँ पुरुष की प्रकृति केन्द्रापसारी (Centrifugal) अर्थात् अपना विस्तार करने की, अपने को दुनिया में फैलाने की ओर है, वहाँ स्त्री की प्रकृति केन्द्रोन्मुखी (Centripetal)होती है। केन्द्रोन्मुखी का तात्पर्य यह है कि सब ओर से ध्यान हटाकर वह एक वस्तु में अपना ध्यान लगाने की चेष्टा करती है। स्त्री-हृदय के लिए यह संभव नहीं है कि वह पुरुष की भाँति हृदय को दूकानदारी की चीज समझ ले। पुरुष भी अपना हृदय एक के लिए ही सुरक्षित रख सकता है, पर जन्म भर उसी प्रकार स्नेह को निभा ले जाना उसके लिए कठिन है; स्त्री के लिए तो वह उसके स्वभाव में मिल गया है।

हृदय की देवी

दूसरी बात यह है कि स्त्री हृदय की प्रतिनिधि है और पुरुष शरीर एवं दिमाग़ का। इसका यह मतलब नहीं कि पुरुषों के पास हृदय नहीं होता या स्त्रियों में बुद्धि नहीं होती। इसका मतलब तो यह है कि स्त्री में हृदय के गुण अधिक होते हैं, पुरुष की अपेक्षा उसका हृदय अधिक कोमल, अधिक उदार, अधिक भावनामय होता है। उसमें प्रेम, दया, श्रद्धा, सहानुभूति, क्षमा, करुणा, त्याग, सेवा के भावों की अधिकता होती है और पुरुष में शरीर और दिमाग़ के गुण अधिक होते हैं। उसमें साहस, उत्साह, विचार-शक्ति,

सभ्यता की देवी

कठोरता अधिक होती है। इस बात पर ध्यान देकर देखें तो प्रकट होगा कि मनुष्यता के खयाल से स्त्री, पुरुष से श्रेष्ठ है। साहस तो जंगली और अत्यन्त पाशविक विचार रखने वाली जातियों में भी पाया जाता है। मनुष्य को सभ्य बनाने और उसके अन्दर अधिक से अधिक देवत्व का विकास करने में साहस और बल का कोई खास हिस्सा नहीं है। पुरुष की विचार-शक्ति ने अवश्य इस क्षेत्र में बड़ा काम किया है; उसकी बुद्धि के सहारे सभ्यता की बड़ी उन्नति हुई है; पर मनुष्य बनाने में दिमाग़ की अपेक्षा हृदय ने ही अधिक काम किया है। संसार के श्रेष्ठ से श्रेष्ठ काम प्रेम, सहानुभूति, करुणा, दया और क्षमा से ही किये जा सके हैं। बुद्धि और प्रेम का दिमाग़ और हृदय का, बदला नहीं किया जा सकता क्योंकि दोनों के मूल्य में अन्तर है। बुद्धि के बिना भी आदमी आदमी रह सकता है, पर प्रेम के बिना वह पशु है। चाहे कोई इसे हठधर्मी के कारण स्वीकार न करे, पर बात यही है और संसार का इतिहास स्वयं पुकार-पुकार कर इसकी घोषणा कर रहा है। आज इस बुद्धि-प्रधान ईर्ष्या-द्वेष और कलह के समय में भी बुद्ध और ईसा का मानव-हृदय पर जो प्रभाव है, उन्होंने हमारी सभ्यता और संस्कृति को जितना ऊँचा उठाया है, उतना न्यूटन और एडिसन, मार्कोनी और जगदीशचन्द्र* ने नहीं उठाया। कबीरदास और मीराबाई का स्थान पं० मोतीलाल और सर तेजबहादुर सप्रू नहीं ले सकते। इसीलिए बहुत प्राचीनकाल से, जब मनुष्य जंगलों में पशुओं के

* संसार के बड़े-बड़े वैज्ञानिक, जिन्होंने अनेक यंत्रों का आविष्कार किया है।

संमान घूमा करता था, जब खून-खराबी लूट-मार ही उसका प्रधान कार्य था, स्त्री ने पुरुष को आदमी होना सिखाया है और अपने आकर्षण तथा अपनी ममता से एक योग्य पति, एक स्नेही भाई और एक श्रद्धालु पुत्र के रूप में संसार के सामने ला खड़ा किया है। जब पुरुष स्वयं खा-पीकर मस्त रहने और दूसरों को सताने में तृप्ति का अनुभव करता था, तभी स्त्री ने उसे अपने स्नेह से, अपनी ममता से, अपनी सेवा और वफ़ादारी से, एक कुटुम्ब के बन्धन में डाला और सिर्फ़ अपने ही लिए नहीं, दूसरों के लिए परिश्रम करने की प्रवृत्ति उसमें डाली। यही वह सड़क है जिसपर चल कर आज दुनिया मनुष्यता का इतना विकास कर सकी है। संसार की सभ्यता की शरीर-रचना में जहाँ पुरुष ने अपना बड़ा विज्ञापन किया है, वहाँ स्त्री ने चुपचाप कष्ट-सहन, त्याग, बलिदान एवं ममतामयी शालीनता के साथ उसके प्राणों की रचना की है। इसलिए किसी भी दृष्टि से देखें, स्त्री पुरुष से श्रेष्ठतर प्राणी है।

हाँ, तो मैं तुम्हें यह समझा रहा था कि पुरुष और स्त्री के हृदय में बड़ा अन्तर है। हृदय ही क्यों शरीर की रचना, स्वभाव, सोचने-विचारने के ढंग भी दोनों के अलग-अलग हैं। प्रत्येक स्त्री-पुरुष को यह जान लेना चाहिए। स्त्री सेवा और त्याग की प्रतिमा है, पुरुष साहस और बुद्धि का पुतला है।

दानमयी

स्त्री दान की देवी है—अन्नपूर्णा है। वह देना जानती है। आत्म-समर्पण,—जिसे चाहती है उसपर सब-कुछ चढ़ा देना, उसका धर्म है। पुरुष ग्रहण करने वाला, दान लेनेवाला प्राणी है। वह कुछ देना नहीं

चाहता। जब कुछ देता भी है तो उससे अधिक पाने की आशा रखता है। जहाँ स्त्री जिसे चाहती है उसे आत्मसमर्पण करती है, वहाँ पुरुष जिसे प्रेम करता है उसपर अधिकार चाहता है। यह एक निश्चित-सी बात है कि जिस प्रेम में आत्म-समर्पण का भाव जितना ही अधिक रहेगा, उसमें त्याग की भावना उतनी ही अधिक होगी; उसमें स्वार्थ की उतनी ही कमी रहेगी और वह उतनी ही उच्च कोटि का प्रेम होगा। जिस प्रेम में अधिकार का, ग्रहण का भाव जितना अधिक होगा, वह प्रेम उतना ही स्वार्थमय और वासनापूर्ण होगा। इसलिए प्रायः औसत दर्जे की एक स्त्री ज्यादा संयमी, वफ़ादार और स्थायी—देर तक स्नेह करने वाली—होती है और औसत दर्जे का एक पुरुष उसकी अपेक्षा उतावला, कम सच्चा और अस्थायी—थोड़े समय तक प्रेम करनेवाला—होता है। यदि पुरुष स्त्री को और स्त्री पुरुष को समझले तो जीवन की बहुत-सी ग़लतफ़हमी घट जा सकती हैं, पर साधारण संकोच और लज्जा के कारण स्त्री अपने हृदय को बहुत छिपा कर रखती है और इस गोपनीयता से, इस छिपाने की प्रकृति से, उसके प्रति पुरुष का आकर्षण साधारण सीमा एवं उत्कण्ठा से बढ़कर प्रायः अधीर हो जाता और भोग-विलास एवं वासना-रंजन के रूप में बदल जाता है। पुरुष ने हृदय के अन्दर छिपा कर रखने योग्य बातों को कभी न समझा। इस न समझने से ही स्त्री को समझने के लिए अनादिकाल से पुरुष विकल है।

इसलिए तुम सदा इस बात का ख़याल रखना कि पुरुष का हृदय दूसरी धातु का बना होता है। उसके व्यवहार से अपनी प्रकृति के अनुकूल अर्थ नहीं निकालना चाहिए। पुरुष

से, चाहे विवाहित जीवन में हो या अविवाहित में, स्त्री को कभी भी यह आशा न करनी चाहिए कि वह मेरी तरह ही जन्म-भर त्यागमय प्रेम की आँच में तपता रह सकेगा। उसे केवल अपना कर्तव्य समझना चाहिए; अपने धर्म का ख़याल रखना चाहिए। न तो उसे पुरुष से स्त्री-हृदय के भावों की आशा रखनी चाहिए; न पुरुष के उतावलेपन पर अपने स्त्रीत्व को, अपने प्रेम की गम्भीरता को बलिदान करना चाहिए। पर हाँ, स्नेही पुरुष को अनुकूल बनाने और उसके स्नेह को क़ायम रखने के लिए जिस स्नेह, सहानुभूति और सेवा की आवश्यकता होती है, उसका उपयोग बराबर करते रहना चाहिए।

एक ज़रूरी बात

जैसा कि मैं कह चुका हूँ, पुरुष का हृदय स्वार्थपूर्ण, नित्य-नवीनता ढूँढने वाला, असहनशील, चंचल और शीघ्र ऊब जाने वाला होता है। इसलिए उसे ऊँचा उठाकर उसमें स्थायी प्रेम की सुगन्ध भरना स्त्री की सेवा, बुद्धिमानी और मधुरता पर निर्भर है। स्त्री जिसे हृदय दान करती है, उसे ही जीवन-दान भी कर देती है। प्रेम और जीवन उसके लिए एक है; इसलिए स्त्री सदा अपने स्वामी को, अपने प्रेमी को सुखी करने के लिए सब कुछ कर सकती है; हाँ एक बात का सहन करना उसके लिए अत्यन्त कठिन है। साधारणतः कोई स्त्री यह नहीं सह सकती कि उसका पति किसी अन्य स्त्री को हृदय दान कर दे। वह पति के लिए प्राण दे सकती है; वह अपने सब अधिकार छोड़ सकती है; पर पति को, पत्नीत्व के

भाव के साथ, दूसरी स्त्री को ग्रहण करते नहीं देख सकती। वह तो उसकी पूँजी का ही सर्वनाश है, जिसके बल पर संसार के बड़े से बड़े कष्ट को वह झेल सकती है; वह उसके सोहाग की चिता है, जिसका जलना देखने में वह प्राण रहते असमर्थ है। यह ठीक है कि कहीं-कहीं ऐसी स्त्रियाँ भी देखी गई हैं, जिन्होंने पति के सुख के लिए हँसते-हँसते, अपने कलेजे के दर्द को दबाकर उन्हें दूसरी स्त्रियों को सौंप दिया है, पर वे बहुत उच्चकोटि की त्यागी स्त्रियों के उदाहरण हैं, जो दुनिया में कभी-कभी दिखाई पड़ जाती हैं। मैं तो साधारण स्त्रियों की बात कर रहा हूँ।

इसलिए प्रत्येक साधारण स्त्री अपने सारे कष्ट-दुःख, सेवा, त्याग और जीवनव्यापी बलिदान के बदले में, पति का प्रेम अवश्य चाहती है। इसी नींव पर, इसी शक्ति के, इसी पूँजी के सहारे वह ऊँचा से ऊँचा उठ सकती है और जीवन की कठिनाइयों को सहती है। किन्तु पति का प्रेम प्राप्त करना भी बहुत-कुछ स्त्री के ही हाथ है। स्त्री को आरम्भ में न तो पुरुष के उतावले प्रेम पर पागल हो जाना चाहिए और न उससे बहुत अधिक आशा रखनी चाहिए। उसे सदा अपने सतीत्व, अपने प्रेम और अपनी भक्ति में विश्वास होना चाहिए और समझते रहना चाहिए कि मैं अपनी सेवा और अपने मधुर व्यवहार से पति की विरक्ति और चिन्ताओं को दूर करके उसके हृदय पर विजय प्राप्त कर लूँगी। सब से अच्छी बात तो यह है कि स्त्री बदले में कुछ आशा किये बिना ही सच्चे

प्रेम और आत्म-समर्पण का आदर्श उपस्थित करे पर यह एक बहुत कठिन बात है और सब से सम्भव नहीं पर तुम्हें पति से एक दम बहुत अधिक आशा भी न कर लेनी चाहिए।

बहुत-सी स्त्रियाँ सदा अप्रसन्न रहती हैं। वे सब काम-काज करती हैं, पति की, सास-ससुर की सेवा भी करती हैं, पर

स्त्रियों की भूल

ग़लत-फ़हमी के कारण वे मन ही मन कुढ़ती रहती हैं। वे सेवा करती हैं, पर उस सेवा में प्रसन्नता का अनुभव नहीं करतीं, अतः दुखी रहती हैं और उनके काम का, उनके त्याग का, उनकी सेवा का कुछ असर भी नहीं होता। सुख केवल उन स्त्रियों को प्राप्त होता है, जो विवाह रूपी साझे में अपने हिस्से का काम ठीक तरह से पूरा करती हैं। इसके विरुद्ध जो स्त्रियाँ बड़ी-बड़ी आशायें लेकर जाती हैं और उनकी पूर्ति न होने के कारण दुखी और अनमने हृदय से गृहस्थी का काम-काज चलाती हैं, वे घर के वातावरण को मधुर और शान्तिमय नहीं रख सकतीं। वे पति के लिए, पति के मंगल एवं कल्याण के लिए, प्रसन्नता-पूर्वक काम नहीं करतीं। उनका दाम्पत्य जीवन उनके लिए बोझ हो जाता है और वे सदा अपने विवाहित जीवन को दासी का जीवन समझने के कारण अपने मन और शरीर दोनों को दुर्बल और कृश कर डालती हैं। इसलिए तुम्हें सदा याद रहे कि स्त्री को संसार की कठिनाइयाँ उठाने की शक्ति तभी मिल सकती है, जब वह अपने सुख का ध्यान न करके पति के कल्याण

के लिए सदा प्रयत्नशील रहे और पति एवं घर के अन्य लोगों की सच्ची सेवा में ही अपना सुख खोजे एवं पति के सुख-दुःख को ही अपना सुख-दुःख समझे। मैं यह जानता हूँ, इसलिए तुम्हें पहले से ही सचेत कर देना चाहता हूँ कि बहुत-सी स्त्रियाँ मुँह फुलाकर ग़लत-फ़हमी के कारण या अपने पतियों के उतावलेपन की शिकार होकर बहुत जल्द अपने सौभाग्य-सुख में चिनगारी लगा देती हैं और बहुत-से पुरुष भी ज़्यादा सिर चढ़ा कर या आलसी, आराम-तलब एवं हठी बनने की आदत डाल कर अपनी स्त्रियों को नष्ट कर डालते हैं। हर अवस्था में, हर क्षेत्र में, इस सिद्धान्त को सदा याद रखो कि उत्तेजना में बह जाने की अपेक्षा मन एवं विचार पर संयम रखकर किसी काम के बारे में कुछ निश्चय करना अच्छा है। कभी उस रास्ते पर न जाओ जिसमें बड़े ज़ोर से, आँधी की हरहराहट के समान, तूफ़ान या धारा में बह जाने का ख़तरा हो, क्योंकि ऐसे समय सदा विचार-शक्ति का लोप हो जाता है और आदमी ठीक रास्ते का निर्णय नहीं कर सकता।

मेरे लिए, एक पुरुष होने के कारण किसी स्त्री को—चाहे वह कितनी ही छोटी और अज्ञान हो—उपदेश करना विडम्बना मात्र है। मैंने सदा नतमस्तक बहनों को प्रणाम किया है। मैं उनके सामने, उनके त्याग के सामने, अपने को बहुत क्षुद्र अनुभव करता हूँ; पर स्वयं मेरे हृदय के अन्दर स्त्रीत्व के गुण ही अधिक हैं, इसलिए यदि मैं साहस करके तुमसे या किसी बहन से यह कहूँ कि पुरुषों की कमज़ोरियाँ और

उनके हृदय एवं अपने हृदय के अन्तर को समझकर भी तुम विवाहित होने पर स्वयं अपने स्त्रीत्व के सेवा एवं त्यागमय आदर्श को एक इंच झुकने न देना, तो आशा है, मैं क्षमा का पात्र समझा जाऊँगा।

ईश्वर तुम्हारा कल्याण करे। आशीर्वाद के साथ—

तुम्हारा भाई

'सुमन'

[६]

गृह-जीवन

अजमेर

२१ । १० । ३०

प्रिय भगवती,

जहाँ तक एक पुरुष के लिए संभव है, मैं पिछले पत्रों में विवाहित जीवन की ज़िम्मेदारियों, पति-व्रत, सेवा तथा पुरुष-स्त्री-हृदय के रहस्य एवं अन्तर के सम्बन्ध में लिख चुका हूँ। उनपर ध्यान देने से लाभ उठाया जा सकता है। पर उनके अतिरिक्त कुछ और बातें भी हैं, जिन्हें तुम्हारे जान लेने की आवश्यकता है। इस पत्र में उन्हीं के सम्बन्ध में लिखना चाहता हूँ।

प्रेम का नशा

यद्यपि यह ठीक है कि स्त्री का पहला कर्तव्य पति की सेवा है, किन्तु यह कुटुम्ब में रहते हुए, जहाँ सब के स्वार्थ एक-दूसरे से बँधे हुए हैं, केवल पति-प्रेम में दीवानी रहने से ही स्त्री का गृहस्थ-जीवन सफल और सुखदायक नहीं हो सकता। पति के साथ ही, उनके माता-पिता, उनके भाई-बहन इत्यादि का भी ध्यान रखना पड़ता है। स्त्री को ससुराल में अपना जीवन ऐसा बना लेना चाहिए कि हरएक को उसकी आवश्यकता मालूम पड़े और प्रत्येक प्राणी अनुभव करे कि

इसके आने से मेरा जीवन अधिक सुखपूर्ण, सुन्दर और मधुर हो गया है। इसलिए पति की सेवा करने तथा उसके सुख-दुःख में हाथ बटाते रहने के साथ ही, स्त्री को उन सब बातों पर भी ध्यान देना पड़ता है, जिनके ऊपर पति के मन की शान्ति तथा दोनों के सम्बन्ध का अटूट स्नेह निर्भर करता है।

इसके लिए सब से आवश्यक बात, जिसके बारे में मैं पहले भी लिख चुका हूँ, यह है कि पत्नी की पति में अगाध श्रद्धा होनी चाहिए और उसे शरीर मन और वाणी से पतिव्रता होना चाहिए। जिस स्त्री का अपने पति के प्रति सच्चा प्रेम नहीं है, उसका मन घर के काम-काज में कभी नहीं लग सकता; वह उसे एक बोझ समझ कर दुखी चित्त से करती है और अपने को घर की मालकिन की जगह दासी समझ कर व्यर्थ कष्ट पाती है। इसके विरुद्ध जिस स्त्री का अपने पति में प्रेम होता है, उसे घर का अधिक से अधिक काम करने में आनन्द आता है; वह सदा प्रसन्नतापूर्वक घर के सारे काम करती है, क्योंकि वह सदा अनुभव करती है कि घर मेरा है; मैं इसकी मालकिन हूँ। बुरा है तो, भला है तो, अपना चीज़ है।

पुरुष के लिए, दुनिया में मन बहलाने के अनेक साधन हैं। वह घर के बाहर भी अपने मित्रों में, सभा-सोसाइटियों में, सिनेमा और नाटक-घरों में, सैर-सपाटे में अपने मन के दुःख को भुला सकता और प्रसन्नता प्राप्त कर सकता है; परन्तु स्त्री के लिए, यदि पति का प्रेम नहीं है, तो जीवन व्यतीत करना कठिन हो जाता है।

यह प्रेम, एक सीमा तक, कैसे प्राप्त किया जा सकता है, इसके सम्बन्ध में पहले के पत्रों में लिख चुका हूँ। प्रेम प्राप्त करने का कोई खास नुस्खा नहीं है। यह पत्नी की सरलता, पति में श्रद्धा-विश्वास, घरेलू जीवन की शान्ति, सेवा एवं मधुरता तथा पति की मनोवृत्ति पर निर्भर है। इनके अतिरिक्त अपने विचार और अपने भावों से भी सुख-दुःख का बहुत सम्बन्ध होता है। अमेरिका की एक अनुभवी स्त्री ने लिखा है—"स्त्री के हृदय का भाव ही वह चीज है जो उसके जीवन को सुख-दुःखमय बना सकता है।" किसी महात्मा ने कहा है—"स्वर्ग और नरक सब मन के अन्दर हैं।" स्त्री के लिए यह बात विशेष कर ठीक है, क्योंकि स्त्रियाँ जब सुख का अनुभव करती हैं तो बहुत अधिक करती हैं और दुःख का अनुभव करती हैं तो भी बहुत अधिक करती हैं। हर हालत में एक साधारण स्त्री की अनुभव-शक्ति एक साधारण पुरुष की अनुभव-शक्ति से अधिक होती है। इसीलिए स्त्रियाँ पति का थोड़ा भी प्रेम पाने पर पागल-सी हो जाती हैं और अपना सब-कुछ भूल जाती हैं। पर इस तरह का प्रेम जिसमें उन्माद और पागलपन है, संयम नहीं है, स्थायी नहीं हो सकता। प्रेम सदा आदमी को ऊँचा उठाता है; इसीलिए पागल और कर्तव्य से विमुख करनेवाले प्रेम से सदा बचना चाहिए।

पुरुष का—पति का—पत्नी के प्रति जो कर्तव्य है, उसे ग़रीबी, चिन्ता, ग़ुलामी, मूर्खता और अव्यवस्था के कारण हम लोग भूल-से गये हैं। जो स्त्री पति के मुँह से स्नेहमय दो शब्द सुनने के लिए तड़प रही हो, उसकी निराशा की कल्पना पुरुष बड़ी कठिनाई से कर सकता है। पुरुष यह भूल जाता है कि स्त्री उसकी तरह अपने मन को संसार के अन्य साधनों से तृप्त नहीं कर सकती और चाहे पति भोजन, वस्त्र, गहने तथा अन्य बातों को सुविधा पत्नी के लिए कर दे परन्तु यदि स्त्री को पति की सहानुभूति एवं स्नेह प्राप्त नहीं है और वह सच्चे हृदय से पति को प्रेम करती है, तो ये सारी सुविधायें और ऐश्वर्य उसके लिए मिट्टी के समान हैं। ऐसी स्त्री मन में अनुभव करती है कि मानों उसकी कोई क़ीमती चीज़ खो गई है, जिसके बिना उसका जीवन बिलकुल सूखा जा रहा है और वह सदा उस खोई हुई चीज के लिए बेसुध और बेचैन रहती है।

उत्तरदायित्व

किन्तु परिस्थिति का विचार करने पर और मन को शान्त रखने से, वह बेचैनी और कठिनाई भी, एक सीमा तक, कम की जा सकती है। एक तो ऊपर मैंने जो बात लिखी है वह बहुत ही उदार, प्रेमी, भावुक और बहुत करके शिक्षित स्त्रियों के लिए ही ठीक है। हमारे देश में सौ में निन्यानवे विवाह तो ऐसे ही होते हैं जिनमें हृदय और प्रेम को कोई स्थान नहीं होता। विवाह एक जरूरी बात है, यही समझ कर विवाह किया जाता है और उसमें भी शारीरिक वासना की तृप्ति का ही भाव

प्रधान होता है। इसीलिए स्त्रियाँ, साधारणतः अपने पति की सेवा एवं गृहस्थी के काम-काज करते हुए, बच्चे होने पर उनके पालन-पोषण में, अपना जीवन बिता देती हैं। अधिकांश स्त्री-पुरुष संस्कार और अपनी मर्यादा का ख़याल करके, समाज में अपनी इज़्ज़त बनाये रखनेके लिए, एक-दूसरे के प्रति वफ़ादार रहते एवं अन्य सांसारिक कार्यों का पालन करते हुए अपनी ज़िन्दगी के दिन बिता देते हैं। उनमें प्रेम की अपेक्षा कर्तव्य एवं प्रथा से पैदा होनेवाली भावना की ही प्रधानता होती है। पति यह समझता है कि यह मेरी ब्याहता है; इसे अच्छे से अच्छे कपड़े पहनाना, अच्छी तरह खिलाना, इसकी रक्षा करना मेरा कर्तव्य है और स्त्री सोचती है कि अब तो मेरा ब्याह हो गया; जैसा भी हो, अपना आदमी है; उसकी, उसके कुटुम्बियों की सेवा करना मेरा काम है। इस पतिव्रत भाव में प्रेम की अपेक्षा संस्कार की ही प्रबलता होत है। साधारणतः हमारा विवाहित जीवन इसी तरह बीतता है। न पति पत्नी के उस प्रेम के लिए विकल होता है, जिसके प्राप्त होने पर और किसी वस्तु की इच्छा बाक़ी नहीं रहती और न पत्नी पति के उस प्रेम के लिए पागल हो उठती है, जिसके प्राप्त होने पर जीवन में पूर्णता का अनुभव होता है। इसलिए विवाहित जीवन में भी अनेक स्त्रियों को ऐसे प्रेम का अभाव अनुभव नहीं होता; न पतियों का ही इनकी ओर विशेष झुकाव होता है। खाने-पीने, घर-बाहर के काम-धन्धे, सेवा-चाकरी में उनका अधिकांश समय जाता है और इसके अतिरिक्त जो बचता है, वह शारीरिक-

वासनाओं की तृप्ति में लग जाता है। साधारण विवाहित पुरुष-स्त्री का यही जीवन है और इस जीवन में उन स्त्री-पुरुषों के जीवन से कम चिन्ता और दुःख है, जो प्रेम के अभाव में, जीवन में बहुत बड़ी कमी अनुभव कर, तड़प रहे हैं।

तुम यह न भूल जाना,—तुम क्या, किसी भी बहन-भाई को यह बात भूलनी न चाहिए—कि हमारे यहाँ विवाह की नींव प्रेम पर नहीं, सांसारिक धर्म-बन्धन और सामाजिक सुविधा के ऊपर खड़ी हुई है! बुरी है या भली, यह मैं नहीं कहता पर स्थिति यही है। इसलिए उत्कट प्रेम के अभाव में, सहानुभूति रखते, सेवा करते, परस्पर सहायक होकर अपने कर्तव्यों का पालन करते हुए, जीवन अच्छी तरह बिता दिया जा सकता है। प्रेम का अभाव इसमें बाधक तभी हो सकता है, जब हमें प्रेम की चाट, पुस्तकों में पढ़कर या आन्तरिक प्रेरणा के कारण या दूसरों को देखकर, पहले से ही लग गई हो। यूरोप में बात इसके विपरीत है; वहाँ जिससे प्रेम हो जाता है (यद्यपि प्रायः इस प्रेम में शारीरिक आकर्षण ही अधिक होता है) उससे विवाह होता है या उसी से विवाह करने की चेष्टा स्वयं स्त्री-पुरुष करते हैं। यहाँ विवाह होता है गृहस्थ-धर्म के पालन के लिए और वहाँ होता है जीवन के सुख के लिए। इसलिए संस्कार के कारण साधारण स्त्री-पुरुष हमारे देश में विवाह के बाद ही अपने नियमित कार्यों में लग जाते हैं; प्रेम के अभाव के कारण पागल नहीं होते। अपना-अपना काम करते हुए उनका जीवन कट जाता है।

इसलिए जो स्त्रियाँ पति से साधारण स्नेह और सहानुभूति की आशा रखती हैं, वे उन स्त्रियों से कहीं अधिक सुखी रहती हैं, जो पति के प्रेम के लिए पागल हो जाती हैं। बहुत बड़ी-बड़ी आशायें कभी न बाँधो; न हवाई-क़िले बनाओ। कर्तव्य और धर्म समझकर विवाहित जीवन के आदर्श का पालन करो।

सन्तोष का फल

हर हालत में, अपने लिए, सन्तोष का फल मीठा होता है। अधिक प्राप्त करने का यत्न तो सदा करना चाहिए, पर अधिक न मिलने की हालत में, जो मिला है, उसी पर संतोष कर लेने से, जीवन की कठिनाइयाँ कम हो जाती हैं। प्रत्येक भाई-बहन को यह बात याद रखनी चाहिए कि दुनियाँ में सब सुख-स्वप्न पूरे नहीं उतरते। मन की सभी इच्छाओं का पूरा होना असंभव है। न तो भावुक पतियों को वैसी स्त्रियाँ मिलती हैं, जिनका आदर्श उनके दिल में पहले से उपस्थित रहता है; न स्त्रियों को सदा वैसे पति ही प्राप्त हो सकते हैं, जिनकी कल्पना वे पहले से कर रखती हैं। इसलिए मैं बहनों से कहूँगा कि ऐसी अवस्था से सामना होने पर—मन चाहा पति न मिलने पर—दुखी और अधीर हो जानेकी जगह, शान्ति से बैठकर मन में विचारो कि क्या दुनिया में मुझसे दुखी और अभागी स्त्रियाँ नहीं हैं? सोचो कि क्या किसी की भी इच्छायें दुनियाँ में पूरी होती हैं? संसार में कोई भी प्राणी ऐसा नहीं है जिसको चिन्ता, उद्विग्नता, रोग, शोक और निराशा से कभी काम न पड़ा हो। जो बात सबके लिए है, वही तुम्हारे लिए भी है। फिर जैसा कि मैं लिख चुका हूँ, दुःख को घटाना-

बढ़ाना भी अपने मनोभावों के संयम पर निर्भर है। हाँ, कुछ दुःख ऐसे भी होते हैं जिनको सहने में भी एक प्रकार का संतोष और सुख होता है। कोई मनुष्य जिसे स्नेह करता है, उसका हृदय से, हर हालत में, भला चाहता है। वह उसके लिए कष्ट और दुःख सहने में तोष और तृप्ति का अनुभव करता है। यदि कोई विवाहित स्त्री सच्चे हृदय से पतिव्रता है तो पति के कल्याण और पति के सुख में ही उसे सच्चा सुख अनुभव होगा। इसलिए यदि बिलकुल मन के आदर्श के अनुकूल पति न प्राप्त हो तो जो पूँजी मिले उसी के सहारे जीवन की इमारत खड़ी करने की चेष्टा प्रसन्नतापूर्वक करनी चाहिए। हिन्दू स्त्रियों के लिए यह संयम विशेष आवश्यक है; क्योंकि हमारे यहाँ न तो शास्त्र में, न समाज में, न क़ानून में, पति के जीवित रहते स्त्री के लिए विवाह के बन्धन से कोई छुटकारा है। इसलिए दुखी होकर जीवन-भर घुलने से तो हर हालत में यही अच्छा है कि जो कुछ है उसी पर सन्तोष करके शान्ति के साथ जीवन बिताने का यत्न किया जाय। एक बार ब्याह हो जाने पर स्त्री को सदा यह याद रखना चाहिए कि वह जिन्दगी-भर के लिए एक ऐसे संस्कार के बन्धन में बँध गई है जिसकी गाँठें खुल जाने पर भी जन्म-भर बनी रहती हैं। जहाँ तलाक़ की प्रथा है, जहाँ पति-पत्नी का जीवन एक-दूसरे के साथ न मिलने पर वैवाहिक सम्बन्ध तोड़ देने और दूसरे पुरुष से कर लेने की सुविधा है, वहाँ भी स्त्रियों को दूसरे ब्याह से पहले ब्याह की आशा, प्रसन्नता और उत्साह नहीं मिलता।

इसलिए हर हालत में सन्तोषमय विवाहित जीवन असन्तोषमय जीवन से श्रेष्ठ है।

दूसरी बात जो मैं इस सम्बन्ध में देखता हूँ, स्त्रियों के दुःख को बढ़ाकर कहने और पुरुषों की कठिनाइयों का बिलकुल ख़याल न करने की मनोवृत्ति है। जो लोग आज समाज में स्त्रियों की समस्या को लेकर आन्दोलन कर रहे हैं और उनके सच्चे हितैषी समझे जाते हैं, वे सारे अपराधों और दोषों का बोझ पुरुषों पर डालना चाहते हैं। दुःख की बात तो यह है कि स्वयं स्त्रियाँ भी पुरुषों की कठिनाइयों को समझने का प्रयत्न नहीं करतीं। इसका फल बड़ा विषैला हो रहा है; क्योंकि सिर्फ़ एक ही पर बोझ डालते समय हम भूल जाते हैं कि विवाहित जीवन या स्त्री-पुरुष का सुख एक-दूसरे पर निर्भर करता है। दोनों को दोनों की कठिनाइयाँ समझने और सहानुभूति के साथ उनपर विचार करने की ज़रूरत है। हम लोग यह भूल गये हैं कि घर के छोटे-से कमरे में रहने वाली स्त्री को जितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, बाहर—समाज में—काम करने वाले पुरुष को उससे अधिक कठिनाइयों से लड़ना पड़ता है। पुरुषों के सामने प्रलोभन भी अधिक हैं, उन्हें बीसों आदमियों से व्यवहार रखना पड़ता है; इधर-उधर अनेक तरह के स्त्री-पुरुष उनके संसर्ग में आते रहते हैं। इसलिए स्त्री की भाँति, मन को केन्द्रित और एकाग्र रखना पुरुष के लिए बहुत कठिन है। आज समाज में पुरुषों के समान अधिकार लेकर,

अपराध किसका है ?

नई रोशनी की चटक-मटक में, जो स्त्रियाँ पुरुषों के कन्धे से कन्धा मिलाकर काम कर रही हैं, वे पतिव्रत धर्म का पालन करने में उन स्त्रियों से अधिक कठिनाइयों का अनुभव करती हैं, जो घरेलू जीवन को—पति, सास-ससुर इत्यादि को—अपना कार्यक्षेत्र मानकर चल रही हैं और जिनका 'उद्धार' करने को शिक्षित और अधिकार-प्रिय स्त्रियाँ बाहर निकलकर आवाज़ बुलन्द कर रही हैं! इसका कारण यही है कि उन्हें समाज में पुरुषों की भाँति नाना प्रकार के प्रलोभनों और व्यक्तियों के संसर्ग से उत्पन्न होने वाली मानसिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है।

रोटी का प्रश्न

आज-कल संसार में रोटी की समस्या सबसे विकट है तथा दिन-दिन और भयंकर होती जा रही है। बेकारों की संख्या बढ़ रही है। बीस-बीस पचीस-पचीस रुपये में बी० ए० मिल जाते हैं। पढ़े लिखों में ही बेकारी हो सो बात नहीं। मशीनों के प्रचार से शरीर-द्वारा परिश्रम करके कमाने वाले भी बेकार हो रहे हैं। लोगों को पेट पालने-भर के लिए काम मिलना कठिन हो रहा है। शिक्षित और अच्छे विचार के युवक बड़े-बड़े नगरों के आफ़िसों में चक्कर काटते और दुरदुराये जाते दीख पड़ते हैं; यह हमारे जीवन में एक मामूली बात हो गई है। मीलों चक्कर काटते और 'जगह नहीं ख़ाली', 'कोई काम नहीं है' सुनते-सुनते अपमान और निराशा से पीड़ित भाइयों को घर आकर बेदम चारपाई पर पड़ कर रोते मैंने देखा है—कोई भी, किसी समय, इसे

देख सकता है। इन भाइयों के दिल में अपनी पत्नियों को अच्छा से अच्छा खिलाने-पिलाने और सुख से रखने की इच्छा होती है, पर यह सुख रोटी की समस्या हल किये बिना, कमाये बिना, प्राप्त नहीं हो सकता। जिनको कहीं छोटा-मोटा काम मिल भी जाता है, उन्हें अपनी इज़्ज़त-आबरू, अपना ईमान बचाकर काम करना बहुत कठिन हो जाता है। पग-पग पर उन्हें आत्म-सम्मान बेचना पड़ता है, जो करना न चाहिए वह भी करना पड़ता है—अपमान, झिड़की, गाली, सभी-कुछ खानी और सहनी पड़ती है। कभी-कभी जब आत्माभिमान पर गहरी ठेस लगती है, तो इस्तीफ़ा दे देने की भी इच्छा होती है; पर घर में बैठकर रास्ता देखने वाली पत्नी और बच्चों के मुँह देखकर एक लम्बी साँस बाहर निकाल कर ही संतोष करना पड़ता है। पुरुष का स्त्री के लिए यह थोड़ा बलिदान नहीं है। इतने प्रलोभनों, कठिनाइयों और आपदाओं के बीच यदि पुरुष घबड़ा जाय, स्त्री की भाँति अपने को एकाग्र न रख सके, तो वह, एक सीमा तक, दया और क्षमा का पात्र है। मैं यहाँ पुरुषों का पक्ष नहीं ले रहा हूँ; मुझे जानने वाला कोई भी बता सकता है कि बहनों के लिए मेरे हृदय में पुरुषों से अधिक श्रद्धा और आदर का भाव सदा रहा है। मैं इन कठिनाइयों का उल्लेख करके पुरुषों का बचाव भी नहीं करता हूँ, न उनके दोषों को ढकने या उनपर परदा डालने की ही मेरी इच्छा है। उनके दोष, उनकी कमज़ोरियाँ, मैं पहले लिख भी चुका हूँ। मैं यह नहीं कहता कि उनके दोषों पर समुचित विचार न किया ज़ाय; मैं केवल यह चाहता हूँ

कि स्त्री-पुरुष दोनों एक-दूसरे के दोष निकालने की अपेक्षा एक-दूसरे की कठिनाइयों, एक-दूसरे के सुख-दुःख को समझने की चेष्टा करें; सहानुभूति के साथ, अपनापन का भाव रखते हुए, एक-दूसरे को ऊँचा उठाने की कोशिश करें। इससे विवाह का और गृहस्थ-धर्म का जो उद्देश्य है, वह सफल होगा।

तीसरी बात, जिसकी ओर मैं तुम्हारा ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ, और जिसपर जीवन का सुख ख़ास तौर से निर्भर करता है, स्त्री का स्वास्थ्य और उत्साह है।

स्वास्थ्य और उत्साह

सदा अपने स्वास्थ्य का ध्यान रक्खो और सुस्त एवं उदास न बैठकर घर के कामों को उत्साह से करो। किसी स्त्री का आलसी होना अपने जीवन को नष्ट करना है। इसमें शरीर और मन दोनों की अवनति होती है, तथा घर की व्यवस्था और शान्ति नष्ट हो जाती है। प्रायः बहुत-सी स्त्रियाँ घर के ज़रूरी कामों की ओर ध्यान न देकर, उन्हें छोड़कर, इकट्ठी होती और इधर-उधर की बातें किया करती हैं। इस प्रकार के आलसी जीवन में प्रायः दूसरों के चरित्र की छान-बीन एवं इनके-उनके घर की बुराइयाँ ही सामने लाई जाती हैं। एक आदमी और एक स्त्री में बड़ी घनिष्ठता है, एक कहती है कि पता नहीं क्यों इनमें इतना स्नेह है; मुझे तो भई विश्वास नहीं होता। दुनिया में तो भाई-भाई में बनती नहीं और यहाँ यों निःस्वार्थ स्नेह होगा, यह कैसे मान लिया जाय? दूसरी इस विचार का समर्थन करने के लिए पहले से ही तैयार रहती है। तीसरी पुष्टि के लिए झट दो-चार प्रमाण और उदाहरण उपस्थित

कर देती है—'हाँ जी, दुनिया में ऐसा आजकल कौन है ? मैंने तो अमुक समय एकान्त में दोनों को बातचीत करते देखा था।" जब इस तरह की बातें निकलती हैं तो ऐसी-ऐसी बातें सामने रक्खी जाती हैं, जिनका सिर-पैर कुछ नहीं होता और जो दूसरों को नीचा गिराने या अपने अन्दर की कलुषित वृत्तियों, एवं अधूरे आदर्शों की भूख मिटाने के लिए कही जाती हैं। भोली और उदासीन स्त्रियाँ, जो ऐसी जगह बैठती-उठती हैं, लोगों की झूठी निन्दा के इस जाल में धीरे-धीरे फँसती जाती हैं। स्त्री-हृदय ऐसी बातों के विषय में बहुत उत्सुक और उत्तेजनाशील (Sensitive) होता है। उसे दूसरों की आलोचना बहुत प्रिय होती है। इसलिए सहज ही ऐसी संगत में पड़कर स्त्री का हृदय विषमय हो जाता है और एक बार मनुष्य के चरित्र से विश्वास उठ जाने पर, ग़लतफ़हमी बढ़ती जाती है तथा वह स्त्री अवगुणों, संदेहों और ईर्षा के जाल में फँस जाती एवं अत्यन्त दुःखदाई और निकम्मी हो जाती है। इसलिए इस तथा दूसरी बुराइयों से बचने का सब से उत्तम उपाय हर समय काम में लगे रहना और व्यर्थ बात-चीत से बचना ही है। जो स्त्री सदा प्रसन्न-मन काम-काज में लगी रहती है, उसके मन में एक तो ऐसी संदेह की बातें और बुरे विचार आते ही कम हैं और यदि कभी अपनी कमजोरी के कारण मन में कुछ ऐसा ख्याल आ भी जाता है, तो उसपर विचार करने का समय न मिलने से वह विचार आगे नहीं बढ़ता बल्कि उसी समय उसका अन्त हो जाता है। इतना ध्यान रखने पर भी दूसरी कोई सखी-सहेली यदि किसी समय, किसी स्त्री या पुरुष

अध्ययन जारी रक्खोगी।

के विषय में, तुम्हारे सामने आलोचना आरंभ करे, तो तुम्हें उसी समय वह स्थान छोड़ कर चला जाना चाहिए, या उसे डाट देना चाहिए। ऐसे मामलों में चुप या उदासीन रहना भी अपने मन को कमज़ोर बनाना है।

जिस काम को करो उसमें तुम्हारा सच्चा उत्साह होना चाहिए। आरम्भ में तो सभी को अपने काम में उत्साह हुआ करता है, किन्तु उत्साह को अन्त तक क़ायम रखना ही उसके गंभीर एवं स्थिर होने का प्रमाण है।

फुटकर बातें

तीसरी बात यह कि घर में तुमसे—पद में या अवस्था में—जो छोटे हों उन्हें स्नेह करो। बड़ों की सेवा करना तो तुम्हारा कर्तव्य है ही, लेकिन सच पूछो तो तुम्हारे स्नेह एवं सेवा की सच्ची आवश्यकता छोटों को है।

घर को हमेशा साफ़-सुथरा रक्खो। हम जहाँ रहते हैं उसकी स्थिति और वातावरण का हमारे जीवन पर बहुत प्रभाव पड़ता है। स्वास्थ्य के लिए भी यह जरूरी है। साफ़-सुथरी जगह बैठ कर सीधा-सादा किन्तु स्वच्छ भोजन करने में मन को भीतर से एक प्रकार की प्रसन्नता होती है। इसलिए घर को अपने जीवन के देवता का मन्दिर समझ कर उसे शान्त, स्वच्छ और पवित्र रखना चाहिए।

ईर्षा द्वेष दो ऐसी बुराइयाँ हैं जिन्होंने अनेक घरों को चौपट कर दिया। घर में बहुत-सी ऐसी बातें उठा करती हैं कि यदि समझ और सन्तोष से काम न लिया जाय तो सारे कुटुम्ब के नष्ट हो जाने का डर लगा रहता है। इसलिए अपने साथ अन्याय, अविचार और अत्याचार होने पर भी सन्तोष और धीरज से काम लेते रहना अच्छा है। इस बात का तुम सदा ध्यान रखना कि ईर्षा से बढ़कर मनुष्य के हृदय को अपवित्र करने एवं नीचे गिराने वाली दूसरी कोई चीज नहीं है। तुमको तो ईर्षा-द्वेष से मुक्त होना ही चाहिए, पर विवाह के बाद, ससुराल में यदि कोई तुमसे ईर्षा-द्वेष करे भी तो तुम्हें उसके साथ प्रेममय व्यवहार करना चाहिए।

ईर्षा-द्वेष

मैं अपने एक भाई को जानता हूँ, जिनका एक कुटुम्ब से बड़ा घरौआ था। उसमें वह पुत्र के समान माने जाते थे और स्वयं वह उस घर की मालकिन को माता समझकर अत्यन्त स्नेह करते थे। पीछे जब उनका विवाह हुआ और पत्नी घर आई तो उसे उनकी इस घनिष्ठता का ठीक तात्पर्य समझ में न आया; उसने किसी से कुछ पूछा भी नहीं; मन में ही बात रक्खे रही। उसका संदेह बढ़ता गया; यहाँ तक कि उसका जीवन बहुत चिन्ताकुल और दुःखमय हो गया। पति महोदय भी उसके बदले हुए रंग-ढंग का अर्थ न समझ, दिन-दिन उसकी ओर से विरक्त और उदासीन होते गये। ऊब कर पत्नी खाने-पीने में भी लापरवाही करने लगी। फल यह हुआ कि थोड़े ही दिनों में दोनों बुरी तरह बीमार पड़ गये। इधर स्त्री रोती, उधर पति

महोदय यह सोच कर दुखी होते और रोते कि मेरे साथ विवाह होने के बाद से ही यह दुखी और उदास रहती है; अतएव सम्भव है, इसकी इच्छा मुझसे शादी की न रही हो और इसकी किसी दूसरे से विवाह की इच्छा रही हो। पति महोदय इसी चोट से और इसी चिन्ता में सूखने लगे। अन्त में उन्हें क्षय हो गया और बचने की कोई उम्मीद न रही। तब एक दिन उन्होंने पत्नी को बुलाकर कहा कि 'देखो, तुम्हारा यदि पहले ही से किसी से स्नेह था तो उसमें मेरा क्या अपराध ? विवाह के बाद मेरे प्रति तुम्हारी उदासीनता बढ़ती गई; अब मैं अन्तिम समय में तुम्हें अपने बंधन से मुक्त करता हूँ। मेरी मृत्यु के बाद तुम उस पुरुष से विवाह कर सकती हो, जिससे पहले ही होना चाहिए था।'

स्त्री यह सुनकर रो पड़ी और पति के चरणों में सिर रक्खे हुए उसने रोते-रोते अपने मन के सन्देह की सारी कहानी कह सुनाई। जब पति महोदय की जबानी उसे असली हालत मालूम हुई तो वह और दुखी हुई; रात-दिन रोती और उस दूसरी स्त्री (जिसे उसके पति बहुत चाहते थे) से क्षमा माँगती, उनकी सेवा करती एवं पति के जल्द अच्छा हो जाने के लिए व्रत एवं उपवास करती। जब दोनों के दिल साफ़ हो गये तो पति महोदय के मन से चिन्ता का बोझ उतर गया और दो-तीन महीनों में वह भले-चंगे हो गये। तब उन्होंने एक दिन पत्नी को बुलाकर पूछा—"क्यों, अब तुम समझ गईं कि छोटी-सी भूल से घर का घर चौपट हो सकता है ? मैं तो मर ही चुका था।

यदि तुमने ज़रा अक़्ल से काम लिया होता और पहले ही मुझसे पूछ लेती तो इतना दुःख और कष्ट क्यों भोगना पड़ता, और अज्ञान में ही सही, तुम्हारे द्वारा एक पवित्र स्त्री के हृदय के साथ अन्याय क्यों होता ?" पत्नी ने भरी हुई आँखों से ज़मीन की ओर देखते-देखते कहा—"बहुत क़ीमत देकर अब मैं समझ सकी हूँ। आगे अब ऐसी ग़लत-फ़हमी हम लोगों के बीच न होगी।"

इस घटना की ओर मैं तुम्हारा—तुम्हारा क्या प्रत्येक विवाह-योग्य और विवाहिता बहन का—ध्यान आकर्षित करता हूँ। यह कभी न ख़याल करो कि तुम्हारे पति का यदि किसी स्त्री से स्नेह है; घनिष्ठता है, तो वह कलुषित ही है। स्त्री केवल पत्नी ही नहीं होती; वह कन्या भी होती है, बहन भी होती है और माता भी होती है। तुम्हीं किसी की कन्या हो; किसी की बहन हो; किसी की पत्नी होगी और आगे चलकर किसी की माता भी हो सकती हो। अब जिसकी तुम कन्या हो, वह भी तुम्हें स्नेह करता है और जिसकी माता होगी, उसका प्रेम और आदर भी तुम्हें प्राप्त होगा। इसी प्रकार जिस पुरुष से तुम्हारा विवाह होगा उसका स्नेह भी तुम प्राप्त कर सकती हो, पर स्नेह होते हुए, सबसे घनिष्ठता और अपनापन होते हुए भी, सब की दृष्टि में, सब के भाव और व्यवहार में भेद होगा। इसलिए कोई स्त्री (जो तुम्हारे भाई को नहीं जानती) तुमको भाई से एकान्त में बात-चीत करते या किसी स्नेह-सूचक शब्द से बुलाते देख-सुन ले और उसके मन में कलु-

षित भावनायें उदय हों, तो इसमें दोष उसके हृदय का ही है, जो झट यह सोच लेता है कि प्रत्येक स्त्री की घनिष्ठता हर हालत में शारीरिक वासनाओं की ओर ही झुकी होती है। पहले तो किसी स्त्री के हृदय में यह शंका, यों बात-बात में, उठनी ही नहीं चाहिये और कभी उठे भी तो उसे विचार करना चाहिए कि पति को छोड़ और किसी से शुद्ध और पवित्र भाव रखते हुए क्या उसकी घनिष्ठता नहीं है ? उसे सोचना चाहिए कि जैसे मेरे मन में यह भाव उदय होता है, वैसे ही कोई मुझे न जानने वाला यदि अपने भाई से ही इस तरह घुल-मिलकर बात करते देखे तो क्या ऐसी ही शंका न करेगा और उस हालत में वह मेरे साथ कितना अन्याय करेगा ? इसलिए पहले तो अपने मन को इतना शुद्ध, पवित्र और विश्वासमूलक रखना चाहिए कि ऐसी शंका ही न उठे, क्योंकि इससे दूसरों की अपेक्षा अपना ही मन ज़्यादा ख़राब होता है; दूसरे यदि कभी कोई शङ्का उठे भी तो अपने मन को ऊपर लिखी बातों से समझा कर उस बात को चित्त से निकाल देना चाहिए। और, यदि इतने पर भी शङ्का रह जाय तो नम्रतापूर्वक पति से कह देना चाहिए जिससे जो बात सच्ची हो वह ठीक-ठीक मालूम हो जाय।

बस आज यहीं तक।

आशीर्वाद के साथ—
तुम्हारा भाई
'सुमन'

[७]

विवाह के बाद—एक सप्ताह

श्री गान्धी आश्रम,
हटुण्डी
(राजपूताना)
७।१।३०

प्रिय भगवती,

आशा है तुमने मेरे पिछले पत्रों में लिखी बातों पर अच्छी तरह ध्यान दिया होगा। किन्तु एक बहुत ज़रूरी बात, जिसे पहले लिखना मैं भूल गया, यह है कि सुखमय दाम्पत्य-जीवन में विवाह के बाद के दो-चार दिनों का महत्व बहुत अधिक है। उसे समझना और उसका उपयोग करना प्रत्येक वर-कन्या का कर्त्तव्य है।

एक चिनगारी !

मैंने ऊँचे आदर्शों में विश्वास रखनेवाले अनेक सदाचारी मित्रों से सुना है कि विवाह और चाहे जो हो, जीवन में एक विचित्र घटना है। इनका कहना है कि कन्या-दान के समय, जब वर-कन्या के हाथ एक में जुड़ते हैं और ऊपर से जल की अविरल धारा गिरती है, तब

जीवन में एक नये भाव, एक बहुत ही बड़ी जिम्मेदारी का अनुभव होता है। उतनी देर के लिए शरीर और हृदय में जो एक विचित्र कम्पन होता है, दो से एक और एक से दो हो जाने का एक नया भाव पैदा होता है, वह अपूर्व है। वह बात, वह भाव, जीवन में सिर्फ़ एक बार, बहुत थोड़ी देर के लिए आता है। जीवन में फिर कभी उस विचित्रता का, उस पुलक का अनुभव नहीं होता। यह आत्म-समर्पण की प्रेरणा है।

उस समय के बाद से, दो-तीन दिनों और ज्यादा से ज्यादा एक सप्ताह के अन्दर पति-पत्नी का एक-दूसरे के हृदय पर जो प्रभाव पड़ता है, वह बहुत करके, बहुत दिनों तक बना रहता है। यह स्वाभाविक है कि जिसे हम अपने जीवन का साथी चुनते हैं उसके बारे में शुरू में जो भाव उदय होते हैं, जो कल्पनायें उठती हैं, उन्हीं पर भविष्य में एक दूसरे के प्रति प्रेम, श्रद्धा और विश्वास की नींव पड़ती है। इसलिए विवाह के बाद पहली बार जब पति-पत्नी एक-दूसरे को देखते हैं तो उस प्रथम-दर्शन में दोनों के हृदय में एक-दूसरे के प्रति जो भाव जाग्रत होते हैं, उसीसे जीवन के भावी सुख-दुःख का बहुत-कुछ फ़ैसला हो जाता है। आगे चलकर तो एक-दूसरे के प्रति स्नेह-भाव में घटती-बढ़ती-भर हो सकती है, पर उस प्रेम के आरम्भ का अवसर यही होता है, जिसका प्रभाव जन्म-भर बना रहता है।

वर-वधू को—विशेषतः बहनों को—अच्छी तरह जानना चाहिए कि विवाह के दिन, जब पहली बार दोनों एक-दूसरे को देखते हैं, तब उस दृष्टि में और बाद के कुछ दिनों में (जो पति-गृह में व्यतीत होते हैं) जो भाव-कुभाव एक-दूसरे के बारे में उत्पन्न होता है, उसपर दोनों के भावी जीवन का सुख-दुःख बहुत दूर तक निर्भर करता है। इसलिए इस समय दोनों के प्रत्येक भाव, शब्द और कार्य में एक-दूसरे के प्रति ममता, श्रद्धा, और आकर्षण होना चाहिए। स्त्री में स्वाभाविक लज्जा और संकोच के साथ पति के प्रति अनुराग, उसकी बातों, भावों और विचारों को समझने की उत्कण्ठा एवं लज्जा के साथ ही उसकी बातों का मधुर वाणी में जवाब देने की थोड़ी-बहुत तैयारी होनी चाहिए।

शुभ दृष्टि

पति-गृह में जाने पर आरम्भ के दिनों में बहू पर बहुत बड़ी जिम्मेदारी रहती है। पति की माँ-बहनें, भावजें इत्यादि तथा नाते-रिश्ते की कितनी ही स्त्रियों से उसे काम पड़ता है। सभी उसके बारे में अपनी सम्मति स्थिर करतीं और अपने मन के भाव प्रकट करती हैं। कोई उससे कुछ आशा करती है, कोई कुछ। कोई बहू के मुखड़े की सुन्दरता देखने के लिए उत्सुक रहती है; कोई उसे स्वस्थ और परिश्रमी देखना चाहती है; कोई उसे चतुर एवं पढ़ी-लिखी चाहती है, तो कोई नम्र, सुशील और सेवापरायण। एक बहन उसे सीने-पिरोने में चतुर और बेल-बूटे एवं क़सीदा काढ़ने वाली अच्छी भाभी के रूप में पाने के लिए उत्सुक है, तो

अनेक रूपों में

एक सहेली उसे अपने सुख-दुःख का सच्चा साथी बनाना चाहती है। सास चाहती है कि मेरी बहू परिश्रमी हो, प्रेम रखती हो, मुझे घर का काम-काज करती देख कर बैठी न रह सके और मेरे 'ना-ना' कहते रहने पर भी आग्रह एवं स्नेहपूर्वक वह काम कर डाले। पति और ससुर की भी यह इच्छा है कि बहू भोजन बनाने में चतुर हो; एक पाव घी में वह चीज बनावे जिसमें एक सेर घी का स्वाद आवे।

इस प्रकार विवाह के बाद पति-गृह में आने पर, अपनी-अपनी इच्छा और आदर्श के अनुसार, भिन्न-भिन्न व्यक्ति बहू से भिन्न-भिन्न प्रकार की आशायें रखते हैं। ये आशायें इतनी अधिक और इतने अधिक प्रकार की होती हैं कि दुनिया में अच्छी से अच्छी और ऊँचे आदर्श वाली कोई एक ही स्त्री उनको पूरा नहीं कर सकती क्योंकि कई बार तो वे स्वयं ही एक दूसरे की विरोधी होती हैं। किन्तु इन बातों से नवागता बहू को जरा भी घबड़ाना न चाहिए। यह उसकी परीक्षा का समय होता है। इस समय ससुराल वाले अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार उसका मूल्य आँकते हैं। इस समय लड़की ससुराल में अकेली होती है; कोई उसको समझने वाला, कोई उसका सहायक नहीं होता। इस अपरिचित कुटुम्ब और समाज में उसे स्वयं ही अपना परिचय देना पड़ता, अपना हृदय दूसरों को समझाना पड़ता है। इसलिए इस इकलेपन से, इस बोझ से लड़की को घबड़ा कर बैठ न जाना चाहिए और न किसी प्रकार की निराशा, थका-

कुछ व्यावहारिक बातें

वट एवं उदासी प्रकट करनी चाहिए। उसे एक ओर ईश्वर और दूसरी ओर पति के चरणों में श्रद्धा और विश्वास रखकर प्रसन्नता-पूर्वक अपनी जिम्मेदारी को निबाहने में लग जाना चाहिए। उसे बराबर के पद एवं अवस्था वाली सहेलियों एवं ननदों से मधुरतापूर्वक स्नेह के साथ बोलना चाहिए; बड़े पद या अवस्था-वाली जेठानियों एवं अन्य स्त्रियों के प्रति आदर रखते हुए उनकी सेवा करना एवं उनके काम में हाथ बटाना चाहिए। बच्चों को गोद में लेकर उन्हें स्नेह करने, पास बुलाकर उनसे प्रेम-पूर्वक बात-चीत करने एवं उनसे मीठी और अच्छी शिक्षा देनेवाली बातें करने से वे बहुत जल्द वश में हो जाते एवं प्रेम करने लगते हैं, क्योंकि उनका निर्दोष, सरल और निष्कपट हृदय तर्क एवं बुद्धि के जाल में नहीं फँसा होता; वे जहाँ प्रेम देखते हैं वहीं रीझ जाते हैं।

इसी प्रकार सास-ससुर की सेवा में नम्रता, मधुरता और आदर का भाव होना चाहिए। उनके सामने यथासम्भव कम बोलना—व्यर्थ की बातें नहीं करनी—चाहिए। बहू के हृदय में सास-ससुर के प्रति वही भाव होना चाहिए जो माता-पिता के प्रति होता है। वे अगर दो कड़ी बात भी कह दें तो सुन लेना चाहिए और जवाब नहीं देना चाहिए, न उन बातों के कारण उनके प्रति भाव या व्यवहारों में अन्तर ही पड़ना चाहिए।

ससुराल का कार्यक्षेत्र एक ही समय में कई प्रकार का होता है। आरम्भ में उन सब पर ध्यान देने से अच्छा रहता है। कहीं जूठे बर्तन इधर-उधर पड़े हों, तुमको दूसरे की राह न देखकर खुद उन्हें माँजकर एक जगह, नियत स्थान पर, सजाकर रख देना चाहिए। कहीं गन्दगी देखो तो झट उसे साफ कर देना चाहिए। बैठने उठने, खाने-पीने के स्थान को खूब साफ़सुथरा रखना चाहिए। घर का साधारण काम-काज कर चुकने पर भी, आवश्यकता पड़े तो, सास एवं जेठानियों के पांव दबाने एवं मीठी-मीठी बातों से उन्हें सन्तुष्ट रखने को अपना एक खास काम समझना चाहिए। सबसे मधुरतापूर्वक बोलो और सबसे सरलता एवं सचाई की बातें करो। ऐसा नहीं कि ससुराल में एक स्त्री से तुम कुछ कहो और दूसरी से कुछ। प्रायः ऐसा होता है कि सब को खुश रखने के ख़याल से कोई स्त्री जब एक बात करती है तो दूसरी की बुराई करती है और दूसरी से बात करती है तो पहली की बुराई करती है। यह बड़ा खराब, नीचे गिराने वाला और खतरनाक ढंग है। इससे सदा बचो। किसी की बुराई न तो दिल में सोचो और न दूसरे से करो। कोई करे भी तो उस पर ध्यान मत दो।

सेवामय जीवन

चाहे तुम काम-काज से कितनी ही थकी होओ किन्तु तुमसे कोई काम करने को कहा जाय तो बिना अपनी थकावट और आलस्य प्रकट किये, बिना उलाहना दिये या मन में बुरा भाव लाये, प्रसन्नतापूर्वक उठकर वह काम करना चाहिए। सदा यह

ख़याल रक्खो कि तुम्हारे इस कष्ट-सहन और परिश्रम का फल तुम्हारे और तुम्हारे पति के लिए, तुम दोनों के भावी जीवन के लिए, मीठा होगा। इतनी सेवा और कष्ट-सहिष्णुता के बाद यदि दो-चार दिन के लिए भी तुम सुसराल से कहीं चली जाओगी तो लोग तुम्हारा अभाव अनुभव करेंगे।

दूसरी बात यह कि इतना करते हुए अपने मन में किसी प्रकार अहंकार नहीं आना चाहिए। अपनी विद्या, अपनी सेवा, अपने परिश्रम पर कभी गर्व मत करो, बल्कि कोई बात कहते या कोई काम करते समय नम्रता की मूर्ति बनी रहो; हाँ, उस नम्रता में बनावट न हो, सचाई हो।

बहुत-सी लड़कियाँ अपने को एकाएक ससुराल के अपरिचित समाज के बीच देख घबड़ा जाती हैं। यह स्वाभाविक है, किन्तु यह ख़याल करके कि अब हमको यहाँ, इन्हीं लोगों के साथ रहना है, इन्हीं लोगों के सुख-दुख पर मेरा सुख-दुःख निर्भर है, अपनी निराशा और उदासी दूर कर देनी चाहिए और अपने काम में लग जाना चाहिए। धीरज और शान्ति से सब काम ठीक हो जायँगे।

भले घर की बेटी

विवाह के बाद ससुराल जाने पर, आरंभ में—और यों तो सदा ही—इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि हमारे बोलने-चालने, बैठने-उठने में असभ्यता न टपकती हो। बड़ों, छोटों और बराबर वालों से कैसे बोलना, कैसा व्यवहार करना, यह ऊपर मैं बता चुका हूँ। लड़की किस तरह उठती-बैठती है, इसका भी बहुत जगह बड़ा ख़याल रक्खा

जाता है। यह सब लड़की की अपनी बुद्धि पर निर्भर करता है कि वह अपनी मधुर वाणी, अपने सुविचार, अपनी नम्रता और अपनी सेवा एवं व्यवहार से सब के मन पर अपना अधिकार जमाले। किसका स्वभाव कैसा है, किससे किस तरह का व्यवहार करने से कुटुम्ब की शान्ति बढ़ेगी और सब का जीवन सुखी होगा, इसे सोच-समझ कर उससे उसी तरह का—पर हर अवस्था में मीठा—व्यवहार करना चाहिए। थोड़े में मैं इतना ही कह सकता हूँ कि तुम्हारे प्रत्येक शब्द, प्रत्येक व्यवहार से यह बात टपकनी चाहिए कि तुम एक भले घर की बेटी हो; अच्छी संगत में रही हो और तुम्हारा हृदय उदार, स्वच्छ एवं निर्मल है।

लेकिन अपने को परिचित करने एवं दूसरों पर अपना प्रभाव डालने में जल्दबाजी मत करो। तुमको यह आशा नहीं करनी चाहिए कि छः-सात दिन के अन्दर ससुराल वाले तुम्हें उतनी अच्छी तरह समझ जायँगे जितनी अच्छी तरह जन्म देने वाले माता-पिता और जन्म से तुम्हें जानने और देखने वाले भाई-बहन समझते हैं। यदि ऐसी आशा करोगी तो धोखा खाओगी। जो स्नेह एकाएक—बहुत जल्द बढ़ जाता है, उसकी नींव बहुत कमजोर होती है और जरा-सी ग़लती होते ही, एक धक्के में, टूट जाती है। भगवान् में, पति में, अपने हृदय की पवित्रता में विश्वास रखकर धीरे-धीरे सब को समझना और अपने को सबके हृदय तक पहुँचाना चाहिए। यह याद रक्खो कि मनुष्य-चरित्र बड़ा गूढ़ है। बहुत से आदमी ऊपर से

अच्छे मालूम होते हैं; इसी प्रकार बहुत-से आदमी भीतर से अच्छे होते हैं, पर ऊपर से बड़े रूखे होते हैं। इसलिए किसी के बारे में झट अपनी राय मत क़ायम करो। अच्छी तरह सोच-समझकर, भली भाँति परखकर ही किसी के सम्बन्ध में निश्चित राय क़ायम करो; साथ ही अपनी भूल मालूम हो जाने पर, अपनी राय बदलने के लिए भी सदा तैयार रहो। दुनिया में आदमी को ठीक-ठीक समझ लेना एक अत्यन्त कठिन काम है। कभी तो जहाँ हमें विश्वास करना चाहिए वहाँ हम अविश्वास करके दूसरों के साथ अन्याय करते हैं और कभी जहाँ सावधानी रखनी चाहिए वहाँ बहुत अधिक विश्वास करके परिस्थिति जटिल कर देते हैं। इसलिए इस विषय में उदारता और विवेक से काम लेना चाहिए।

इतनी बातों के साथ मुख्य बात तो यह है कि पति के हृदय को विवाह के बाद के दिनों में तुम अच्छी तरह समझ लो। उन पर विश्वास करके, उनसे सलाह लेकर काम करने से दोनों में एक दूसरे के प्रति प्रीति बढ़ेगी।

बस आज यहीं तक।

आशा है तुम स्वस्थ और प्रसन्न होगी।

तुम्हारा भाई—

'सुमन'

[८]

प्रेम बनाम अधिकार

अजमेर

१२।११।३०

प्यारी भगवती,

आजकल स्त्रियों की शिक्षा और स्वाधीनता की समस्या लेकर अधिकार का नया झगड़ा उठ खड़ा हुआ है। कहा जाता है कि स्त्रियाँ पुरुषों की गुलाम नहीं हैं; उन्हें भी संसार में पुरुषों के समान अधिकार क्यों न दिये जायँ? जब मैं किसी भारतीय नारी के मुँह से यह बात सुनता हूँ तो मुझे उस पर तरस आती है। यूरोपीय सभ्यता की चमक-दमक का नशा रंग दिखा रहा है। लेक्चर देने, सहभोज में पुरुषों की तरह, मेहमान के स्वास्थ्य के नाम पर, शराब के प्याले खाली करने, व्यापार करने और दुकान खोलने तथा जैसे पति रोज बाहर जाते समय साधारणतः स्त्री से नहीं पूछता वैसे ही दिन भर, पति से पूछे बिना, मित्रों के यहाँ घूमने को स्वतन्त्रता कहकर स्त्रियों को भड़काया जा रहा है। इसके साथ कौंसिलों और म्युनिसिपलटियों में जाने, बैठने और अखबारों में फोटो छपाने का शौक भी स्वतंत्रता में दाखिल है। पुरुषों को इन बातों

का अधिकार है; वे इस विषय में स्वतंत्र हैं, फिर स्त्रियों ने क्या अपराध किया है, थोड़े में यही तर्क का सारांश है।

मैं नहीं कहता कि इनमें से एक बात भी बुरी है, मैं इनको बुरा नहीं कहता, इनकी बुराई नहीं करता पर मैं अपने हृदय के अन्दर की सारी शक्ति एकत्र करके, जोरों के साथ, यह कहना चाहता हूँ कि जिस ढंग पर, जिस प्रकार, यह सब हो रहा है, वह अवश्य बुरा है। हमारे लिए इसका फल कभी अच्छा न होगा। स्त्रियों को पुरुषों के बराबर ही अधिकार मिलें, इसका मैं विरोधी नहीं। विरोधी क्यों, यदि पुरुषों के सारे अधिकार भी स्त्रियों को दे दिये जायँ तो मुझे कुछ बुरा न मालूम होगा। मैं अधिकार देने का विरोधी नहीं, पर अधिकार के इस झगड़े के पीछे जो प्रवृत्ति, जो इच्छा काम कर रही है, उसका मैं विरोधी हूँ।

मैं, उच्चशिक्षा—प्राप्त और ऊँचे कुलों की अनेक लड़कियों को जानता हूँ; मैंने स्त्रियों को बहुत अधिक स्वतन्त्र रूप में भी

वे और ये !

देखा है और सन्देहशील सास तथा बड़ी-बूढ़ियों के पहरे के अन्दर भी देखा है। सभाओं में खड़ी होकर देश और समाज की व्यवस्था पर लेक्चर देने और हमारी 'गँवार एवं अज्ञान' बहनों की दुर्दशा पर आँसू बहाने वाली स्त्रियों से भी मेरा परिचय है और अपने देवरों से परदा करने वाली ऐसी स्त्रियों को भी जानता हूँ जिनके लिए 'काले अक्षर भैंस बराबर' हैं पर अच्छी तरह नाप-तौल कर और कसौटी पर कसकर मैं यही जान पाया हूँ कि इन उपदेश देने और 'उद्धार' करने वाली स्त्रियों से गाँव की सीधी-

सादी, भोली और अज्ञान स्त्रियाँ स्त्रीत्व के आदर्श के कहीं अधिक निकट हैं। इन दोनों में कौन अच्छी है, कौन बुरी इसकी बहस में पड़ना व्यर्थ है, इसका निर्णय नहीं हो सकता। पर हाँ जो लोग चरित्र को, सदाचार को, हृदय का निर्मलता को, शरीर, बुद्धि और तर्क से अधिक कीमती समझते हैं उनमें से बहुतों को स्त्रियों के वर्तमान आन्दोलन की दिशा देखकर मैंने रोते देखा है!

हिन्दू संस्कृति में विवाह का आदर्श

जो बहनें यूरोप के स्वतंत्र एवं उच्छृंखल गृहजीवन को देखकर, उसकी चमक-दमक और आकर्षण में, बिना विचारे, बही जा रही हैं और इसी में स्त्रियों की स्वतंत्रता देखती हैं वे निश्चय ही प्रेम और विवाहित जीवन के हमारे ऊँचे आदर्शों को भूल गई हैं। यूरोप में विवाहित जीवन विषय-भोग तथा घरेलू जीवन की सुविधाओं के लिए समाज-द्वारा स्वीकृत एक ठेके, एक समझौते के समान है और हमारे यहां धर्म के बन्धन में दो प्राणियों के मिलकर एक होजाने की अवस्था का नाम है। यूरोप में विवाह के बाद भी स्त्री-पुरुष ज्यों के त्यों अलग बने रहते हैं; समाज केवल उनके सहवास—एक स्थान में रहने, सोने—एवं शारीरिक सम्बन्ध का औचित्य स्वीकार कर लेता है। मैं मानता हूँ कि इस समय बहुत अंशों में हमारे यहाँ भी अवस्था यही है। फिर भी आदर्श की भिन्नता के कारण सतीत्व का जितना ऊँचा भाव हमारे यहाँ है उतना और कहीं नहीं है। 'पतिव्रत' के लिए अंग्रेजी या यूरोपीय भाषाओं में कोई शब्द ही

नहीं है। हमारे यहाँ किसी लड़की की शारीरिक पवित्रता का नष्ट हो जाना इसलिए पाप नहीं है कि वह एक बार गिर जाने पर फिर ऊँचा उठ नहीं सकती या उसमें कोई खास खराबी आजाती है; यह तो इसलिए है कि विवाहित जीवन का—एक ही पति के अस्तित्व में अपने को भुला देने, दोनों के मिलकर बिलकुल एक हो जाने का—हमारा जो आदर्श है उससे हम इस में बहुत दूर हट जाते हैं। यूरोप में एक-दूसरे की सहायता से अपने व्यक्तित्व का विकास करना विवाह का आदर्श है; हमारे यहाँ एक-दूसरे के जीवन में मिलकर अपने अस्तित्व को खो देना—एक हो जाना विवाह का आदर्श है। प्रेम की दृष्टि से, सुख के लिए दोनों में कौन आदर्श बड़ा है, इसे प्रत्येक आदमी सहज ही समझ सकता है।

× × ×

बदले की यह भावना

आजकल 'अधिकार अधिकार' की जो अवाज उठाई जा रही है उसकी जड़ में एक तरह की बदले की भावना है। पुरुष ऐसा करते हैं तो स्त्रियाँ क्यों न करें? पुरुष दूसरा-तीसरा, मनमाने विवाह कर सकता है तो पति के मर जाने पर भी स्त्री क्यों ब्याह न करे; वह क्यों आजन्म विधवा बनी बैठी रहे। पुरुष कौंसिलों में जाते हैं तो स्त्रियाँ क्यों नहीं जा सकतीं। पुरुष मित्रों के साथ घूमते, अकेले नाटक और सिनेमा देखने जाते, अन्य शिक्षित स्त्रियों से मिलते-जुलते और हँस-हँसकर बात-चीत करते हैं तो स्त्रियों को ही क्यों पति-व्रत का उपदेश दिया जाय? आजकल स्त्रियों का जो आन्दोलन चल रहा है, उसमें यही तर्क, यही बात बार-बार लाई जाती है।

मैं यह मानता हूँ कि ये तर्क भद्दे और निस्सार है; इनसे पुरुषों का मुँह बंद किया जा सकता है पर स्त्रियों को सच्चा सुख कभी प्राप्त नहीं हो सकता। मैं मानता हूँ कि पुरुषों को कुछ कहने का अधिकार नहीं रह गया है; उनसे स्त्रियाँ ज्यादा वफ़ादार, सहनशील और त्यागी हैं पर मैं यह पूछता हूँ कि क्या इस तर्क से और इस तर्क के अनुसार चलने से स्त्रियाँ सुखी होंगी? मैं भारतीय स्त्री--आंदोलन के प्रत्येक नेता से यह कहता हूँ कि इस प्रश्न का उत्तर देने के पहले आँख मूँदकर दो मिनट सोचो और जवाब दो कि क्या इससे, इस तर्क के अनुसार, पुरुषों के समान स्वतंत्रता पाकर, उनके समान ही दूसरा-तीसरा ब्याह करने, कौंसिलों में जाने और घूमने—फिरने की सुविधायें मिल जाने के बाद वे सन्तुष्ट और सुखी हो जायँगी? यह एक गंभीर प्रश्न है जो पुरुष होते हुए भी मैं धारा में बहे जाते हुए प्रत्येक बहन-भाई से पूछता हूँ।

तुम यह मत समझना—एक मिनट के लिए भी ऐसा सोचना मेरे जीवन की गति के साथ बहुत बड़ा अन्याय होगा—

सदुपयोग और दुरुपयोग

कि मैं स्त्रियों के अधिकार दिये जाने का विरोधी हूँ। नहीं, उलटे मैं सदा से इसका व्यक्तिगत और सार्वजनिक दोनों प्रकारों से समर्थन करता रहा हूँ पर आन्दोलन की तह में पैठकर, इसकी कई प्रधान स्त्रियों से मिलकर, उनका अट्टहास, उनका तर्क, उनकी अस्थिर-चित्तता देखकर मुझे आश्चर्य होता है। तलवार बुरी चीज नहीं; उससे किसी दुखिया की रक्षा भी की जा सकती है और एक निर्दोष

निर्बल आदमी की हत्या भी की जा सकती है। उसकी बुराई-भलाई उपयोग करनेवाले की चित्तवृत्ति और मानसिक अवस्था पर निर्भर है। अधिकार कोई बुरी चीज़ नहीं, पर अधिकार की माँग के पीछे जो बदले की, होड़ की, ईर्ष्या की भावना बोल रही है उसने इस आन्दोलन की सात्विकता, पवित्रता नष्ट करदी है और इसे मोल-तोल एवं दूकानदारी की चीज़ बनादी है। जहाँ अधिकार के पीछे यह तर्क हो, यह भाव हो कि हम उसे लेकर सेवा के, कर्तव्य-पालन के लिए अधिक योग्य बनें; अपने मार्ग पर अधिक दृढ़ता और सचाई से आगे बढ़ सकें वहाँ अधिकार मिल जाने पर मनुष्यता की वृद्धि होती है; वहाँ तलवार का सदुपयोग होता है; उससे सेवा में, आत्म-बलिदान में, परोपकार में काम लेते हैं। जहाँ अधिकार के पीछे यह तर्क, यह भाव हो कि हमारे समाज का एक दल उसे भोग रहा है तो हम भी क्यों न भोगें, वहाँ हृदय में सात्विक प्रेरणा की जगह प्रतिद्वन्द्विता की, प्रतिक्रिया और होड़ की, ईर्ष्या-द्वेष की दौड़ चलती है। ऐसी जगह अधिकार मिल जाने पर हम उसका दुरुपयोग करते हैं; दूसरे दल को गिराकर, दबाकर उससे आगे बढ़ जाने की कोशिश करते हैं। यह तलवार द्वारा हत्या करने के समान है। ऐसी जगह विवेक—भले-बुरे का भाव—नष्ट हो जाता है; केवल यह भाव रह जाता है कि दूसरे दल से आगे कैसे बढ़ा जाय? ऐसे समय यह बात भूल जाती है कि हम अच्छी बात के लिए होड़ कर रहे हैं या बुरी के लिए। मुझे दुःख है कि वर्तमान स्त्री-आन्दोलन में सुधार और आत्म-संयम,

विश्वास और आदर्श की अपेक्षा बदले और होड़, अविश्वास और दुनियादारी की भावना अधिक है।

मैं ये बातें न कहता; मैं जानता हूँ कि जो कुछ मैंने कहा है उसे कहना बड़े साहस का काम है और आजकल के फैशन एवं समाज-सेवक की 'पालिसी' (नीति) के विरुद्ध है। मैं जानता हूँ कि ये बातें विरोध का, तूफान उठाने वाली हैं पर मैं निन्दा और अपयश के लिए सिर झुका-कर भी ये बातें अधिक से अधिक जोर के साथ इसलिए कहना चाहता हूँ कि मैं स्त्रियों की, बहनों की सदाशयता का, उनके भोलेपन और उनकी वफ़ादारी का भक्त हूँ; मैं इसलिए भी कहता हूँ कि मेरा हृदय मेरे दिमाग़ से अधिक शक्तिमान है और जिसका हृदय उसके दिमाग़ पर विजय पाने की शक्ति रखता है वह सदा स्त्री को पुरुष से अधिक समझ सकता और अधिक स्नेह कर सकता है। मैं आज यह बात इसलिए नहीं कह रहा हूँ कि मैं पुरुष हूँ; यदि पुरुष की शुष्कत्ता और झंझट टालने की प्रवृत्ति मुझमें होती; यदि मैं तार्किक होता तो ये पक्तियाँ लिखने का साहस कभी नहीं कर सकता; मैं ये बातें इसलिए कहता हूँ कि मुझे स्त्रियों का हितैषी होने का अभिमान है; मैं पुरुष को नीचे गिरते तो देख भी सकता हूँ पर स्त्री को स्त्रीत्व छोड़कर गिरते देख ऐसा मालूम होता है कि हमारी धरोहर का बचा-खुचा हिस्सा भी जलकर राख हुआ जाता है—जैसे नींव खिसक रही है!

पुरुष के नाते नहीं!

मैं बिना किसी हिचकिचाहट के मान लेता हूँ कि समाज की नींव में घुन लग रहे हैं। उसका संग्रथन, उसका शीराज़ा बिखर गया है। मैं मानता हूँ और पहले भी लिख चुका हूँ कि पुरुष अत्यन्त दंभी, लोलुप और बढ़-बढ़कर डींग मारनेवाला हो गया है; वह निजी जीवन के सदाचार से गिर गया है; झूठी बड़ाई, झूठी शक्ति, समाज के अन्दर झूठी इज्जत के लिए वह नीचे से नीचे काम करने को तैयार हो जाता है; स्त्रियों के प्रति वफादारी और सच्चाई का व्यवहार करना वह भूल गया है। स्त्री उसके लिए मनबहलाव की, वासना-तृप्ति की चीज़ हो गई है। पर इसका यह मतलब नहीं कि स्त्री त्याग और वफ़ादारी के ऊँचे आदर्श से ऊबकर गिर जाय और पुरुषों की तरह अपने को पतन की खाई में गिरा दे। विवेक यह है कि लोगों को ऊँचा उठते देखकर हम ऊपर उठें और किसी को नीचे गिरा देख हम उस रास्ते से बचें जिस पर चलने के कारण उसका पतन हुआ; न कि उसकी तरह हम भी नीचे गिर जायँ। स्त्री मनुष्य की माता है; उसके गर्भ से जन्म लेकर, उसका दूध पीकर पुरुष बढ़ता है। इसलिए हर हालत में स्त्री का दर्जा पुरुष से श्रेष्ठ है। वह ज्यादा ऊँची चीज़ है इसलिए उसे जीवन में सदा ही ज्यादा त्याग करना पड़ेगा। एक पैसे के खो जाने से उतना ही दुःख नहीं होता जितना एक रुपया खो जाने से होता है। व्यवहार की दृष्टि से भी देखें तो एक पुरुष के नष्ट हो जाने से समाज की उतनी हानि नहीं होती जितनी एक स्त्री के नीचे गिर जाने से होती है।

स्त्री श्रेष्ठतर जीव है !

फिर जो बहनें यह समझ रही हैं कि यूरोप की स्त्रियाँ आज भारतीय स्त्रियों से अधिक सुखी और स्वतंत्र हैं वे भूलती हैं।

वहाँ के हाल-चाल !

यूरोप में गृह-जीवन तो नाम-मात्र को रह गया है। होटल में कमरे किराये पर ले लिये जाते हैं; खाना आ जाता है। पुरुष अपनी मनोविनोद की सभाओं (क्लबों) में जाते हैं; स्त्रियाँ अपनी में। कुछ क्लब ऐसे भी हैं जिनमें स्त्री-पुरुष दोना जाते हैं। पति यदि एक ऐसे क्लब में जाता है तो स्त्री दूसरे में। शारीरिक पवित्रता और सतीत्व के आदर्श को छोड़कर देखें तो भी ऐसा जीवन पति-पत्नी के परस्पर प्रेम और सन्तान के उचित विकास में दूर तक सहायक नहीं हो सकता। हमारे यहाँ पत्नी माता है; पत्नी सखा है; पत्नी गृहणी है पर यूरोप में, सभ्य घरानों में, पत्नी केवल प्रेमिका है। यह अवस्था ऊँचे, सभ्य, धनी और शिक्षित घरानों की ही अधिक है। गाँवों के सीधे-सादे किसान अब भी, यूरोप में अधिक प्रेमपूर्ण कौटुम्बिक जीवन बिताते हैं। प्रेमिका के रूप में पत्नी को देखने का अर्थ यह होता है कि पुरुष और स्त्री दोनों को माता, मित्र और गृहणी के रूप में अन्य स्त्री-पुरुषों की आवश्यकता बनी रहती है और फिर स्त्री सदा ही प्रेमिका-रूप में भी प्राप्त नहीं होती; फल यह होता है कि शारीरिक आकर्षण नष्ट होते ही या उसमें कमी आते ही पत्नी की ओर से पति और पति की ओर से पत्नी की उदासीनता बढ़ती जाती है और वे एक-दूसरे से पहले हृदय की, और फिर व्यवहार की दुनिया में दूर हटते जाते हैं। वहाँ स्त्रियों को सब प्रकार के अधिकार तो मिले हुए

हैं; वे मित्रों के साथ अलग घूम सकती हैं; वे घर पर जिसे चाहे बुला सकती हैं; वे पति को परिचय दिये बिना अपने स्त्री-पुरुष मित्रों से पत्रव्यवहार कर सकती हैं; वे तलाक देकर दूसरा, तीसरा विवाह भी कर सकती हैं पर इन बातों का नतीजा यह हुआ कि पुरुष और स्त्री, पति और पत्नी दोनों असन्तुष्ट, अतृप्त-से छटपटाते हुए अपना-अपना विकल हृदय लिये, इधर-उधर घूम रहे हैं। उन्हें शान्ति नहीं मिलती है। पुरुष-स्त्री का विरोध इतना बढ़ गया है कि स्त्रियाँ पुरुषों को दोष देती हैं; गालियाँ देती हैं और पुरुष स्त्रियों की हँसी उड़ाते हैं। स्त्रियाँ पुरुषों के विरोध में सभायें क़ायम कर रही हैं और पुरुष स्त्री-बहिष्कार-मण्डलों की स्थापना कर रहे हैं। इस कटुता में सब अधिकार लेकर भी दोनों असन्तुष्ट हैं; दोनों अपनी-अपनी क़िस्मत को रो रहे हैं। हफ्तों बीत जाते हैं पति को पत्नी का और पत्नी को पति का पता नहीं चलता। अधिकार का प्रश्न इतना बढ़ गया कि दोनों के हृदय के बीच प्रम का स्थान भी उसी ने ले लिया। जहाँ पति-पत्नी में प्रेम नहीं है; जहाँ अपने सुख की जगह दूसरे के सुख का भाव अधिक नहीं है वहाँ सुख क्या मिल सकता है? पति बीमार पड़ता है तो पत्नी दाइयों और डाक्टरों को बुला देती है और रोज दो-चार बार बीमारी का हाल पूछकर अपने कर्तव्य की समाप्ति समझ लेती है। जो भारतीय स्त्रियाँ पश्चिम के इस अन्धा करने वाले चकाचौंध के प्रवाह में बह नहीं गई हैं वे ऐसी अवस्था में रात-दिन पति का साथ नहीं छोड़तीं; हजार नौकर रहने पर भी प्रत्येक काम अपने हाथ से किये बिना चैन नहीं पड़ता। बीमारी

बढ़ जाने पर उनके मन में यही आता है कि इन के बदले यह बीमारी मुझे हो जाय। इन दोनों प्रकार के मनोभावों में कितना अन्तर है! और इसका गृह-जीवन की सुख-वृद्धि में कितना प्रभाव पड़ सकता है।*

अधिकार एक जड़ वस्तु है; अधिकार के द्वारा धन मिल सकता है; अधिकार के द्वारा यश मिल सकता है; अधिकार से अच्छा मकान, अच्छी मोटर मिल सकती है पर अधिकार के द्वारा हृदय वश में नहीं किया जा सकता। मनुष्य का हृदय जड़ वस्तुओं से तृप्त नहीं हो सकता; वह मशीन नहीं है। सुख के लिए हृदय में प्रेम और शान्ति चाहिए। प्रेम और शान्ति होने पर जड़ वस्तुओं की सुविधा से सुख की मात्रा बढ़ सकती है पर केवल इन्हीं वस्तुओं को लेकर सुख की खोज करना मूर्खता है। सुख हृदय की शान्ति और सन्तोष की एक अवस्था है। वह धन और यश से प्राप्त नहीं होती; उल्टे बहुधा नष्ट हो जाती है। इसलिए जो बहनें सुखमय विवाहित जीवन बिताना चाहती हैं उनके ही हित और स्वार्थ के खयाल से यह जरूरी है कि वे इन बातों को अच्छी तरह समझ लें। यदि वे रोटी-पानी की, दुनिया की सुविधायें चाहती हैं और इसी में सुख समझतीं हैं तब तो अधिकार के झगड़े में वे खुशी से पड़ें किन्तु वे हृदय का सुख—

क्या अधिकार से प्यास बुझेगी?

*इस पुस्तक के अन्त में 'शान्ति' कहानी पढ़िये। उसमें इस बात का सुन्दर विवेचन किया गया है। —लेखक

शान्ति और प्रेम चाहती हैं तो इस मृगतृष्णा के चक्कर में न पड़ें; यहाँ—इस अधिकार से—उनकी प्यास नहीं बुझ सकती।

इटली की प्रसिद्ध महिला श्रीमती जिना लोम्ब्रेसो फरेरो ने इस सम्बन्ध में एक बार ऊबकर यही बात लिखी थी। वह नीचे गिराने वाली मनोवृत्तियों (अपराध-विज्ञान) की यूरोप में एक प्रसिद्ध जानकार मानी जाती हैं। उन्होंने अधिकार-प्राप्त स्त्रियों के सम्बन्ध में लिखा था—

"—...........परन्तु इन विजयों से क्या स्त्रियों के सुख में कुछ वृद्धि हुई ? जब मुझसे यह सवाल किया जाता है तो मैं यही जवाब देती हूँ कि मुझे तो इसमें सन्देह है। मेरे विचार से प्रेम ही स्त्रियों की निश्चित और कभी न बदलने वाली आकांक्षा है। प्रेम उनके स्वर्ग का चमकता हुआ सूर्य है पर शारीरिक आकर्षण के रूप में वाहियात और वासनापूर्ण प्रेम नहीं, बल्कि वह प्रेम जिसमें माता और बालक की नाईं एक दूसरे का खयाल और श्रद्धा रहे। स्त्रियाँ ऐसे प्रेम को अपना उद्देश्य बनायें तो स्वतंत्रता, स्वाधीनता, मताधिकार, सम्पत्ति, शक्ति अथवा वैभव की अपेक्षा इससे उनका अस्तित्व अधिक स्थिर—अमर होगा।"

अधिकार के झगड़े में पड़ने के पहले प्रत्येक बहन अच्छी तरह सोचले कि वह प्रेममय जीवन चाहती है या अधिकारमय।

तुम क्या चाहती हो!

मेरे निकट तो प्रेममय हृदय से हीन स्त्री स्त्री ही नहीं है। स्त्री हृदय की देवी है; पुरुष दिमाग़ का—शरीर का राजा है। इसलिए प्रेमहीन पुरुष उतना भद्दा नहीं लगता पर प्रेमहीन स्त्री तो कुटुम्ब, समाज और स्वतः

अपने जीवन के लिए भार-रूप है। स्त्री यदि सचमुच स्त्री है तो प्रेम ही उसका सर्वस्व होगा। वह प्रेम से ही विजय प्राप्त करती है और प्रेम ही चाहती है। अधिकार का झगड़ा ही प्रेम के सामने नहीं उठ सकता। यह झगड़ा वहीं उठता है जहाँ प्रेम का अभाव होता है। जहाँ प्रेम है वहाँ स्वार्थ की, अपने सुख की भावना ही नहीं उठती। वहाँ लेने की जगह ज्यादा से ज्यादा देने का—आत्म-समर्पण का भाव रहता है। इसलिए कभी असन्तोष का प्रश्न ही नहीं उठता।

और यदि अधिकार की दृष्टि से भी देखें तो मैं कह सकता हूँ कि क़ानून-क़ायदे से मिले अधिकारों के द्वारा गृहस्थ-जीवन का सुख नहीं बढ़ाया जा सकता। मेरी समझ से तो प्रेम का अधिकार ही सच्चा अधिकार है। जहाँ देने में देनेवाले की इच्छा नहीं; जहाँ देने में देनेवाले को प्रसन्नता नहीं होती, उलटे दुःख होता है वहाँ न तो देने का कुछ अर्थ है, न लेने में कुछ आनन्द है। ऐसी जगह मिलती हुई चीज लेने में भी लेनेवाले को संकोच और दुःख, निराशा और अपमान का अनुभव होता है।

इसलिए मैं तुम्हारे ही सुख के ख़याल से तुमसे यह कहना चाहता हूँ कि त्यागमय, सेवामय, और प्रेममय जीवन सदा अधिकारमय जीवन से अच्छा है। एक या अधिक गिरे हुए पुरुषों का उदाहरण लेकर स्वयं भी वैसे ही अधिकार के लिए लड़ना कोई अच्छा आदर्श नहीं हैं। स्त्रियों का आदर्श स्त्रियाँ हैं। पुरुष नहीं। स्त्रियों को अपना आदर्श, अपना रास्ता सती, सावित्री, सीता, दमयन्ती इत्यादि के प्रकाश में चुनना चाहिए; विषय-भोग

में पड़े हुए तथा कुरीतियों के शिकार पुरुषों को आगे रखकर नहीं।

दूसरे हृदय पर अधिकार करने के लिए सेवा और प्रेम से अधिक शक्तिमान दूसरा उपाय नहीं है। ये दोनों अधिकार के माता-पिता हैं। इनसे स्वभावतः ही अधिकार प्राप्त हो जाता है। और यदि प्रेम करके बदले में उन्हें प्रेम प्राप्त न भी हो तो भी तुम फ़ायदे में रहोगी क्योंकि इससे तुम्हारा मन अधिक निर्मल और शान्त रहेगा; तुम अपने अन्दर एक अनोखी शक्ति का अनुभव करोगी; दूसरों के सुख को देखकर जलनेवाली स्त्रियों के समान तुममें अशान्ति और चिड़चिड़ापन नहीं आयेगा। तुम जहाँ जाओगी अपने मन की पवित्रता और अपने सेवा-भाव से दूसरों के भार को हलका करोगी।

अधिकार के माता-पिता !

अधिकार के झगड़े में सब से बड़ी बात, जिसे स्त्रियाँ भूल गई हैं, यह है कि पुरुष-स्त्री दोनों को एक साथ रहना है और एक में मिल कर जीवन की, समाज की रचना और सेवा करनी है। दोनों सदा के लिए एक-दूसरे से अलग नहीं किये जा सकते। किसी भी अवस्था में हो, सामूहिक रूप से स्त्रियों को पुरुषों पर और पुरुषों को स्त्रियों पर निर्भर करना ही पड़ेगा। इसलिए इसकी जगह कि पुरुष स्त्रियों की बुराई करें; उन्हें भोग-विलास की पुतलियाँ समझ कर हर समय उनके लिए सशंक रहें और स्त्रियाँ पुरुषों को स्वार्थी मान कर उनके विरुद्ध विरोध और शंका का एक तूफ़ान खड़ा करें, यह ज्यादा अच्छा है कि दोनों हर हालत

क्या दोनों स्वतंत्र हो सकते हैं ?

में एक-दूसरे के दुःख-सुख, एक-दूसरे की कठिनाइयों का सहानुभूति के साथ विचार करें और प्रेम-पूर्वक उन्हें मिल-जुलकर हल करलें ।

प्रेम का मूल्य प्रेम है

बहुत-सी स्त्रियाँ प्रेम को, हृदय को, बाज़ार में बिकनेवाली चीज़ के समान समझती हैं। पुरुष की बात मैं नहीं उठाता क्योंकि वह तो सच्चे प्रेम को साधारणतः ठीक-ठीक समझता भी नहीं और उसकी सच्ची क़ीमत भी बहुत ही कम अवस्था में देने को तैयार होता है। ऐसी स्त्रियाँ जीवन में दुखी और निराश रहती हैं क्योंकि वे सहज ही जिस प्रेम को प्राप्त करना चाहती हैं वह उन्हें नहीं मिलता। इसमें दोष उन्हीं का है। ऐसी बहनें यह समझ लें तो अपना बड़ा उपकार करेंगी कि प्रेम तभी सार्थक होता है जब उसमें सब कुछ चढ़ा देने का भाव रहता है। बिना इस भक्ति और त्याग के भाव के प्रेम का कुछ मूल्य नहीं है। जहाँ ऐसा प्रेम होता है वहाँ कभी असन्तोष और अतृप्ति का अनुभव नहीं होता— वहाँ निश्चय ही प्रेमपात्र पर भी इसका प्रभाव पड़ता है। इसलिए तुम यह अच्छी तरह समझ लो कि प्रेम का मूल्य प्रेम है। यदि तुममें सच्ची प्रीति होगी तो तुम्हारे अन्दर सदा त्याग करने, अपना तन-मन-धन सब कुछ पति के चरणों में चढ़ा देने की भावना उठेगी। ऐसे प्रेम का फल कभी बुरा नहीं हो सकता। उसमें तुम्हें जीवन की सच्ची शान्ति और हृदय का सच्चा सुख मिलेगा।

इसलिए जिस स्त्री के हृदय में सच्चा प्रेम होता है वह ससुराल के धन-धाम को, हाथी-घोड़े को, नौकर-चाकर को, रुपये-

पैसे को नहीं देखती; वह केवल पति को पाकर सन्तुष्ट रहती है। वे स्त्रियाँ बड़ी क्षुद्र हैं और सदा दुखी रहती हैं जो अपनी सुविधाओं के लिए, कभी गहने के लिए, कभी कपड़े के लिए पति से झगड़े मोल लेकर अपने और उसके हृदय के बीच एक दीवार खड़ी कर देती हैं। विवाहित जीवन में पति-पत्नी को एक-दूसरे की बुराई-भलाई, कमी-ज्यादती को अपनी ही बुराई-भलाई समझकर सदा एक-दूसरे की सहायता करनी चाहिए, धीरज बँधाना चाहिए और सान्त्वना देनी चाहिए। छोटी-छोटी बातों को लेकर कलह खड़ा कर देने से सदा दोनों एक-दूसरे से दूर होते जाते हैं और अन्त में पछताना ही हाथ रहता है।

इसलिए तुम अपने हृदय को बहने वाली नदी—गंगा—के समान सदा प्रेम के जल से छलकता रक्खो। प्रेम की इस पवित्र धारा में घर की, आस-पास की सारी मलिनता, सारी बुराई बह जायगी और तुम सदा पवित्र एवं सुखी रहोगी।

संसार का सबसे बड़ा सुख क्या है ?

बिना किसी इच्छा के, बिना किसी स्वार्थ के प्रेम करने में जो सुख है उसका स्थान संसार का बड़े से बड़ा अधिकार नहीं ले सकता। यह दुनिया का सबसे बड़ा सुख है। वे भूलती हैं जो ऐसे अमृतमय सुख का बदला करने को—हीरे को कौड़ियों से बदलने को—तैयार हो जाती हैं। यूरोप की इस चमक-दमक पर न जाना। वहाँ की स्त्रियों से साहस, धीरता इत्यादि गुण अपने अन्दर लेना चाहिए पर पुरुषों एवं स्त्रियों की दलबन्दी के फेर में कभी न पड़ना। यह वह विष है जो जीवन-भर की

कमाई नष्ट कर देगा।

आज भी हमारे घरों में स्त्री का जो ऊँचा स्थान है वह संसार में अन्यत्र कहीं नहीं है। आज भी बड़ेसे बड़े और पवित्र से पवित्र धार्मिक संस्कारों का पालन पत्नी के साथ ही हो सकता है। बहुत प्राचीन काल से हिन्दू-समाज में स्त्री घर की रानी है। वह सच्चे अर्थ में घर की मालकिन है और मातृत्व के मंगलमय भाव से उसका जीवन पवित्र एवं ऊँचा है।

आशा है तुम क़लई की चमक-दमक को सच्चा सोना न समझ लोगी।

माँ को प्रणाम कहना। मैं यहाँ अच्छा हूँ। चिरं० भागीरथी तुम्हें आशीष भेजती है।

तुम्हारा भाई
'सुमन'

(९)

स्त्री-हृदय का हीरा

हटुण्डी
२७।११।३०

प्यारी बहन,

इधर कई दिनों से तुम्हारा कोई समाचार नहीं मिला, मेरी तबियत भी कुछ ठीक न थी। इसलिए जल्दी तुम्हें कोई पत्र न भेज सका। यह भी मालूम नहीं हुआ कि तुम्हारी दवा का क्या इन्तजाम हुआ।

पिछले पत्र में मैंने तुम्हें यह बताया था कि आजकल कुछ शिक्षित एवं असन्तुष्ट स्त्रियों ने स्त्रियों के आन्दोलन में अधिकार का जो झगड़ा खड़ा कर दिया है उसके पीछे कौन-सी भावना काम कर रही है और तुम्हारा, एवं अन्य बहनों का उससे दूर ही रहना अच्छा है। उसी पत्र में मैंने यह भी बताया था कि स्त्री के लिए प्रेम बहुत ही आवश्यक चीज है। प्रेम, स्नेह, दया, क्षमा स्त्रियों के प्रधान गुण हैं और इन सब का स्रोत प्रेम ही है।

इस पत्र में मैं यह बताना चाहता हूँ कि जो प्रेम स्त्री-हृदय के लिए इतना आवश्यक है और जिसके बिना उसे जीवन में सच्चा सुख और रस नहीं मिलता उसका विवाहित स्त्री के मन में

क्या आदर्श होता है और स्त्रीत्व के ऊँचे भावों के अनुसार क्या आदर्श होना चाहिए।

सच पूछो तो पुरुष होने के नाते इस विषय पर कुछ लिखना ढिठाई-सी मालूम होती है। हिन्दू स्त्री को एक पुरुष सतीत्व की महिमा बताये, यह कुछ अच्छा नहीं लगता, किन्तु जब थोड़ा-बहुत सभी विषयों पर मैंने तुम को लिखा है तो स्त्री-जीवन के इस सबसे महत्वपूर्ण अंग पर कुछ भी न लिखना ठीक नहीं होगा।

सती कौन है ?

सतीत्व और पतिव्रत का अर्थ है शरीर से, मन से और वाणी से पति की मङ्गल-कामना करना और पति के अतिरिक्त शारीरिक सुख-भोग के लिए किसी भी पुरुष का खयाल न करना। जो स्त्रियाँ केवल लज्जा अथवा भय से या अन्य किसी कारण से अपनी शारीरिक पवित्रता की रक्षा करती हैं वे सच्चे अर्थ में सती या पतिव्रता नहीं कहला सकतीं क्योंकि उनके मन में तो अस्थिर और अपवित्र भावनायें रहती ही हैं और ऊपर से जो वे बच जाती हैं उसका कारण उनका संयम, उनका सदाचार एवं आत्म-बल नहीं वरन् समाज के बन्धन, बेइज्जती का डर और परिस्थिति की जटिलता है। यदि इन बातों की रुकावट दूर हो जाय तो उन्हें नीचे गिरते देर न लगेगी। इसलिए इसमें उनका कोई विशेष महत्व नहीं है। सच्ची सती स्त्री वह है जिसके मन में शारीरिक भोग-विलास के लिए पति के सिवा कभी किसी का खयाल ही न आवे और सब सुविधायें मिलने पर भी नीचे न

गिरे। यदि उसके पाप कर्म को देखने वाला कोई न हो, उस पर सन्देह करने वाला कोई न हो, उसके लिए बदनाम होने या किसी प्रकार की सामाजिक एवं कौटुम्बिक हानि की सम्भावना न हो फिर भी उसका मन निर्मल रहे, उसके मन में कोई बुरी भावना न आवे और प्रत्येक अवस्था में पति के चरणों में उसका स्नेह बना रहे तब समझना चाहिए कि वह सच्ची सती और पतिव्रता है।

हिन्दू नारी इस प्रकार के ऊँचे आदर्श को सैकड़ों वर्षों से निबाहती आई है। उसने इसका सच्चा मूल्य समझा है; इसके लिए पेट में कटार मारकर उसने आत्म-हत्या की है; इसके लिए हँसते-हँसते वह आग में जली है। उसने अपनी तपस्या, अपने त्याग और अपने कष्ट-सहन के द्वारा जगत के सामने स्त्री का एक अपूर्व तेजस्वी रूप प्रकट किया है। इस अधम वासनामय शरीर को उसने अपने पति-प्रेम की अग्नि से पवित्र एवं निर्मल कर दिया है। हिन्दू भारत और हिन्दू-संस्कृति का इतिहास अनेक महादेवियों के चरित्र से ऐसा उज्ज्वल हो गया है कि इससे अधिक महत्वपूर्ण इतिहास का दूसरा अंग ही नहीं दिखाई देता। आज गाँव-गाँव में सतियों के देवले और स्मारक बने हुए हैं और विवाह के समय आज भी उनकी पूजा होती है।

यह अपूर्व भाव

सतीत्व के इस आदर्श भाव ने नारी को कितना पवित्र रूप दे दिया है! पुरुष उसके सामने अशक्त और एक बच्चे-जैसा

मालूम होता है। सीता के आगे राम का, सती के आगे शिव का, दमयन्ती के आगे नल का चरित्र नगण्य है। आज सत्यवान का नाम कितने लोग जानते हैं पर सावित्री सब की जबान पर है। इस नाशमान शरीर को इन महादेवियों ने अमृत से सींच-कर अमर कर दिया है।

धर्मग्रन्थों में कहीं-कहीं आदेश है कि पति कैसा ही कुरूप और लँगड़ा-लूला वा गुणहीन हो उसकी सच्चे हृदय से पूजा करनी चाहिए। सांसारिक और ऊपर की स्थूल दृष्टि से यह एक बड़ा अन्याय मालूम पड़ता है पर यदि विवाह को केवल शरीर-सम्बन्ध के लिए न समझ कर एक आध्यात्मिक बन्धन मानें तो इस बात से एक बहुत बड़ा भाव संग्रह किया जा सकता है। मुझे खुद अभी चन्द दिनों पहले तक इसका कुछ ठीक अर्थ मालूम न था, पर एक दिन भारत के संसार-प्रसिद्ध विचारक और कवि श्री रवीन्द्रनाथ की एक पुस्तक पढ़ते समय मुझे इसका बिल्कुल ही नया अर्थ मालूम हुआ। जब हम किसी महापुरुष के किसी चित्र को प्रणाम करते हैं तो यह नहीं देखते कि किस काग़ज पर, किस रङ्ग से छपा है। काग़ज मामूली या भद्दा होगा तब भी हम प्रणाम करेंगे; काग़ज अच्छा होगा तब भी हम प्रणाम करेंगे क्योंकि प्रणाम हम काग़ज को नहीं करते काग़ज के पीछे जो भाव छिपा होता है उसे करते हैं। इसी प्रकार मूर्ति की बात है। जब हम मूर्ति के आगे सिर झुकाते हैं तो इसका यह अर्थ नहीं कि पत्थर के आगे झुकते हैं। पत्थर तो किसी देव-भाव का

भाव की श्रेष्ठ पूजा

आवरण है। हम तो देवत्व के उस ऊँचे भाव के आगे झुकते हैं। जब हम अपने माता-पिता को आदर से प्रणाम करते हैं तो उस समय यह नहीं सोचते कि वे सुन्दर हैं या कुरूप हैं या असमर्थ और अशक्त हैं। वे जैसे भी हों, पूज्य हैं। इसी तरह पति के लिए भी, चाहे वह शरीर से कैसा ही हो, ऊँचा भाव हृदय में धारण किया जा सकता है। क्योंकि हमारी उपासना और हमारा स्नेह शरीर से नहीं था। स्त्रियाँ पति-भाव की पूजा करती थीं। वह पति है, इसलिए पूज्य है, स्नेह-योग्य है; न कि वह खूबसूरत है या गुणवान है इस-लिए पूज्य है। जब हम किसी छोटे या अयोग्य आदमी को भी सभापति की कुरसी पर बिठा देते हैं तो उसके उस पद पर रहते हुए हमें उसका आदर करना पड़ता है, उसके आगे झुकना पड़ता है क्योंकि आदर हम उस मनुष्य के स्थूल रूप या शरीर का नहीं करते वरन् उस स्थान का, उस पद का करते हैं। पति-पद पर आसीन होने के कारण ही पुरुष, हमारे आदर्श के अनुसार स्त्री का आदर-पात्र हो जाता है। यह भाव की श्रेष्ठ पूजा है; शरीर या साधन की आसक्ति नहीं है।

रूप का जादू

पर आज समय बड़ा कठिन आ गया है। प्रलोभन बढ़ गये हैं, कठिनाइयाँ दिन पर दिन ज्यादा होती जाती हैं, हमारे अन्दर इतना ऊँचा भाव नहीं रह गया है। पुरुष खुद शारीरिक सुन्दरता के पीछे पागल दिखाई पड़ते हैं; किसी लड़की में सब गुण हों पर वह सुन्दरी

न हो तो आजकल के पुरुषों की निगाह में वह विवाह-योग्य कन्या नहीं समझी जाती। पुरुष यदि उससे विवाह कर लेता है तो जैसे बड़ा उपकार करता है। यह हमारा मानसिक पतन है। हमने शरीर को गुणों—दया, क्षमा, प्रेम, शील, त्याग सेवा इत्यादि—से अधिक महत्व दे दिया है। इसलिए जब वह रूप थोड़े दिनों के बाद नष्ट हो जाता है तो पति का पत्नी और कुछ अंश में पत्नी का पति के प्रति विराग हो जाता है। आवश्यकता इस बात की है कि सब बहन-भाई रूप की, शरीर-सौन्दर्य की निस्सारता अच्छी तरह समझ लें और शरीर की जगह हृदय का सम्बन्ध जोड़ने और बढ़ाने की कोशिश करें। यह तभी हो सकता है जब पति-पत्नी, पुरुष-स्त्री सब में से रूप का मोह दूर हो जाय।

× × × ×

साहस की जरूरत है !

एक और बात के सम्बन्ध में यहाँ तुम्हें सचेत कर देना चाहता हूँ जो सदा तुम्हारे काम आयेगी। आज समाज की हालत बहुत खराब है। पुरुष सदाचार से बहुत नीचे गिर गया है। कालेजों और स्कूलों में चरित्र बनने की जगह बिगड़ता ही अधिक है। बहुत-से पुरुष इतने अधम हो गये हैं कि वे दिन-रात बस विषय—वासना की ही बातें करते हैं। उनके यार-दोस्त, उनकी हँसी-दिल्लगी, उनका खान-पान, उनके विचार सब स्त्रियों के प्रति कलुषित भाव तक ही बंधे होते हैं। उनके मन में सदा यही भावना रहती है कि अमुक आदमी की स्त्री ऐसी है; अमुक दोस्त करो

कैसी खूबसूरत स्त्री मिली है और किस प्रकार उससे परिचय बढ़ाया और उसे जाल में फँसाया जा सकता है। समाज में ऐसी कुलटा या पतित स्त्रियाँ भी हैं जो ऐसे पुरुषों की खोज में रहती हैं, पर संस्कार-वश स्त्रियाँ पुरुषों से (पति के प्रति) अधिक वफ़ादार होती हैं। आजकल कहीं भी किसी रूपवती स्त्री का पुरुषों की दूषित निगाह से बच कर निकल जाना बड़ा कठिन है। सड़क पर से निकले तो सैकड़ों आँखें उसे पी जाने को तैयार रहती हैं; रेल में स्टेशन-वालों से लेकर यात्री तक सभी दर्शन, बातचीत और मौक़ा मिले तो स्पर्श के लिए व्याकुल रहते हैं। बार-बार खिड़कियों के सामने आकर खड़े होते और इधर-उधर टहलते हैं। इसलिए ऐसे कठिन समय में स्त्री के लिए ज्यादा साहसी और निर्भय होने की जरूरत दिन पर दिन बढ़ती ही जाती है। हिन्दू स्त्रियाँ जरूरत से ज्यादा भोली और संकोची होती हैं। यह भोलापन, संकोच और लज्जा कोई बुरी चीज नहीं पर ऐसी जगह जब स्त्री का धर्म ही, उसका सर्वस्व संकट में हो किसी प्रकार की लज्जा या हिचकिचाहट अपनी सारी ज़िन्दगी की सबसे मूल्यवान चीज नष्ट कर देने के समान है। पुरुषों को अभद्र एवं अश्लील बातीचत, इशारे करते या अनुचित भाव एवं भुकाव प्रकट करते देखकर, अनुचित समझते हुए, बहुत-सी बहनें संकोच से, शर्म से, अभ्यास न होने के कारण एवं कुसंस्कार के प्रभाव से चुपचाप अपमान सहती जाती हैं; उधर ऐसे दुष्ट पुरुष का साहस, मौन देखकर, बढ़ता जाता है। और पीछे कई बहनें बड़ी आपत्ति एवं संकट में पड़ जाती हैं। इस-

लिये ऐसे समय हृदय में साहस एकत्र करके, जरा भी न डरकर, उन्हें डांट देना चाहिए। पापी आदमी बड़ा भारी कायर होता है। इसलिए डरना नहीं चाहिए। फिर यदि धर्म की रक्षा के लिए प्राण भी देना पड़ें तो उसके लिए सदा तैयार रहना चाहिए। यदि कोई बहन प्राण देकर अपने धर्म की रक्षा करना चाहें तो किसी पुरुष में यह साहस नहीं है कि उसे पतित कर सके। जब किसी तरह काम न चले तो वह स्वयं मर सकती है।

अभी एक बहन उस दिन एक भोली विवाहित लड़की की बात कह रही थीं। अभी वह बच्ची है। एक दिन मुहल्ले का एक युवक घर सुनसान देखकर अन्दर आ गया और लड़की का हाथ पकड़ लिया। लड़की परदा करती थी; उस युवक से कभी बोलती न थी फिर भी अपने भोलेपन में वह समझ न सकी कि बात क्या है। पीछे जब लड़के ने उससे अलग कमरे में चलने को कहा तो उसे संदेह हुआ और वह बड़ी तेजी से रोने एवं चिल्लाने लगी जिससे वह युवक भाग गया।

यह भी कैसा भोलापन!

मुझे इस कथा में और उस लड़की के भोलेपन एवं निर्दोष भाव में पूरा विश्वास है, पर उसके माता-पिता एवं संरक्षकों ने उसे यह नहीं सिखाया कि समाज की ऐसी अवस्था है और ऐसी हालत पैदा होने पर स्त्री को अपनी रक्षा के लिए क्या उपाय करना चाहिए। विवाह के पहले लड़की को यह बात अच्छी तरह समझा देनी चाहिए कि स्त्री के लिए सतीत्व जिन्दगी से भी अधिक क़ीमती चीज़ है और प्राण देकर तथा सब प्रकार के आचार-विचार की परवा न करके भी उसकी रक्षा करनी

चाहिए। ऐसे मौक़े पर संकोच छोड़ कर दृढ़ता और साहस लाना चाहिए। मैं जानता हूँ कि इस संकोच का एक बड़ा कारण समाज की वर्तमान अवस्था है। स्त्रियाँ भी और उनके पति, माता-पिता, ससुर सभी यह सोचते हैं कि यदि यह बात प्रकट हो गई तो समाज में लोग क्या कहेंगे ? निन्दा के इस भय से स्त्रियाँ इस मामले में दिन पर दिन कमजोर होती जा रही हैं। पाप बढ़ रहा है। इस 'चुप-चुप' की सत्यानाशी नीति ने समाज को नीचे गिरा दिया है। मैं ऐसे लोगों से पूछना चाहता हूँ कि तुम स्त्री के धर्म और सतीत्व को ज्यादा मूल्यवान चीज समझते हो या लोक—प्रियता को। समाज की निन्दा कठोर होती है; उसे सहना कठिन काम है पर जहाँ हम ईश्वर के सामने निर्दोष हों वहाँ समाज की निन्दा सहकर भी अपने धर्म की रक्षा करनी चाहिए। स्त्री के लिए सतीत्व से बढ़कर और कोई चीज नहीं है। माता-पिता, सास-सुसर, यहाँ तक कि पति की भी सतीत्व के सामने कोई क़ीमत, कोई मोल नहीं है। जब राम ने सीता के ऊपर शंका की थी तो सीता ने सतीत्व के अपूर्व तेज से कहा था—"हे राम ! तुम यह कहते हो ? तुम्हारे मुँह से ये शब्द कैसे निकले ?" इसका अर्थ यह है कि सतीत्व पति से भी ऊँची चीज है और पति की आज्ञा भी उसके सामने कोई चीज नहीं है। लोक-निन्दा बुरी चीज है पर समाज को ख़ुश करने के लिए भगवान् को, जो सब देख रहा है धोखा देना, उसकी परवा न करना और भी बुरी बात है। निन्दा से अप्रतिष्ठा होती है; दुःख होता है; यह बुरी चीज है पर सतीत्व पर किसी तरह की चोट होते देखकर निन्दा के भय

से चुप रह जाना और भी बुरी बात है। इसलिए निन्दा या यश की परवा न करके जो धर्म है, जो कर्तव्य है, जिससे परमपिता भगवान् को सन्तोष हो, वह काम करना चाहिए। कभी न भूलो कि ईश्वर सबसे बड़ा है और सब कुछ देखता है। सदा ऐसा मौक़ा आने पर साहस से काम लो और यदि ऐसी ही ज़रूरत हो तो मरने के लिए तैयार रहो।

इससे शिक्षा लो!

कई वर्ष पहले की बात है कि यहाँ आश्रम में रहने वाली एक बहन अपने पति के साथ एक दिन बड़ौदा में ताँगे से कहीं जा रही थीं। उसी ताँगे पर एक और आदमी पीछे आ गया। आते ही उसने दो-चार नोट निकालकर उस बहन को दिखाये। पति महोदय देख नहीं रहे थे पर उस बहन ने उस आदमी को एक थप्पड़ खींचकर लगाया और छीनकर सब नोट सड़क पर हवा में उड़ा दिये। पीछे तो तांगे वाले ने भी उसकी ख़ूब ख़बर ली।

इसी प्रकार हाल में दिल्ली में पुलिस अफसर के हाथ पकड़ लेने पर एक बहन ने उसे एक थप्पड़ लगाया और कहा—"हट जा; तू मुझे गिरफ्तार कर सकता है, गोली चला सकता है पर हाथ नहीं लगा सकता, न धक्के दे सकता है।"

इस तरह का साहस हिन्दू रमणी के लिए आज बहुत आवश्यक हो गया है क्योंकि प्रलोभनों के बढ़ जाने, भोग-विलास के साधनों के सस्ते हो जाने और पुरुषों का सदाचार नष्ट हो जाने के कारण एवं स्वयं स्त्री-समाज में भी अनेक पतिता एवं कुलटा स्त्रियों के उत्पन्न हो जाने से ख़तरे बहुत बढ़ गये हैं और

संकोच एवं लज्जा के कारण चुप रह जाने की नीति बहुत हानिकर हो गई है।

भक्षक रक्षक-रूप में

दूसरी बात यह है कि समाज में स्त्रियों के सतीत्व पर आक्रमण करने वाले सीधे-सादे एवं मूर्ख मनुष्य अब कम होते जाते हैं और उनकी जगह धोखेबाज, षड्यन्त्रकारी और कार्य-चतुर चोरों की संख्या बढ़ती जाती है। पहले जमाने में, मुसलमानों के समय में किसी सुन्दरी स्त्री को देखकर आक्रमण करके उसके घर से उठा ले जाने की चेष्टा की जाती थी। इसलिए ऐसे समय स्त्रियों की रक्षा के लिए लड़कर मर मिटने को बहुत-से भाई तैयार हो जाते थे और स्वयं स्त्रियाँ भी यह जानकर कि हमारा सतीत्व—हमारा धर्म खतरे में है मरकर भी अपनी रक्षा करने को सदा तैयार रहती थीं। पर आज हम जिस युग में रह रहे हैं उसमें साफ़-साफ़ ठीक परिस्थिति को समझ लेने के साधन कम हो गये हैं। समाज में स्त्रियों को लूटने वाले बहुत ही चतुर ठग पैदा हो गये हैं। कोई मित्र बनकर, कोई भाई बनकर, कोई हितैषी बनकर स्त्रियों को जाल में फँसाने की कोशिश करते हैं। मैं ऐसे कई धूर्तों को जानता हूँ, जो एक स्त्री को बहन कहते हैं पर उनके मन में वासना की साँपिन नाच रही है। स्त्री के लिए अपने शत्रुओं को, अपने धर्म पर आक्रमण करने वालों को पहचान लेना सरल है पर इन भाइयों और हितैषियों के असली रूप को पहचानना बड़ा कठिन होता है। पहले ये दुखी बहनों की सहायता एवं सेवा करके, सहानुभूति प्रकट करके एवं अन्य शिष्ट उपायों से उनसे घनिष्ठ

सम्बन्ध स्थापित करते और फिर मौक़ा मिलते ही, उनके मन में कमजोरी पैदा करके उन्हें धोखा देने एवं नीचे गिराने की कोशिश करते हैं।

अभी हाल में इस तरह का एक बड़ा विचित्र नाटक मेरी आँखों के सामने खेला गया। एक महाशय ने, जिन्हें हम सब लोग विश्वास करते थे, एक बहन के बारे में कुछ झूठी बातें हम लोगों से कहीं। एक ओर यह हो रहा था और दूसरी ओर बेचारी उस बहन को धोखे में रखकर वह उससे घनिष्टता भी बढ़ाते जा रहे थे। उन्होंने शुरू से अन्त तक उस बहन को अँधेरे में रखा, उसे धोखा देने की चेष्टा की और उसकी बुराई फैलाकर भी उसके हितैषी बने रहे। यही नहीं हम में से प्रत्येक के विषय में एक-दूसरे को उसका विश्वास-पात्र बनकर, ग़लत एवं ऊट-पटाँग बातें इस ढंग से और ऐसे रूप में कहीं कि हर एक का मन दूसरे से फट जाय। इस तरह उन्होंने एक ओर उस बहन को बहन कह-कर पुकारा; दूसरी ओर उसके अज्ञान में हम में से प्रत्येक के अन्दर उसकी बुराई की; व तीसरी ओर उसे यह बताया कि और लोग तुम्हारी बुराई करते एवं तुम पर सन्देह करते हैं; चौथी ओर हम में से प्रत्येक के चरित्र-दोष की मनगढ़न्त सूचनायें एक दूसरे को दी गईं और साथ ही हिदायत भी करदी गई कि 'मैंने यह बात किसी से नहीं कही। आपको भाई समझकर कहता हूँ। और किसी से इसकी चर्चा न करेंगे।' यही बात प्रत्येक से कही गई। इस तरह महीनों पहले से षड्यंत्र रचकर एवं अपनी

भगवान् ऐसे मित्रों से बचाये!

बुराइयों के बचाव के लिए चक्रव्यूह तैयार करके सबको एक-दूसरे की निगाह में गिराने की चेष्टा करके वह महाशय लोगों की आँखों में धूल झोंक रहे थे। पर जैसा सदा होता है, इतना भ्रम और अविश्वास का अंधकार उत्पन्न करके भी वे सत्य के सूर्य का प्रकाश दबा न सके। वह प्रकट हो गया। पाप स्वयं अपना जासूस होता है। उसके लिए किसी गुप्तचर की, किसी पीछा करने वाले की जरूरत नहीं हुआ करती। वह अपने विषय में दूसरों से भी अधिक सशंक रहता है और खुद अपने आप को ढूंढ लेता है। यही हालत उन हजरत की भी थी। सबके मन को अविश्वास एवं एक-दूसरे की बुराई से धुँधला करने में असफलता अनुभव कर वह खुद हर-एक से पूछते फिरते थे कि 'आपको मुझपर कोई संदेह तो नहीं है!' बार बार सफ़ाई पेश करते, अपने ब्रह्मचर्य की डींगें लगाते और अशान्त अस्थिर की भाँति दिन-रात घूमते फिरते थे। आँख रखने वालों के लिए किसी मनुष्य का चेहरा उसकी मनोवृत्तियों का सच्चा दर्पण है। उनका सूखा मुख, उनकी अशान्ति, उनका हर एक से अपने ऊपर सन्देह करने के लिए पूछना, ये ऐसी बातें थीं जिन्होंने बिना किसी के विशेष चेष्टा किये ही उनका पर्दा खोल दिया। पीछे जब सब लोग एकत्र हुए और वे सब बातें सब के सामने आईं जिन्हें हजरत ने हर एक से अलग-अलग कह रक्खा था तो सारा जाल स्वयं खुल गया। किन्तु इतने पर भी उन्होंने उस बहन को अन्त तक धोखे में रखा। यहाँ तक कि वह उन्हें अभी तक अपना सच्चा हितैषी समझती हैं और जो उनके

लिए चिन्तित थे; उनकी हितकामना ही जिनका काम था, वे आज इस भूली बहन के लिए बुरे बने हुए हैं।

मेरे कहने का मतलब यह है कि समाज में ऐसे-ऐसे महानुभाव आजकल अवतार ले रहे हैं जो स्त्रियों को धोखा देने की कला में बहुत चतुर हैं और जो महीनों पहले से, अनेक रूपों में, अपना जाल बिछाना शुरू कर देते हैं। ये हमारे समाज के भयंकर प्राणी हैं क्योंकि ये मित्र बनकर धोखा देते हैं और जिन्हें धोखा दिया जाता है, उन्हें अन्त तक इसका पता नहीं चलने पाता कि हमें धोखा दिया जा रहा है। ऐसे 'महापुरुषों' से बचना बहनों के लिए आज ज्यादा कठिन हो गया है। ऐसे-ऐसे उदाहरण और दृश्य देखकर मनुष्य-स्वभाव की अच्छाई से ही बहुतों का विश्वास उठ जाता है और इसकी वजह से जो सच्चे और जिम्मेदारी समझने वाले भाई-बहन हैं उनके साथ भी बहुधा अन्याय हो जाता है। बहुत से सच्चे आदमी सन्देह के शिकार हो जाते हैं और बहुतों के कलुषित भाव को सच्चा बंधुत्व समझ लिया जाता है। बुरे-भले की पहचान कठिन होती जाती है और संस्कार, पक्षपात, सन्देहशील प्रकृति एवं अकारण के निन्दा-सुख के कारण कई बार अनायास हम, इन उदाहरणों के प्रकाश में, सभी प्रकार के बन्धुत्व भाव को, घनिष्टता एवं स्नेह को कलुषित समझ लेते हैं। मुझे खुद इस तरह के अन्याय का शिकार होना पड़ा है पर ईश्वर में विश्वास अटल रखकर, उसकी दृष्टि में पवित्र रहने के सिवा इसका कोई उपाय नहीं है। मनुष्य अपूर्ण

पाप-रहित हृदय से बड़ा कोई रक्षक नहीं!

और परिस्थिति एवं संस्कार का गुलाम है। उससे यह आशा करना कि वह प्रत्येक को ठीक-ठीक समझ लेगा, एक प्रकार की मूर्खता है।

तो फिर समाज में ऐसे वैज्ञानिक चोरों से बहनें किस तरह अपनी रक्षा करें, यह प्रश्न रह ही जाता है। इसका कुछ ठीक और निश्चित उपाय नहीं बताया जा सकता। यह बहुत करके प्रत्येक बहन की बुरे-भले को पहचानने की शक्ति और आत्म-संयम की मात्रा पर निर्भर है। पाप-रहित हृदय से बढ़कर मनुष्य का दूसरा कोई रक्षक नहीं है जो सच्ची सती स्त्री है; जिसने सच्चे हृदय से पति को अपना लिया है और जिसके हृदय में, भगवान् के बल पर, यह साहस है कि मुझे कोई नीचे नहीं गिरा सकता, उसे सच-मुच दुनिया की कोइ शक्ति पतित नहीं कर सकती—मनुष्य बेचारा तो क्या चीज है? जहाँ समाज में पतित पुरुष और पतित स्त्रियाँ हैं वहाँ ऐसे भी बहन-भाई हैं जिन्हें संसार की कोई निन्दा पवित्र स्नेह की शुद्ध एवं स्वास्थ्यकर वायु से अलग नहीं कर सकती। ऐसी बहनों को जानता हूँ जो पति में इस तरह मिल गई हैं कि वर्षों एक साथ, एक स्थान पर रहने पर भी किसी पर-पुरुष के चेहरे का ठीक-ठीक वर्णन नहीं कर सकतीं। उनका ध्यान ही उधर नहीं जाता। ऐसी देवियाँ धन्य हैं और उन्हें कोई, कितना ही चतुर आदमी नीचे नहीं गिरा सकता।

इसलिए नारी-धर्म का; सतीत्व का सबसे बड़ा रक्षक तो भगवान् के अन्दर अगाध विश्वास और अपने हृदय का तेज एवं साहस है। दूसरा उपाय पति के प्रति सच्ची श्रद्धा एवं प्रेम है। तीसरी बात अपना पाप-रहित हृदय और आत्म-संयम का भाव एवं अभ्यास है। चौथी बात यह है कि वर्तमान समय में प्रत्येक मनुष्य को बहुत समझ बूझकर और अपनी जिम्मेदारियों का ख़याल करके अपने मित्रों का चुनाव करना चाहिए! ज्यादा आदमियों से घनिष्टता बढ़ाना कभी ठीक और हितकर नहीं होता। हमें जीवन में दो-एक ही सच्चे मित्र, सच्चे बन्धु या सच्ची बहन चुनने का प्रयत्न करना चाहिए। एक भी भाई या बहन ऐसी मिल जाय जो ठीक-ठीक समझकर आजीवन अपनी जिम्मेदारियों का निर्वाह कर सके तो समझना चाहिए कि हमें स्वर्ग मिल गया क्योंकि सच्चे मित्र से बढ़कर दुनिया में दूसरी दुर्लभ वस्तु नहीं है!

भगवान् में दृढ़ विश्वास

× × ×

सतीत्व के सम्बन्ध में एक बात लिखने से रह गई है। मैं यह मानता हूँ कि यदि कोई स्त्री दृढ़ और सच्ची सती हो तो उसे कोई पतित नहीं कर सकता पर मान लो कि एक बहन अकेली कहीं चली जा रही है; वह सच्ची पतिव्रता और सती है; पति को छोड़ कभी किसी का ध्यान नहीं करती। उसे एकान्त में अकेली देख ८--१० आदमी एक-साथ उस पर टूट पड़ें और जबर्दस्ती उसका धर्म कोई नष्ट कर दे तो क्या वह सती या पतिव्रता नहीं रही?

शरीर बनाम मन की पवित्रता

मेरी समझ से, और मुझे विश्वास है कि प्रत्येक बुद्धिमान आदमी की सम्मति में, वह पहले-जैसी ही पतिव्रता है क्योंकि स्वतः उसके मन में तो किसी प्रकार की कुवासना उत्पन्न हुई नहीं। जबतक कोई स्त्री अपने मन को पर-पुरुष के प्रति विकारों से बचाये हुए है; जबतक सच्चे हृदय से वह पति की मंगलाकांक्षिणी है तबतक ज़बर्दस्ती, उसकी अनिच्छा होते हुए, उसका शरीर अपवित्र हो जाने पर भी, उसके पतिव्रत या सतीत्व में कोई कालिमा नहीं आ सकती। ऐसी अवस्था में पति का यह स्पष्ट कर्त्तव्य है कि अपनी पत्नि को पहले की भाँति ही अपने हृदय में स्थान दे।

मुझे सतीत्व एवं पतिव्रत के बारे में इतना लिखने की जरूरत न थी पर समय बड़ा ख़राब आ गया है। मुसलमानों के समय में भी बहनों का जीवन इतने ख़तरे में न था जितना आज है। उस समय यदि कोई बहन किसी परम शत्रु को राखी भेजकर भाई मान लेती थी तो वह प्राण देकर, सारी शत्रुता भूलकर, उसकी; उसके धर्म की रक्षा करता था। उस समय 'भाई' कहकर एक बार पुकारने की ज़िम्मेदारी बहन समझती थी और 'बहन' कहकर एक बार पुकारने की ज़िम्मेदारी भाई समझता था। इन शब्दों की क़ीमत क्या है, इसे लोग जानते थे और उसे चुकाने के लिए तैयार रहते थे। अभी मेरे लड़कपन तक में गाँव के एक आदमी की बेटी को सारे गाँव वाले अपनी बेटी समझते थे। पर आज समय बदल गया है। हमारी जिह्वा से जिस समय अमृत निकलता है उस समय हृदय में वासनाओं की विषैली साँपिनी नाचती रहती है। इसलिए इतना लिख देना पड़ा जिससे

सारी परिस्थिति ठीक-ठीक तुम्हारी समझ में आ जाय।

माँ, सुनते हैं, आजकल बीमार ही रहती है। उसकी दवा-दारू और सेवा का ठीक प्रबन्ध होना चाहिए।

और सब अच्छा है। आशीर्वाद के साथ—

तुम्हारा भाई
'सुमन'

[१०]

कुछ साधारण बातें

जबलपुर

२।१२।३०

प्रिय भगवती,

आशा है अब तुम अच्छी होगी। माँ इत्यादि के स्वास्थ्य के समाचार बहुत दिनों से नहीं मिले। क्या बात है?

विवाह-सम्बन्धी प्रायः सभी बातें पिछले पत्रों में मैं तुम्हें लिख चुका हूँ। अब लिखने को कोई ख़ास बात नहीं रह गई है। अन्त में मैं तुमको थोड़े में सभी बातों का तत्त्व बता देना चाहता हूँ।

सबसे पहली बात जो तुममें होनी चाहिए, हृदय की उदारता और विशालता है। जीवन में ऐसे अवसर बहुत आते हैं जब झूठी कल्पनायें हमें उत्तेजित कर देती हैं। अक्ल पर परदा पड़ जाता है और लोग अनुमान से ऐसी बातों की कल्पना किया करते हैं जिनके न सिर होता है न पैर। इस प्रकार कभी-कभी झूठे वहम के कारण जो ग़लतफ़हमी पैदा होती है वह अन्त में निराशा एवं दुःख के कारण सच्ची हो

हृदय की उदारता

जाती है। दिन-रात झूठी-सच्ची बातें सुनते-सुनते मन खट्टा या वहमी हो जाता है। जरा-जरा-सी बात पर सन्देह होने लगता है। एक-दूसरे के चरित्र पर वहम करना तथा भेद लेते फिरना इत्यादि ऐसी बातें हैं जिनसे पति-पत्नी के हृदय की खाई गहरी होती जाती है। यह सदा याद रखो कि किसी निर्दोष प्राणी पर वहम करना, उसकी निन्दा करना इत्यादि ऐसा पाप है जिसका कोई प्रायश्चित्त नहीं। पति-पत्नी दोनों का कर्त्तव्य है कि एक-दूसरे को अच्छी तरह समझ लें और फिर सदा एक-दूसरे में विश्वास रक्खें। जहाँ सच्चा विश्वास होता है वहाँ एक तरह का मानसिक सुख होता है। यह याद रक्खो कि विश्वास सन्देह से ज्यादा ऊँची चीज है।

पतन की सीढ़ी

दूसरी बात आलस्य एवं बेकारी है। इन दोनों बातों से सदा बचना चाहिए। समाज में बहुत-सी स्त्रियाँ ऐसी हैं जो अपना ज्यादा समय दूसरों के घरों की जाँच और बुराइयों की छानबीन करने में बिताती हैं। अमुक की स्त्री ऐसी है; अमुक पुरुष अमुक स्त्री के पास बहुत आता है; वह ऐसा है; वह वैसा है; अमुक लड़की उस युवक से रोज न जाने क्या-क्या बातें किया करती है, इस प्रकार की दुनिया भर की वाहियात बातें जब दो-चार निठल्ली स्त्रियाँ एकत्र होती हैं तभी छिड़ जाती हैं। इस भयानक कृत्य के लिए उन्हें न जाने कहाँ से समय मिल जाता है। मैंने ऐसे बहुतसे पुरुष देखे हैं जिनके कानों तक कभी घरेलू जीवनकी झूठी-सच्ची चरित्र-सम्बन्धी बातें नहीं पहुँचीं पर आज तक ऊँचे से ऊँचे विचार की भी कोई स्त्री मुझे नहीं मिली जिसके कानों

तक किसी पुरुष या किसी स्त्री की बुराई के सर्टिफिकेट न पहुँचे हों। पुरुष स्वभाव से ही व्यावहारिक और कुछ गम्भीर होता है। इसलिए उसके पास तक पहले तो ऐसी बातों का पहुँचना ही कठिन होता है और पहुँचती भी हैं तो उसे इस ओर ज्यादा ध्यान देने का समय एवं प्रवृत्ति नहीं होती पर स्त्रियाँ, जरा भी परिचय होते ही, एक ही दिन में, आपस में मन का सारा कच्चा चिट्ठा बाहर प्रकाशित कर देती हैं। अधिकांश स्त्रियों को ऐसी गुप्त पर बहुत करके झूठी बातों में एक प्रकार का गुप्त एवं अस्पष्ट आनन्द आता है। ऐसी स्त्रियाँ अपना समय और अपना जीवन भी नष्ट करती हैं; जिन्हें अपना मित्र बनाकर ऐसी बातें कहती-सुनती हैं उन्हें भी चौपट करती हैं और जिनकी झूठी-सच्ची निन्दा फैलाती हैं उनका भी जीवन नष्ट करती हैं। अच्छी स्त्रियाँ वे हैं जो सदा अपने हृदय को स्वच्छ और पवित्र रखने, अपने घर को सुख-शान्तिमय बनाने तथा अन्य आवश्यक कार्यों में लगी रहती हैं और ऐसी बातों पर ध्यान ही नहीं देतीं। सुख ऐसी ही स्त्रियों को मिलता है जो सदा अपने काम में लगी रहती हैं; जिनके पास न व्यर्थ बात करनेवाली जिह्वा है; न झूठी निन्दा फैलाने का साहस करनेवाला हृदय है। ऐसी स्त्रियाँ जब किसी भाई-बहन को ऊँचे उठते देखती हैं तो हृदय से प्रसन्न होती हैं और जब किसी को नीचे गिरते देखती हैं तो हृदय से दुखी होती हैं पर उससे घृणा की जगह उस पर दया करती हैं और स्वयं उसे ऊँचा उठाने, उसे बचाने की चेष्टा करते हुए उसे बदनामी से बचाती हैं, न कि दो-चार और झूठी बातें अपने मन से

गढ़कर उसमें लगा देती हैं। ऐसी स्त्रियाँ धन्य हैं; वे स्वयं सुखी रहती हैं; अपने पति को भी चिन्ताओं से मुक्त रखती हैं और दूसरों को भी सुखी करती हैं। इसलिए तुम सदा बेकारी से बचो; ऐसी बेकार और निन्दा-प्रिय स्त्रियों और ऐसी बातों से दूर रहो। विवाह के बाद सदा हृदय में पति के प्रति विश्वास धारण करो। कभी कोई बुराई दीखे तो अच्छे ढंग से पति को ही कह देना और उसे स्वयं दूर कर लेना स्वस्थ एवं कल्याणकारी मनोवृत्ति पैदा करता है।

तीसरी बात यह है कि विवाहित जीवन में सदा एक-दूसरे के लिए आत्म-त्याग करना पड़ता है। पति के लिए पत्नी को और पत्नी के लिए पति को कष्ट सहने के लिए तैयार रहना चाहिए। एक की ग़लती दूसरा जब अपनी ग़लती समझेगा तभी सच्चा आनन्द प्राप्त हो सकता है। जो स्त्री-पुरुष एक-दूसरे को प्यार करते हैं उन्हें एक-दूसरे के स्वास्थ्य का, एक-दूसरे के सुख का बड़ा ध्यान रहता है।

सौंदर्य की बेड़ी

चौथी बात यह कि स्त्रियाँ शृङ्गार और गहने-कपड़े में अपना ज़्यादा समय और धन नष्ट करती हैं। यह याद रक्खो कि ईश्वर ने जो शरीर दिया है उसे बदलना कठिन है; यह भी याद रखो कि सुंदरता काला-गोरा होने में नहीं है। सच्ची सुन्दरता हृदय की सुन्दरता है; जो जन्म भर क़ायम रह सकती है। और जिन्हें विधाता ने सुन्दर शरीर दिया है वे व्यर्थ के झूठे और सोने-चाँदी के अलङ्कारों से उसे भद्दा और बनावटी बना देती हैं। सादगी से

बढ़कर कोई सुन्दरता नहीं है; और याद रखो विवाहित स्त्री के लिए पति से बढ़कर कोई गहना नहीं है। बहुत-सी स्त्रियाँ गहने-कपड़े के लिए पति को बहुत तङ्ग करती हैं। यहाँ तक कि इन छोटी-छोटी बातों को लेकर घर में कलह उठ खड़ा होता है। सब से पहली बात इस सम्बन्ध में यह याद रखनी चाहिये कि गहने जीवन को बनावटी बनाते हैं। इसमें दिखावे का, भगवान् ने जैसा बनाया है, उससे अधिक सुन्दर दिखाने का या अपने घर की ग़रीबी को छिपाकर समाज की झूठी इज्ज़त के लिए अपने को अधिक समृद्ध या सम्पत्तिवान् दिखाने का भाव रहता है। इसमें स्त्री को मनबहलाव एवं भोग की चीज़ के रूप में देखने का भी भाव है और चोर-डाकू इत्यादि का डर भी लगा रहता है। ये भाव नैतिक दृष्टि से बुरे हैं। सामाजिक दृष्टि से देखें तो एक स्त्री को अच्छे गहने-कपड़े पहनते देख दूसरी स्त्रियों के मन में भी वैसा ही पाने का लोभ होता है, इससे नक़ल एवं अन्ध अनुकरण की आदत पड़ती है। राजनैतिक एवं मानवी दृष्टि से यह इसलिए बुरी है कि जब समाज में कितनी ही अभागी बहनों को पेट भर रोटी नहीं मिलती; जब वे अपने बच्चों को दो पैसेका दूध नहीं पिला सकतीं, न भूख के कारण उनके स्तनों में ही दूध आता है; जब हम देखते हैं कि आज समाज में न जाने कितने भाइयों को रोटी के लिए अपमान सहना पड़ता है, देश के न जाने कितने भाई-बहन भूखे रह जाते हैं और न जाने कितनी दुखिया बहनें पेट के लिए अपना धर्म बेचने को बाध्य हो रही हैं; देश विदेशी जाति के पैरों द्वारा कुचला एवं षड्यन्त्र द्वारा

लूटा जा रहा है; जब हजारों बच्चे, स्त्रियाँ, जवान, बूढ़े जेल के कष्टों, लाठी की चोटों एवं बन्दूक की गोलियों से खेल रहे हैं तब गहने पहनना गरीबों की, दुखियों एवं अधभूखों की हँसी उड़ाना है। आर्थिक दृष्टि से गहने पहनने की बुराई यह है कि जितना रुपया गहनों में लगता है उतना यदि किसी अच्छे बैंक में जमा कर दें तो बीस वर्ष में वह लगभग दूना हो जाता है पर गहने का तो बीस वर्ष में मूल का आधा भी नहीं मिल सकता। इस तरह जहाँ दो रुपये के चार होते हैं वहाँ दो का एक रह जाता है—कितना—चौगुना—अन्तर है। कौटुम्बिक दृष्टि से इसकी बुराई यह है कि पति या घर में कमाने वाला इन चाजों के लिए पिस जाता है और उसे अपने गौरव एवं स्वाभिमान को तिलाञ्जलि देनी पड़ती है। कमाई का जो भाग बच्चों के पालन-पोषण, बड़ी-बूढ़ियों की सेवा एवं दुखियों की सहायता में व्यय होना चाहिए वह इस व्यर्थ दिखावे की चीजों में खर्च हो जाता है। इस तरह गहना नैतिक, राजनैतिक, मानवी, आर्थिक और कौटुम्बिक सभी दृष्टियों से बुरा है। इसके मोह से भगवान् तुम्हें सदा दूर रक्खे।

पाँचवीं बात यह है कि अपने सदाचार और स्वास्थ्य का सदा ध्यान रक्खो। इन दोनों बातों के लिए मन की पवित्रता और सदा काम में लगा रहना बहुत जरूरी है। निकम्मी, सुस्त और बेकार स्त्रियाँ जल्द कुवासनाओं और बुरी बातों के जाल में फँस जाती हैं, क्योंकि बेकारी एवं आलस्य पाप कर्म की ओर ढकेलने वाला सबसे बड़ा राक्षस है। पुरुष हो या स्त्री निकम्मा रहना

सबके लिए बुरा है। इसमें पतन की संभावना सदा बनी रहती है। दूसरी बात यह है कि जो काम में लगे रहते हैं उनके पास अधिक चिन्ता के लिए समय ही नहीं रहता। कामवाली स्त्रियाँ इसीलिए निरोग, स्वस्थ और सुखी रहती हैं कि उन्हें न चिन्ता करने का समय है, न बीमार होने का शौक़ है।

छठी बात यह है कि तुम्हें सदा प्रसन्न रहने का अभ्यास करना चाहिए। प्रसन्न स्वभाव की स्त्री बड़ी योग्य सहधर्मिणी होती है। खुशमिजाजी स्त्री का शायद सबसे बड़ा गुण है। स्त्रियों के जीवन में छोटी-मोटी ऐसी अनेक बातें आती रहती हैं जिनके कारण उन्हें रोना पड़ता है। परन्तु सच्ची गुणवती स्त्री रोने की बात को हँसी में टाल देती है; आँसू को मुस्कराहट में छिपा लेती है। इससे वह अपने स्वास्थ्य की भी रक्षा करती है और दूसरों का बोझ न बनकर उनकी चिन्ता का कारण न होकर उलटे उनके सुख का कारण बनती है। चिड़चिड़ी और मातमी स्वभाव की, सदा मुँह लटकाये रहने वाली स्त्रियों को कोई प्यार नही करता; सब लोग उनसे तंग और दुखी रहते हैं। स्त्री वह भली कि दुःख की अप्रिय बातों का हँसकर टाल दे और दिल में चुभने वाली बातों को सुनकर भी जितनी जल्दी हो सके, दिल से निकाल बाहर करे। ऐसी स्त्रियों को बच्चे प्यार करते हैं; जवान उन्हें अपना सच्चा साथी समझते और बूढ़े, गुरुजन स्नेह रखते हैं। पर इसका यह मतलब नहीं कि दिन-रात क़हक़हे लगते रहें और जरूरत से ज्यादा चंचलता प्रकट की जाय। इन बातों के साथ गंभीरता और संयम

हँसता हुआ मुखड़ा!

की मात्रा भी होनी चाहिए।

सातवीं बात स्त्री की सहनशीलता है। यह स्त्री-जीवन का एक बहुत ही आवश्यक गुण है। इसके होने न होने से जीवन के रूप में बड़ा परिवर्तन हो जाता है। एक अमेरिकन स्त्री ने ठीक ही लिखा है—"एक स्त्री तो साधारण तरकारी को लेकर बड़ा स्वादिष्ट साग बनायेगी और वही तरकारी फूहड़ एवं जल्द-बाज स्त्री के हाथों में पड़कर महानिकम्मी और बेस्वाद हो जायगी जिसमें तरकारी अलग और पानी अलग होगा। चीज़ एक ही है; केवल पकानेवालियों में भेद है।"

"इसी प्रकार मनुष्य-जीवन की सब बातों का हाल है। ऐसे मनुष्य बहुत थोड़े हैं जिन पर भाग्य सदा प्रसन्न रहता हो और ऐसे भी मनुष्य थोड़े ही हैं जिन पर सदा दुर्भाग्य का कुचक्र चलता हो। अधिक आदमी ऐसे हैं जिन पर सुख-दुःख का जोड़ा राज्य करता है। हम सब प्रायः माँ-बाप की रक्षा में जीवन आरंभ करते हैं; एक ही प्रकार शिक्षा पाते और प्रायः एक ही तरह से घर-गृहस्थी का काम-काज सीखते हैं परन्तु परिणाम में, अपने-अपने कर्मों के अनुसार हम दुःखी-सुखी...हो जाते हैं।

"प्रति वर्ष हममें से सैकड़ों शादी करते हैं.........परन्तु तीन-चौथाई घर नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं। कारण यह है कि स्त्री-पुरुष आपस में बड़े स्वार्थ से रहते हैं और परस्पर की सहानुभूति के अभाव में उनकी शादी सफल नहीं होती।

"एक ही मिट्टी से स्त्री-पुरुष दोनो बने होते हैं। न सब पुरुष देवता होते हैं, न सब स्त्रिया स्वर्ग की देवियाँ होती हैं। ऐस

कोई घर नहीं है जहाँ झगड़ा न होता हो। स्त्री-पुरुष दोनों को अपनी अनेक इच्छाओं को रोकना पड़ता है। संतोष, क्षमा और सहनशीलता इत्यादि के प्रताप से घर को स्वर्ग के समान बनाया जा सकता है।"

इससे तुम जान सकती हो कि जीवन के सुख और कुटुम्ब की शान्ति के लिए सहनशीलता एक बहुत बड़ा गुण है। गृहस्थ-धर्म संयम का धर्म है और विवाहित या गृहस्थ जीवन परस्पर सहायता और सेवा का जीवन है। उसमें न पति को, न पत्नी को, न देवर को, न जेठ-जिठानी, सास-श्वसुर को यह सोचना चाहिए कि उन्हीं की बात हो, उन्हीं की बात चले। सब को मिलजुलकर रहना और अपने मन की इच्छाओं को दबाकर एक-दूसरे की सेवा एवं सहायता में ही सन्तोष पाने की कोशिश करनी चाहिए। यह ठीक है कि जब तुम निर्दोष हो और कोई गाली दे तो उसे सह लेना बड़ा कठिन है पर दुनिया में जितनी अच्छी चीजें हैं, जितने ऊँचे गुण हैं सभी की यही हालत है। सब बड़ी कठिनाई से प्राप्त होते हैं। पर यदि तुम आरंभ में कठिनाई सहकर और अपने मन पर काबू रखकर सहनशीलता का अमूल्य रत्न प्राप्त कर लोगी तो अपने अन्दर उसके अपूर्व प्रभाव का अनुभव करोगी। दूसरों की निन्दा और गालियों को सह लेना अपने हृदय में स्वर्ग की सृष्टि करने के समान है। दूसरे क्या कहते हैं यह देखने और दुखी एवं चिन्तित रहने की जगह सदा यह देखो, यह ध्यान रक्खो कि तुम ईश्वर के सामने निर्दोष हो या नहीं।

सहनशीलता सफलता की कुञ्जी है

यदि तुम अपने मन में निर्दोष और पवित्र हो तो किसी के उलाहने किसी की निन्दा और किसी की बुराई से तुम्हें दुःख एवं चिन्ता नहीं करनी चाहिए। हाँ, निन्दा करने वाले आदमी का बुरा नहीं सोचना चाहिये।

इन गुणों को अपने अन्दर पैदा कर लेने से प्रत्येक स्त्री अपने जीवन को बहुत ऊँचा उठा सकती और अपने कुटुम्ब की सुख-शान्ति बढ़ा सकती है। यह ठीक है कि सुख परिवार के अन्य स्त्री-पुरुषों के स्वभाव पर भी निर्भर है, पर इन गुणों का उपयोग करने से, एक सीमा तक, स्वभाव भी बदला जा सकता है और यदि दूसरों के स्वभाव में कुछ परिवर्तन न हो तो भी अपने हृदय की शान्ति और अपने मन का सच्चा सुख तो बढ़ेगा ही। तुम देख सकती हो कि एक घर में तो सुख-शांति का राज्य है; उसमें पति संतुष्ट और प्रसन्न है; पत्नी हँसमुख, नीरोग और स्वस्थ है; बच्चे हँसते-खेलते रहते हैं; अपनी निर्दोष एवं भोली बातों से सब का मनोरंजन किया करते हैं। माता-पिता एवं सास-श्वसुर का शान्त और गंभीर मुख सबको उत्साह देता और धीरज बंधाता रहता है। उनका छोटा-सा घर है; आमदनी भी थोड़ी है पर घर में सब एक-दूसरे को अपना समझते, एक-दूसरे की सुख-सुविधा का ख़याल रखते और हँसते-हँसते अपने काम-काज करते रहते हैं। इससे वह छोटा-सा घर स्वर्ग हो रहा है। पर पास ही दूसरे मकान में चिन्ता, कलह, मार-पीट, गाली-गलौज और अशान्ति का राज्य है। घर भी बड़ा है; पति कमाने वाला भी है; व्यापार से उसे आमदनी भी खूब है पर स्त्री फूहड़

अकाश और पाताल

है; उसका किसी काम में मन नहीं लगता; कहीं दाल में नमक ज्यादा है, कहीं रोटी जल गई है। पति भी तुनुक मिज़ाज—जल्द क्रोधित हो जानेवाला—है। वह नाराज़ होता है; पत्नी भी गरम होकर बात बढ़ा देती है। रोज़ लड़ाई-झगड़े चला करते हैं। पिता दुर्वासा के अवतार हैं। उनको दोष निकालने से छुट्टी ही नहीं मिलती। कभी उनको दाल में रेत और कंकड़ मिले मालूम होते हैं, कभी दूध में पानी मिला दिखाई देता है। पतोहू किसी से बात करती है तो उन्हें उसीमें उसका पतिव्रत भङ्ग होता दिखाई देता है। घर बिल्कुल गंदा हो रहा है, कोई चीज़ क़ायदे से नहीं रखी जाती; सब अस्त-व्यस्त है। रसोई के घर में धोने के मैले कपड़े पड़े हुए हैं और सोने के कमरे में तेल का पीपा मौजूद है। पढ़ने की मेज़ पर जूता पड़ा है और आलमारी पर दाल-चावल से भरी थालियाँ पड़ी हैं जिनके अन्दर से घुनराम निकलकर सुरक्षित स्थान की तलाश में घूम रहे हैं; चूहे उछल-कूद मचा रहे हैं जैसे उनके घर कोई उत्सव हो। कहीं जूठन बिखरी है; कहीं फलों के छिलके पड़े हैं जिन पर मक्खियाँ इष्ट-मित्रों एवं स्वजनों के साथ निमंत्रण जीमने आ बिराजी हैं। कहीं बच्चे मैले-कुचेले घूम रहे हैं जिनकी आँखों से कीचड़ निकल रहा है और नाक के द्वार पर स्वयंभू बुलबुले बनते-टूटते रहते हैं। धमा-चौकड़ी, मार-पीट मची है; शांति नहीं है।

पास-पास बसे हुए इन दोनों घरों में कितना अन्तर है! दोनों घरों की स्त्रियाँ एक ही प्रकार से पैदा हुई थीं। बहुत करके दोनों का लालन-पालन भी एक ही प्रकार से हुआ होगा और

फिर सयानी होने पर माता-पिता या घरवालों ने एक ही प्रकार से, धूमधाम के साथ, शादी कर दी होगी किन्तु एक में सहनशीलता थी; सेवा का भाव था। वह जब बात करती तो मुँह से रस टपकता था; जब बोलती तो मुँह से फूल झड़ते थे। वह कभी दिल खट्टा करने वाली बात न कहती थी। कोई दूसरा कड़ी बात कहता तो मीठी बात से जवाब देती। अपनी भक्ति और प्रेम से पति का हृदय उसने जीत लिया; उनकी विश्वासपात्र बन गई और दोनों के दिल एक-दूसरे से मिलते गये। अपनी सेवा और अपने परिश्रम एवं मीठे स्वभाव से उसने सास-श्वसुर को सदा खुश रक्खा; उन्हें कभी बिगड़ने का अवसर न दिया। देवरों से हँसकर बोलती और सदा उन्हें प्रसन्न रखने की कोशिश करती है। देवरानियाँ उसके पास जाते हुए ऐसा अनुभव करती हैं मानो स्नेहमयी माँ के पास जा रही हों और जेठानियों को ऐसा मालूम होता है मानो उनकी छोटी बहन हो। उसके इस स्वभाव का फल यह हुआ है कि उससे कभी कोई भूल भी हो जाती है तो सब चिढ़ने की जगह उसपर अपना स्नेह प्रकट करते हैं। सारे कुटुम्ब में सभी एक-दूसरे की भूलों को सँभालने की कोशिश करते हैं पर इसका मुख्य श्रेय बहू के स्वभाव को है। उसने अपनी सेवा, अपने प्रेम, अपनी मधुरता और अपने अथक परिश्रम से घर को स्वर्ग की भाँति शांत और सुखमय बना रक्खा है। वह छोटी-छोटी बातों का ध्यान रखती है, जिसका मनुष्य के दिल पर बहुत प्रभाव पड़ता है।

तुम्हारे हाथ भी बहुत-कुछ है !

इसलिये तुम सदा यह ध्यान रक्खो कि किसी घर को अच्छा-बुरा, सुखदायक या दुखःदाई बनाना बहुत-कुछ अपने स्वभाव पर निर्भर है। यदि तुम्हारा स्वाभव मधुर हो; तुम अपनी अपेक्षा दूसरों के दुःख-सुख का ज्यादा ख़याल रक्खो; कोई कड़ी बात कहे तो भी हँसकर टाल दो और मीठे शब्दों से जवाब देकर उसके क्रोध को जीत लो तो तुम कहीं भी रहो, सदा सुखी रहोगी। मैं जानता हूँ कि दुनियां में ऐसे भी लोग और ऐसे भी कुटुम्ब हैं जहाँ बहू में ये सब गुण मौजूद होते हुए भी उसे दुःख उठाना पड़ता है। सास-सुसर दूसरे ख़याल के, बहुत संकुचित विचारों से लदे होते हैं; उनके स्वभाव में ही चिड़चिड़ापन और दोष निकालने की मनोवृत्ति होती है। ऐसी जगह पति का कर्तव्य है कि पत्नी को सान्त्वना देता रहे पर साथ ही उसका यह भी कर्तव्य है कि जहाँ वह अपने ऐसे चिड़चिड़े माता-पिता का ध्यान रक्खे वहाँ पत्नी पर भी ऐसे भयंकर अन्याय न होने दे कि उसका हृदय दुखी हो जाय और उसका दिल टूट जाय। इसका परिणाम यह होता है कि निराशा के कारण वह सोचने लगती है कि मैंने न जाने क्या पाप किया था जो ऐसे कुटुम्ब में आ पड़ी, जहाँ लाख चेष्टा करने पर भी किसी को मुझसे सुख नहीं है। कई स्त्रियाँ तो यहाँ तक सोचने लगती हैं कि हे भगवान्, मुझे कभी स्त्री का जन्म मत देना। यह ठीक है कि इस तरह के विचार मन में लाना एक प्रकार की कमजोरी है पर मनुष्य का चरित्र केवल आदर्शों पर ही गठित नहीं होता। संसार और परिस्थिति का भी उस पर बहुत

बड़ा असर पड़ता है। केवल आदर्शों की दुहाई देते रहने और स्वभाविक मानवी कमज़ोरियों की परवा न करने से कभी-कभी बड़ा बुरा प्रभाव पड़ता है। जिस प्रकार की निराशा और मनस्ताप का वर्णन मैंने किया है उसका स्त्री के मन, विचार-प्रवाह और स्वास्थ्य पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ता है। और चूँकि घर का सारा बोझ उसी पर रहता है और वही कुटुम्ब के सुख-दुःख का केन्द्र है, इसलिए उसके मानसिक दुःख उसी तक नहीं रह जाते; उसके लाख छिपाने और मुँह से न कहने पर भी उसका असर घर के प्रत्येक काम और प्रत्येक आदमी पर पड़ता है। इस दृष्टि से जहाँ सदा हँसमुख और प्रसन्न रह कर कष्टों को सहते हुए अपने मीठे स्वभाव और अपनी सहनशीलता से सबकी सेवा करना पत्नी का कर्तव्य है वहाँ उसे हृदय में चुभने वाले अन्यायों से बचाना और उसे सब प्रकार सान्त्वना एवं सहायता देना पति का भी कर्तव्य है। इसी प्रकार अपनी गंभीरता, अपने वात्सल्य स्नेह और अपने शुभाशीषों से पतोहू का कल्याण करना एवं अपने पद के गौरव की लाज रखना भी सास-ससुर का काम है।

कर्त्तव्य-चिन्ता

परन्तु पति का कर्तव्य पति समझे या न समझे; सास-ससुर को अपना काम मालूम हो या न हो बहनों को विवाहित अवस्था में अपने कर्तव्य का ध्यान सब से पहले रखना चाहिए। सहनशीलता और अपने मीठे स्वभाव और व्यवहार से यदि तुम दूसरों का स्वभाव न बदल सकीं तो भी तुम्हें एक प्रकार का सन्तोष होगा कि मैंने अपना कर्तव्य पूरा कर दिया है और इस भाव के कारण ही तुमको अपने अन्दर

एक प्रकार की अपूर्व शान्ति का अनुभव होगा। यह ठीक है कि अपना दुःख-सुख अपने साथ रहने वालों के दुःख-सुख पर भी निर्भर करता है पर तुम्हारे हृदय का सच्चा आनन्द तो केवल तुम्हारे ही मन की शान्ति और कर्तव्य-पालन पर निर्भर है। एक विदेशी बहन ने ठीक ही लिखा है कि हम सबको रोग, शोक और मृत्यु का दुःख देखना पड़ता है। एक गरीब स्त्री को बच्चा जनने में इतना ही कष्ट होता है जितना कि एक लखपती की घरवाली को और दोनों को बच्चे की मृत्यु पर एक-सा कष्ट होता है पर बहुत-सी गरीब स्त्रियाँ कष्टमय जीवन में भी सन्तुष्ट और सुखी हैं जब कि अनेक धनिक रमणियों का हाहाकार आकाश को कम्पित कर रहा है। बात यह है कि धन-धाम की बाहरी सुविधाओं पर हृदय की शान्ति और सुख बहुत कम निर्भर करता है। इस प्रकार की कठिनाइयों के होते हुए भी तुम बहुत दूर तक अपने कर्तव्य का पालन कर सकती हो और अपने हृदय को शुद्ध और सन्तुष्ट रख सकती हो। भाग्य के दोष का रोना निराशा और कमजोरी का चिन्ह है। यदि तुम ऊपर लिखी बातों पर ध्यान देकर अपनी ज़िन्दगी की दीवार खड़ी करने की कोशिश करोगी तो निश्चय ही तुम्हें अपने अन्दर एक अपूर्व शान्ति और एक विचित्र ज्योति का अनुभव होगा। इससे तुम्हें अगली कठिनाइयों को सहने की शक्ति प्राप्त होगी और तुम दुःख को भी हँस कर टाल सकोगी। सदा याद रक्खो कि अच्छा या बुरा बनना खुद तुम्हारे हाथ की बात है।

घर को सँभालनेवाली इन बातों के साथ पति का ध्यान कभी न भूलना चाहिए। साधारणतः पुरुष बाहरी दुनिया के कामों में लगे रहते हैं। कोई नौकरी करता है; कोई व्यापारी है; कोई प्रोफेसर या वकील है; कोई पत्र-सम्पादक या उपदेशक है। इन कामों में अनेक प्रकार की कठिनाइयाँ आती हैं; कितने ही तरह की चिन्तायें सदा सिर पर सवार रहती हैं; प्रलोभन भी कम नहीं आते। अतः पुरुष जब दिन भर का थका-माँदा, चिन्ताओं के बोझ से लदा घर आता है तो स्वभावतः शान्ति चाहता है। यदि उसकी सहन-शक्ति थोड़ी हुई तो ज़रा-ज़रा सी बात पर वह चिढ़ता है। चतुर गृहणी का काम है कि उससे मीठी-मीठी बातें करके उसके चित्त को शान्त करे। गरमी के दिन हों तो पङ्खा झले और थोड़ी देर बाद जलपान कराये। उसे सदा हँसते हुए पति और घर के अन्य काम-काजी आदमियों का स्वागत करना चाहिए। स्त्री को पति के काम-काज के बारे में इतना ज्ञान होना चाहिए कि वह उसकी बातों को समझ सके और उसमें अपनी दिलचस्पी रक्खे। पति की चिड़चिड़ी बातों का जवाब भी नम्रता और शान्ति से देना चाहिए। बहुत-सी स्त्रियाँ कड़वी बातों का जवाब भी कड़वा ही देकर बात बिगाड़ देती हैं और पति के हृदय को तो दुखी करती ही हैं, साथ ही अपनी सुख-शान्ति की जड़ में भी क़ुल्हाड़ी मारती हैं। समझदार स्त्री वह है जो अपनी हँसी-ख़ुशी और मधुरता में सबका दुःख बहा दे। जब बच्चा मचलता और माँ को कड़ी बातें कह देता है तब वह उस पर क्रोध नहीं करती; मीठी-मीठी बातें करके

कङ्कर का उत्तर फूल !

उसे मना लेती है, वैसे ही पति के रूठने या खीझने पर भी पत्नी को अपनी स्वाभाविक मधुरता से उसका क्रोध दूर कर देने की चेष्टा करनी चाहिए, न कि अटपट जवाब देकर बात का बतंगड़ बना देना चाहिए। स्त्री में यदि समझ हो और उसके दिल में पति के प्रति प्रेम हो तो वह स्वभावतः हर समय प्रेममय और रसभरी बातें बोलेगी। यह याद रक्खो कि पुरुष भी प्रेम और सेवा का भूखा है। यदि उसे यह विश्वास हो जाता है कि उसकी घरवाली उसे जी-जान से प्यार करती है; उसमें श्रद्धा रखती है तो वह स्त्री की सुविधाओं की ओर बहुत ध्यान देने लगता है। इसलिये प्रत्येक विवाहित बहन को इस तरह का ढङ्ग रखना चाहिए कि पति को उसके प्रेम का विश्वास बना रहे और प्रत्येक काम में उसे अपने इस प्रेम का परिचय देते रहना चाहिए।

पति-सम्बन्धी तीन बातें !

पति के सम्बन्ध में दो-तीन और भी ऐसी बातें हैं जिनका ध्यान रखना चाहिए। पहली बात यह कि स्त्री को सदा सोचना चाहिए कि उसका पति भी मनुष्य है; उसमें भी दोष-गुण दोनों ही हैं। यह समझकर सदा उसकी कमजोरियों को क्षमा करना और यदि सम्भव हो तो प्रेमपूर्वक उन्हें दूर करने का यत्न करना चाहिए। सदा उसकी गलतियों के लिए उसके साथ सहानुभूति रक्खो।

दूसरी बात यह कि पति के प्रति प्रेम के साथ ही श्रद्धा और भक्ति का भी भाव होना चाहिए। पति को अपना रक्षक और रास्ता दिखाने वाला समझ कर सदा उसका आदर करना

और अपने प्रत्येक काम में आदर के उस भाव को व्यक्त करना चाहिए।

तीसरी बात यह कि विवाह होने के बाद प्रत्येक बहन को चाहिए कि वह जीवन में दुःख-सुख जो आये उसे खेल समझ-कर ग्रहण करे। जब हम बचपन में या बड़े होकर कोई खेल खेलते हैं तो चोट लगने पर रोते नहीं। तुमने देखा होगा कि जब खेल में कोई बच्चा चोट खाकर रोने लगता है तो अन्य बच्चे उसकी हँसी उड़ाते और तालियाँ पीट-पीटकर एवं कई तरह की हँसाने वाली कहावतें कहकर उसे हँसा देते हैं। जब खेल में शामिल हुए तो फिर कोई कष्ट होने पर रोना नहीं चाहिए—प्रसन्नतापूर्वक सब सहते जाना चाहिए। इसी स्वभाव को खिलाड़ी का ढङ्ग कहते हैं। स्त्रियों को अपना स्वभाव इसी साँचे में ढालना चाहिए और हाय-हाय करने एवं अपनी किस्मत को कोसने की जगह सुख-दुःख जब जो आवे उसे धीरज के साथ हँसते-हँसते सहना चाहिए।

इसके साथ ही गृहस्थी में दो और बातों का ख़याल स्त्रियों को रखना चाहिए। बहुत-से पुरुष ऐसे होते हैं जिनमें काम करने की योग्यता होती है; वे अपने काम में चतुर भी होते हैं पर उनके स्वभाव में निराशा भरी रहती है। वे सोचते हैं कि इतने झगड़े-बखेड़े करके हमें क्या करना है? और यह इतना सब किसके लिए करें? ऐसे लोगों को सदा सहायक और साथी की जरूरत रहती है जो उनके कामों में उन्हें उत्साहित करता

इनका भी ख़याल रक्खो !

और उनसे काम लेता रहे। योग्य पत्नी इस काम को अच्छी तरह कर सकती है। पत्नी का दूसरा नाम ही हमारे यहाँ सहधर्मिणी है और जो स्त्री पति की सच्ची सहायका होती है वही सच्ची और योग्य पत्नी भी होती है।

दूसरी बात यह है कि चाहे रुपये-पैसे की हम जितनी उपेक्षा करें पर वर्तमान समय में दुनिया के प्रत्येक क्षेत्र में रुपये का महत्व बहुत बढ़ गया है। पति जो-कुछ कमाकर लाता है वह घर-खर्च के लिए पत्नी को देता है। पत्नी की योग्यता इस बात में है कि वह उतने ही रुपयों में समझदारी के साथ घर का खर्च चलावे और पति को अधिक के लिए कभी तङ्ग न करे। यही नहीं जो योग्य स्त्रियाँ होती हैं वे तो उसमें से भी, पति के अज्ञान में, कुछ न कुछ बचाती जाती हैं और कोई कठिन अवसर आने या विपत्ति पड़ने पर, जब इज्जत का सवाल आ जाता है, निकालकर दे देती हैं। ऐसी पत्नी पर पुरुष सदा विश्वास और ममता रखता है और उसे पाकर सन्तुष्ट एवं सुखी रहता है।

× × ×

ज्यों-ज्यों तुम्हारे विवाह के दिन निकट आते जाते हैं तुममें गम्भीरता आनी चाहिए और इन बातों पर ध्यान देना चाहिए। रोने-धोने और सदा यह विचार करके दुखी रहने से कि मुझे माता-पिता की गोद से दूर होकर दूसरे के घर जाना पड़ेगा, यह अच्छा है कि जो कुछ होना है उसके लिए तुम अपने को जल्द से जल्द तैयार कर लो। यदि तुमने रोने-धोने में यह मौक़ा खो दिया और इन बातों पर ध्यान न दिया तो तुम्हें जन्म भर

रोना पड़ेगा और दुनिया की कोई शक्ति तुम्हारे दुःख को दूर नहीं कर सकेगी।

माँ से प्रणाम कहना। श्याम, राजनाथ, कमला एवं चम्पा को आशीर्वाद।

तुम्हारा भाई
'सुमन'

[११]

गृहस्थ-जीवन के रहस्य

श्रीगान्धी-आश्रम,
हटुण्डी
(राजपूताना)
२१।१।३१

प्रिय भगवती,

शुभाशीष।

मेरा पिछला पत्र मिल गया होगा और आशा है तुमने उस पर ध्यान भी दिया होगा। हम सब लोग यहाँ अच्छी तरह हैं; यों तो शरीर है, एक न एक झगड़े लगे ही रहते हैं। यह जानकर सन्तोष हुआ कि तुम्हारे इलाज का प्रबन्ध प्रयाग में हो गया है। तुम इस व्यवस्था से पूरा-पूरा लाभ उठाना। ऐसा न हो कि रोग जड़ से अच्छा न हो और अपनी लापरवाही से फिर तुम थोड़े दिनों बाद बीमारी के लक्षण पैदा कर-करके लोगों की चिन्ता बढ़ा दो। सदा अपने स्वास्थ्य का ध्यान रक्खो क्योंकि तन्दुरुस्ती से बढ़कर स्त्री का सच्चा मित्र दूसरा नहीं।

अभीतक मैं तुम्हें विवाह तथा उससे सम्बन्ध रखने वाली अनेक बातों के सम्बन्ध में दस पत्र लिख चुका हूँ। यों तो जीवन का कोई एक निश्चित रास्ता नहीं है जिस पर चलने से सब-कुछ सहज ही मिल जाय पर इन पत्रों में मैंने जितनी बातें लिखी हैं उनका पालन करने से निश्चय ही प्रत्येक बहन योग्य गृहणी बन सकती है।

असली सुख कहाँ है ?

इस बात में बहस की गुँजायश नहीं कि दुनिया में प्रत्येक स्त्री-पुरुष सुख चाहता है। किन्तु इस प्रबल इच्छा के होते हुए भी सुख बहुत ही कम लोगों को मिलता है। इसके दो कारण हैं। एक तो यह कि ज्यादातर आदमी ठीक-ठीक यह नहीं समझते कि असल में वे चाहते क्या हैं; न उन्हें यही ज्ञान रहता है कि सुख कैसे मिलेगा और कहाँ तथा किन वस्तुओं में उसकी खोज करनी चाहिए। दूसरे यह कि जो लोग इन बातों को थोड़ा-बहुत समझते हैं वे भी सुख की कीमत चुकाना नहीं चाहते। वे चाहते हैं कि उन्हें हलवा ही हलवा मिल जाय पर कोयलों से हाथ न काले करने पड़ें, न उसके लिये हाथ-पैर हिलाना पड़े। बहुत-से लोग दुनियाँ की बाहरी वस्तुओं, घर-द्वार, कपड़े-लत्ते, शान-शौकत, खान-पान और शारीरिक सुविधा की जो बहुत-सी चीजें संसार में दिखाई पड़ती हैं उन्हीं में सुख समझकर उनके लिए व्याकुल हैं और पागल बने फिर रहे हैं। इनकी हालत उस हिरन के समान है जिसकी नाभि के नीचे—पेट में कस्तूरी भरी है पर वह इसे न जानकर उस सुगन्ध की खोज में यहाँ-वहाँ विक्षिप्त-सा घूमता-फिरता है। भगवती, तू इस बात को अच्छी तरह गाँठ

बाँध ले कि सुख कहीं बाहर नहीं है; वह सन्तोष की एक अवस्था का नाम है जो अपने ही अन्दर प्राप्त हो सकता है। यदि मनुष्य इसे समझ ले तो उसके बहुत-से दुःख एवं कष्ट जो उसी के पैदा किये हुए हैं, अपने-आप मिट जायँगे और वह स्थिर चित्त से सच्चे सुख के अमृत को पीकर तृप्त हो जायगा।

इसलिए पहले तो तुम यह याद रक्खो कि तुम्हें दुनिया में सिवाय तुम्हारे दूसरा कोई शान्ति नहीं दे सकता। दूसरे लोग उस शान्ति को, उसके स्वाद को, उसके सुख को बढ़ा-घटा भर सकते हैं लेकिन उसका बीज बोना और उसे अपने हृदय के अमृत से सींचकर लहलहाते पोधे के रूप में अपने जीवन की मिट्टी में, उसको छाती पर ला खड़ा करना तुम्हारा काम है। इसे दूसरा कोई, चाहे पति हों, चाहे भाई-बहन हों, चाहे माता-पिता हों, नहीं कर सकता।

तुम सवाल कर सकती हो कि इस प्रकार का मन का सुख किस तरह प्राप्त किया जा सकता है ? इसके लिए पिछले पत्रों में, और विशेषतः नवें-दसवें में, मैं बहुत-सी बातें लिख चुका हूँ। पर सब से मुख्य बात यह है कि जो आदमी सुख-सन्तोष का जीवन बिताना चाहे उसे सदा अपनी दिन पर दिन एक के बाद एक निकलकर सामने आने और कभी समाप्त न होने वाली इच्छाओं और वासनाओं को दबाकर रखना चाहिए। मनुष्य की अभिलाषाओं का अन्त नहीं है। यदि वे सदा पूरी होती जायँ तो भी सैकड़ों जिन्दगियाँ खत्म हो जायँगी और उनकी गिनती में कमी न आवेगी। इसलिए जो लोग अपनी इच्छाओं पर क़ाबू

न रखकर उनकी पूर्ति करने के लिए मारे-मारे फिरते हैं वे कभी एक चीज लेकर आराम से नहीं बैठते; सन्तोष और शान्ति क्या चीज है, इसे वे कभी अनुभव नहीं करते। उनकी जिन्दगी सदा हाय-हाय करते बीतती है; एक न एक कमी का रोना लगा रहता है। कभी यह नहीं है, कभी वह नहीं है! एक चीज मिली कि झट दूसरे की जरूरत पड़ जाती है। ऐसे स्त्री-पुरुषों को, चाहे उन्हें कुबेर का खजाना भी मिल जाय, कभी सुख प्राप्त नहीं होता। सुख सिर्फ उन लोग को मिलता है जो दुःख में, कष्ट में, अभाव में भी हँसते-हँसते अपने दिन बिता देने की दृढ़ इच्छा करके जीवन के रास्ते पर चल सकते हैं। जो लोग अपनी इच्छाओं को, अपनी अभिलाषाओं और दुनिया के बहुत तरह के रंग-बिरंगे प्रलोभनों को अपने अन्दर बढ़ने नहीं देते और जब जिस स्थिति में पड़ जायँ उसी में शान्ति का अनुभव करते हैं उन्हीं को सुख मिल सकता है। बहुत-से पुरुष ऐसे हैं जो अपनी मूर्खता से अपने को दुनिया की अनेक अनावश्यक और दो घड़ी झूठा सुख देकर नष्ट हो जाने और जीवन को पहले से भी दुखी एवं पतित बना देने वाली एक न एक चीज के पीछे सदा पागल रहते हैं! आज चाहे जैसे हो हजारों रुपया प्राप्त करने के सपने हैं तो कल पार्टियाँ दे-देकर बड़े लोगों से जान-पहचान करने की धुन समाई है; आज पुत्र की प्राप्ति के लिए बड़ी-बड़ी औषधियाँ खोजी जा रही हैं तो कल उस पुत्र को पढ़ा-लिखाकर बैरिष्टर बना देने का भूत सिर पर सवार है! बँगले बन रहे हैं; दिवाले निकाले जा रहे हैं; नाच-मुजरे हो रहे हैं; कभी-

कभी क्लबों और प्लेटफ़ार्मों (सभा-मंचों) से स्त्रियों के उद्धार के उपदेश दे दिये जाते हैं और साथ-साथ चाय-अण्डा, ब्राण्डी तथा सिगरेट के धुएँ के बीच देश की ज़लील एवं गिरी हुई सामाजिक अवस्था का भी 'बे आसूँ का रोना' रो दिया जाता है; इस रोने-गाने को अखबारों में छपाने का शौक़ भी चर्राता है और टकों के बल से बड़े-बड़े अख़बारों में वह तीन-चौथाई पानी मिले दूध का-सा स्वाद देने वाली स्पीच छप जाया करती है। दल-बंदियाँ होती हैं, कहीं कौंसिल का चुनाव है; कहीं म्युनिसपलटियों के सुधार के लिए पागल हो रहे हैं ! उसमें विवाद हो रहे हैं; एक-दूसरे पर कीचड़ उछाला जा रहा है ! ऐसी-ऐसी बातें छापी जा रही हैं जो निराकार ब्रह्म की तरह अभीतक अदृश्य थी पर पृथ्वी का भार हलका करने के लिए मानों पुर-परिजन सहित अवतार लेने लगीं हैं ! इस तरह अपने जीवन की छोटी-छोटी अभिलाषाओं की पूर्ति में अधिकांश पुरुष पागल-से हो रहे हैं। उन्हें जीवन में शान्ति और सुख क्या मिलेगा ? जैसे एक क्षण खड़े होकर शान्ति के साथ विचार करने और जीवन का रास्ता निश्चित करने की उन्हें फुर्सत नहीं है। जैसे शराबी या अफीमची या किसी और नशे के गुलाम को उसके बिना चैन नहीं वैसे ही जीवन के इन अशान्त और तूफ़ानी झकोरों के बीच अस्थिर-से ये पुरुष घूम रहे हैं ! इनमें से बहुत-से जो समझदार हैं, योग्य हैं; विद्वान् और विवेकी हैं समझकर भी कहते हैं, क्या करें भाई अब तो इसमें पड़ गये। वे वैसा इसलिए नहीं करते कि शांतिपूर्ण ऊँचा जीवन बिताने के लिए उसकी कोई ख़ास जरूरत है बल्कि इसलिए करते हैं कि

दुनिया में बड़े-बड़े प्रतिष्ठित लोग इसी को अच्छा समझते हैं। ऐसे आदमी सच्चा सुख कभी नहीं पा सकते क्योंकि वे प्रवाह में बहने वाले जीवों के समान सदा इधर-उधर टकराते रहते हैं। ये घर का भी सुख नहीं भोग सकते; कुटुम्ब उनके लिए एक होटल के समान है जहाँ भोजन किया और रास्ता लिया तथा समाज के इर्ष्या-द्वेष एवं दंभमय जीवन को, अपनी मानवी भावनाओं एवं परहित-कातरता के कारण वे छोड़ नहीं सकते। अभिलाषाओं के झकोरों में उनका संघर्षमय जीवन बीत रहा है। यह हालत आजकल के युवकों की खास तौर से हो रही है और इसका वर्णन नीचे की कुछ पंक्तियों में श्री रामनरेश त्रिपाठी ने अपनी 'स्वप्न' नामक कविता-पुस्तक में बहुत ठीक किया है—

भोग नहीं सकता हूँ गृह सुख,
भूल नहीं सकता हूँ पर दुख।
अकर्मण्यता से डरता हूँ,
जाता हूँ जब हरि के सम्मुख॥
जीवन का उपयोग न निश्चित
कर पाया दुविधा वश अबतक।
यौवन विफल जा रहा है यह
जैसे शून्य सदन में दीपक॥

जहाँ अधिकांश पुरुषों की यह हालत है; वे कभी एक चीज पर सन्तोष करके, भगवान् के चरणों में विश्वास रखकर सीधा-सादा घरेलू जीवन बिताने और उसी में जीवन की सच्ची शान्ति एवं सुख पाने से विरक्त हैं; वहाँ बहुत-सी बहनों में भी तरह-तरह

की इच्छायें एक पर एक, नई-नई कोपलों की तरह, फूटती और बढ़ती जाती हैं ! उनका चित्त स्थिर नहीं ; कभी उनको इस की शिकायत है कि मैं घर-गृहस्थी का काम करते-करते मरी जा रही हूँ। मजदूरनी या सहायता करनेवाली किसी स्त्री के आजाने पर यह शिकायत खड़ी हो जाती है कि वह तो मेरे काम को और भी बिगाड़ देती है। कभी वह सन्तान न होने से दुःखी है तो कभी बच्चों के होने पर उन्हें रात दिन सरापा करती हैं कि ऐसे बच्चे न होते तो अच्छा था ! कभी लड़के का व्याह करने और पतोह का मुँह देखने की अभिलाषा होती है तो कभी उसके घर में आ जाने पर रात-दिन शिकायतों और दोषों का रजिस्टर खुला रहता है कि वह तो रानी बनकर आई है; मेरा भी व्याह हुआ था पर मैं तो ऐसी निर्लज्ज न थी; मूरत-सी बनी बैठी रहती है मानो मैं इसकी लौंडी हूँ। पतोहू के ज्यादा काम-काज सँभालने पर यह बात निकलती है कि अब मेरा इस घर में क्या रह गया ? मेरी बात कौन पूछता है; जमाना ही ऐसा है; कलियुग है न ! मानों स्वयं खास राम-राज से, हजारों वर्ष का अंतर लाँघकर, बेचारी पतोहू को उपदेश देने के लिए ही सिधारी हैं ! कभी किसी खास तरह के गहने की लालसा है; कभी फीरोजी साड़ी की धुन है; कभी किसी स्त्री का 'एयरिंग' अच्छा लगता है; कभी किसी के चंद्रहार को अपनाने की इच्छा होती है ! इस तरह की अनेक इच्छाओं को बढ़ाते-बढ़ाते उनका जीवन असंतोषमय, चिड़चिड़ा और सदा के लिए दुखी हो जाता है ! और जब अपनी सब इच्छाये पूरी भी हो जाती हैं; अपने घर को

सुधार लेती हैं, अपने कुटुम्ब का 'उद्धार' कर लेती हैं तो दूसरों की चाल-ढाल देखदेखकर उनका दिल सुलगता है ! दूसरों के घरों को सुधारने एवं उनका बोझ हलका करने के लिए, आलोचना एवं छान-बीन शुरू हो जाती है ? ऐसी स्त्रियों को जीवन में क्या सुख मिलेगा ? क्या शान्ति प्राप्त होगी?

इसलिए यदि तुम सच्चा सुखी जीवन बिताना चाहती हो तो पहले अपने मन में बहुत ही थोड़ी और अच्छी इच्छाओं को स्थान दो । उन इच्छाओं के अंदर भी अपनी अपेक्षा दूसरों की भलाई की भावना अधिक हो । इतने पर भी सदा इस बात के लिए तैयार रहो कि यदि वे इच्छायें पूरी न हुई तो भी तुम्हें उसकी चोट न लगेगी, न तुम्हारे उत्साह, काम और रंग ढंग में अंतर पड़ेगा । अपने मन पर संयम—काबू—रखकर थोड़े में सन्तुष्ट हो जाने और जो-कुछ मिले उसके लिए भगवान् को हृदय से धन्यवाद देने की आदत डालो । दुःख में भी सोचकर सन्तोष करो कि दुनिया में तुमसे भी दुखी लोग मौजूद हैं ।

इसके लिए सबसे अच्छा उपाय यह है, और उसे मैं पहले भी किसी पत्र में लिख चुका हूँ कि सदा अपने को काम में लगाये रक्खो । अपने को काम में इतना लिप्त रखना चाहिए कि दुःख-सुख और विशेषतः दुःख का अनुभव करने, उसपर विचार और छान-बीन करने या अपने अभावों पर रोने एवं दुखी होने का समय ही न मिले । संसार में तन-मन से भूलकर, एक दिल होकर काम करने से बढ़कर कोई सुख नहीं है । इससे मन सदा दुःख एवं अनेक तरह की व्यर्थ की चिन्ताओं एवं झूठी

और द्रौपदी के चीर की तरह बढ़ती जाने वाली अभिलाषाओं से बचा रहता है। निकम्मे रहकर चिन्ता का बोझ बढ़ा लेने से हृदय दुर्बल होता जाता है और फिर ऐसे बहन-भाई निराशा के सागर में इस तरह डूब जाते हैं कि उनसे दुनिया में कोई बड़ा काम होने की आशा नहीं की जा सकती। वे फिर न केवल दूसरों के लिए, घर एवं कुटुम्बवालों के लिए वरन्‌ धीरे-धीरे अपने लिए भी भार-रूप हो जाते हैं !

सुखी होने के लिए दूसरा रामबाण उपाय हर एक अवस्था में संतोष करना है जिसकी चर्चा मैं ऊपर भी कर चुका हूँ ! यदि तुम सुख चाहती हो तो जिस अवस्था में तुम हो उसी में तुम्हें सुख का अनुभव करना चाहिये। दूसरों की ओर देखकर अपने दुःख से उनके सुख की तुलना करने एवं असन्तोष का भाव हृदय में उत्पन्न करने से संभव है तुम वह अवस्था प्राप्त कर लो पर इससे तुम्हें सुख-सन्तोष तथा शांति नहीं मिलेगी। दूसरे के मालपुए और रेशमी साड़ी की ओर न देखो; अपनी रूखी-सूखी रोटी और खादी या गजी की साड़ी पर प्रसन्न और सन्तुष्ट रहो। दूसरे क्या पहनते-ओढ़ते हैं; क्या खाते-पीते हैं इसकी ओर ध्यान न दो। अपने सुख के लिए दूसरों की ओर न देखो और न दूसरों की-सी सुविधायें प्राप्त करने की चिन्ता में इतनी डूब जाओ कि वे चीजें भी न मिलें और वर्तमान जीवन का तुम्हारा सुख भी नष्ट हो जाय। सुख से भविष्य का कोई सम्बन्ध मत रक्खो; यह न सोचो कि आगे मुझे ऐसा सुख मिलेगा, वैसा सुख मिलेगा। जिस अवस्था में हो, उसी अवस्था

में सुख ढूँढ़ो और अनुभव करो। दुनिया में अपने या दूसरों के मन में झूठी महत्वाकांक्षा जगाकर जीवन की शान्ति नष्ट कर देने के समान कोई पाप नहीं है। असली सुख अपने को छिपाकर रखने, चुपचाप अपना बलिदान करने और आत्म-विसर्जन करने में है। यह कभी मत सोचो कि तुम्हारा बड़ा नाम हो या तुम समाज या देश की बड़ी सेविका बन जाओ। ये भी बुरी बातें नहीं है, पर भगवान् के चरणों में अपने को चढ़ाकर, उसकी इच्छाओं पर छोड़कर, निर्मल, शांतिपूर्ण और पवित्र जीवन बिताने की इच्छा इससे कहीं ऊँची है; क्योंकि मनुष्य के जीवन का यही उद्देश्य है।

आजकल ज्यादातर लोग, स्त्रियाँ भी और पुरुष भी, समाज में, यह समझते हैं कि विवाह का मतलब भोग-विलासमय जीवन बिताना है। हजारों वर्षों के संस्कार के कारण विवाह में शारीरिक वासनाओं की पूर्ति के भाव को हम लोग प्रधान मानने लगे हैं। जरा लड़की बड़ी हुई कि चारों तरफ से आवाज आने लगती है—'राम-राम ! लड़की इतनी सयानी हो गई और इसकी कोई रोक-थाम और खोज-फिक्र करने वाला नहीं है।' कोई-कोई तो निर्लज्जता-पूर्वक यहाँ तक भी कह देती हैं कि 'इस उम्र में तो मैं दो लड़कों की माँ हो गई थी।' इन बातों के अन्दर विवाह को वासना-पूर्ति का साधन समझने की भावना प्रधान है। लोगों के हृदय में यह भावना बहुत दूर तक घर कर गई है। अभी जब मैं विवाह के बाद काशी से, तुम्हारी भाभी को लेकर यहाँ आया तो आने के बाद शीघ्र ही पुस्तक लिखने में लग गया। इससे मेरा बाहर निकलना एवं शहर में जाना तक बंद हो गया। 'त्यागभूमि' के बंद हो जाने

के कारण भी शहर में जाने की जरूरत नहीं पड़ती। एक दिन एक मित्र मिले; बोले—"ओहो! अब तो आपके दर्शन ही दुर्लभ हो गये! क्यों आजकल क्या करते हैं?" फिर मानों मेरे उत्तर का रास्ता न देखकर अपने संस्कारों को, बदहजमी की मिठाई की तरह, झट उगल दिया—"हाँ, अब आप बाहर क्यों निकलेंगे?" इन दिल्लगी के शब्दों के पीछे जो भाव था उससे इस भाई पर मुझे क्रोध भी न आया; उसकी बुद्धि पर दया और उसके संस्कारों पर तरस आ गई! मानों विवाह कभी समाप्त न होनेवाला विषय-वासनाओं का खेल-मात्र है!

हरएक बहन और हरएक भाई सदा याद रक्खे कि विवाहित जीवन बहुत ही ज़िम्मेदारी का जीवन है। इसमें प्रत्येक विषय में संयम रखना पड़ता है; यह उच्छृंखलता और निस्सार दलीलों एवं दिल्लगियों का जीवन नही है। निश्चय ही इस तरह की भावन का कारण समाज में दिन-दिन बढ़ने वाली भोग की प्रवृत्ति है। पुरुष चंचल और अतृप्त-से, नाना प्रकार के प्रलोभनों और आडम्बरों में फँसकर विवाहित जीवन को दिन पर दिन विषयी एवं कामुकतापूर्ण बनाते जा रहे हैं। स्त्रियां जो उनसे ज्यादा संयमी और वफ़ादार हैं, अपने पति-पूजा के संस्कारों के कारण बिना विरोध किये अपने पतियों की तृप्ति के लिए अपने स्वास्थ्य और सौन्दर्य की बलि चढ़ाती जा रही हैं।

जहाँ एक ओर समाज में विवाहित जीवन को भोग-विलास का साधन बना लिया गया है वहां दूसरी ओर देश में एक ऐसा भी छोटा-सा दल उठ खड़ा हुआ है जो विवाहित जीवन से

शारीरिक भावनाओं एकदम निकाल देने पर तुला हुआ है। महात्मा गांधी एवं टाल्स्टाय की शिक्षाओं ने इस प्रकार के विचार को उत्तेजना दी है और बहुत से लोग तो विवाह के उच्च आध्यात्मिक रहस्य को भूल कर उसे जीवन की कमजोरी समझने लगे हैं। कुछ लोग ऐसे भी हैं जो पति-पत्नी के सम्बन्ध को एकदम भाई-बहन-जैसा बना देने के लिए चिन्तित हैं। मैं मानता हूँ कि यह पहले प्रकार के भोग-विलासमय जीवन के प्रति एक प्रकार की बग़ावत, एक प्रकार का विद्रोह है! यह दूसरी अति है! मैं मानता हूँ कि इस तरह की शिक्षा का प्रचार करना साधारण मनुष्य का काम नहीं है। ये बातें दिमाग़ की असाधारण अवस्था (अबनार्मल माइण्ड) की उपज हैं इसलिए गृहस्थ-धर्म में इनका एकमात्र अर्थ यही हो सकता है कि हमारा जीवन हर हालत में संयमपूर्ण होना चाहिए और भोग-विलास तथा शरीर के सुखों में इस प्रकार लिप्त न हो जाना चाहिए कि शरीर और मन दोनों की अवस्था खराब होती जाय और ऊँचा उठने की जगह हम जीवन की लड़ाई में बिल्कुल निकम्मे और कमजोर साबित हों।

संयम का अर्थ अभाव नहीं है इसीलिए संयम का अर्थ वैराग्य भी नहीं है। संयम का अर्थ इतना ही है कि हमारी अभिलाषायें इतनी न बढ़ जायँ कि वे सुख देने के बदले हमारे लिए बोझ बन जायँ; संयम का यह मतलब है कि हम शरीर के विषय-भोग में इतने न पड़ जायँ कि उसी के गुलाम बन जायँ; मन पर उसी का अधिकार हो जाय। बस इससे ज्यादा संयम का

गृहस्थ-जीवन के लिए कोई अर्थ नहीं है। इस अर्थ के साथ सारे संसार के जीवों में सम-बुद्धि से एक ही चीज़ को देखना यह तत्वज्ञान की अन्तिम अवस्था में ही हो सकता है; उस समय देश-काल और व्यक्ति सबके भेद-भाव मिट जाते हैं। उस समय निश्चय ही पति-पत्नी, भाई-बहन, माता-पुत्री में कुछ अन्तर नहीं रह जाता। उस समय चाण्डाल और पण्डित में कोई अन्तर नहीं रह जाता। ऐसे तत्वज्ञानी के लिए तो महात्मा गांधी और एक साधारण आदमी दोनों में कोई अन्तर नहीं रहता। पर यह बात तभी हो सकती है जब हम दुनिया के प्रत्येक कर्म से अलग हो जायँ क्योंकि इच्छाओं से ही कर्म का जन्म होता है और कर्म से ही आशा, उत्कण्ठा और अभिलाषाओं का जन्म होता है। यह संसार में रहने वाले साधारण जनों के लिए नहीं है बल्कि उनके लिए अनुचित है। जो बात एक ऊंची अवस्था के लिए ठीक हो वह एक नीची अवस्था के आदमी के लिए भी हितकर साबित होगी, यह बिल्कुल ग़लत धारणा है।

इसलिए मेरी समझ से महात्माजी या टालस्टाय या हमारे पूज्य ऋषि-मुनियों की संयम की शिक्षा का मतलब यह नहीं है कि विवाहित जीवन में पति-पत्नी एक-दूसरे को भाई-बहन मान लें। ऐसा कहना भी उस विशेष भाव के साथ अन्याय करना है जिसको लेकर हमारी अनेक माताओं ने हँसते-हँसते चितारोहण किया है। ऐसा कहने में पत्नीत्व का भी अपमान है और बहन शब्द के अंदर जीवन की जो स्मृतियाँ, जो रक्त-मांस की अभिन्नता और पवित्रता छिपी रहती है उसका भी अपमान करना है। कोई भी

पति-पत्नी चाहे उनका जीवन कितना ही निवृत्तिमय हो; चाहे उनके मन में शरीर-भोग की भावना न उठे पर पत्नीत्व और पतित्व के उस विशेष भाव से अलग होकर भगिनीत्व और बन्धुत्व के भाव में अपने को नहीं ला सकते जो विवाह के संस्कार के साथ उनके मन में जीवन-भर के लिए उदय हो जाता है। किसी स्त्री के मन में, चाहे अस्सी वर्ष की हो जाय और उसमें शरीर-सुख की शक्ति और भावना बिल्कुल न रह गई हो, पति को भाई समझने का भाव उदय ही नहीं हो सकता; न किसी पति के मन में यह बात उदय हो सकती है। कुवासनाओं से हीन हो जाने की अवस्था में भी, जीवन-भर, पति के लिये पत्नी पत्नी ही रहेगी और पत्नी के लिए पति पति ही रहेगा।

कोई भी सिद्धान्त या धर्म जो मनुष्य की आकाँक्षाओं और मन की स्वाभाविक गति को देखकर नहीं बनाया जाता अधिक दिन तक टिक नहीं सकता। जो लोग अवसर देखकर उसे स्वीकार भी कर लेते हैं वे या उनके बाद आने वाले उसके मन-माने अर्थ लगाकर और उसमें मनोनुकूल छूट की बातें खोजकर उसे न केवल अव्यावहारिक सिद्ध कर देते हैं वरन् उसका दुरुपयोग भी करने लगते हैं। इसलिए सबका ख़्याल करके, सबके आचरण-योग्य सिद्धान्तों का बनाना बड़ी ऊँची बुद्धि और अनुभव का काम है। आज जो बातें कही जा रही हैं, हमारे प्राचीन ग्रन्थों में उन सबका वर्णन आया है और ऐसा मालूम होता है कि ये सब प्रयोग बार-बार हमारे यहाँ किये जा चुके हैं किन्तु निष्फल होने पर छोड़ दिये गये! उसके बाद आश्रम-धर्म

की व्यवस्था की गई। नियमित समय तक ब्रह्मचर्य और विद्याध्ययन; उसके बाद नियमित समय तक गृहस्थजीवन और विद्या का व्यावहारिक उपयोग, फिर निश्चित समय तक वानप्रस्थ और निवृत्ति का अभ्यास और फिर कार्यों एवं आकांक्षाओं का त्याग करके संन्यास और आत्म-चिन्तन। इस प्रकार जीवन बिताने की प्रणाली से शरीर, मन और आत्मा तीनों का विकास होता था। इस व्यवस्था की रचना करने वाले ऋषिगण यह जानते थे कि सदा चलने वाला धर्म कभी अति-धर्म नहीं हो सकता; वह संयमपूर्ण साधारण जीवन ही हो सकता है। इसलिए अवस्था के अनुसार अपने-अपने समय में प्रत्येक आश्रम को महान् बताया गया है। ब्रह्मचर्य-आश्रम जड़ के समान, गृहस्थ तने के समान, वानप्रस्थ छायादार और थकावट दूर करने वाली डालियों के समान और संन्यास फूल-फल के समान है जिसपर सारे मनुष्यों का अधिकार हो जाता है, जन्म देने वाले वृक्ष का नहीं। इनका विकास क्रम से ही हो सकता है; एक के पहले दूसरे का नहीं। इस तरह हमारे धर्म में संयम के साथ भोग और त्याग दोनों की व्यवस्था है और वही ठीक भी है। इसीलिए भगवान् ने गीता में—

'युक्ताहार विहारस्य—'

अर्थात् "संयमित, योग्य आहार और विहार.................................से ही योग सिद्ध होता है", कहकर इस प्रकार के बीच के रास्ते को ठीक बताया है। दुनिया के अधिकांश विद्वान् समाजशास्त्रियों का कहना है कि हिंदू-धर्म के आश्रम-

विभाग से अच्छी और वैज्ञानिक समाज-व्यवस्था दूसरी नहीं है।

इसलिए हमारे-जैसे साधारण शक्ति के आदमियों के लिए सबसे अच्छा सिद्धान्त यही है जिसे गीता में भगवान् ने कहा है अर्थात् संयमपूर्ण आहार-विहार। याने आहार—भोजन हलका, सात्विक, थोड़ा और ठीक समय पर हो; इसी प्रकार भोग-विलास में बह जाना, उसी को प्रधान बना लेना अनुचित है। उसमें भी संयम की बहुत जरूरत है; उसकी मात्रा भी बहुत थोड़ी होनी चाहिए।

स्वास्थ्य की दृष्टि से भी स्त्रियों को विवाहित जीवन में संयम को स्थान देना चाहिए। आज प्रसूति-रोग, क्षय तथा अन्य नाशकारी व्याधियों से बहुत-सी स्त्रियाँ पीड़ित देख पड़ती हैं। अनियमित आहार और उच्छृंखल विषय-भोग ही इसका प्रधान कारण है। फिर सन्तान उत्पन्न होने में स्त्री के शरीर का सेरों खून कम हो जाता है क्योंकि उसी के शरीर के खून-मांस से बच्चे का शरीर बनता है इसलिए पुरुष को अनियमित विषय-लालसा से उसकी उतनी हानि नहीं होती जितनी स्त्रियों की होती है। इस दृष्टि से भी स्त्रियों को इस ओर ज्यादा ध्यान देना चाहिए।

विवाहित जीवन में केवल शरीर की वासना-तृप्ति में ही नहीं, अन्य बातों में भी स्त्री को संयम रखना चाहिए। बहुत बक-बक करना वाणी का असंयम है; आलस्य में समय खोना समय का असंयम है; फ़ज़ूलखर्ची धन का असंयम है! इन सब बातों से बचना और अपना समय सदा अच्छी बातों में लगाना चाहिए।

याद रक्खो दुनिया में यदि सबसे कम और सबसे मूल्यवान कोई चीज हमें मिली

है तो वह समय है। फिर भी यह एक आश्चर्य की बात है कि हम उसका सबसे ज्यादा दुरुपयोग करते हैं। यह न भूलो कि जो दिन आज बीत जायगा वह लाख सिर पीटने पर भी कल लौट-कर न आयेगा। इसलिए एक-एक मिनट का ध्यान रक्खो और केवल उन्हीं बातों में उसे खर्च करो जिनसे तुम्हारा जीवन दिन-दिन शान्त, सन्तुष्ट, सुखी, ऊँचा और संयमपूर्ण बने। यह जीवन भोग-विलास के लिए नहीं मिला है; न यह व्यर्थ की बातों में खोने के लिए मिला है।

आजकल जमाना कुछ अजीब-सा है। कौटुम्बिक जीवन को ऊँचा और मधुर बनाने की ओर तो किसी का ध्यान नहीं है पर समाज और देश को ऊँचा उठाने के लिए सभी चिल्ला रहे हैं। यह बात ऐसी ही है जैसे जड़ में पानी न डालकर पत्तियों को सींचना और यह आशा करना कि वे हरी-भरी हो जायँगी। समाज और देश-सेवा-व्रती भाइयों के मुँह से अकसर यह बात सुनी जाती है कि युवकों ने देश को ऊँचा उठाने की लड़ाई में कोई खास त्याग नहीं किया पर ये लोग यह कहकर मानों अपने ही रास्ते की भूल स्वीकार करते हैं। अरे, आपने अपने युवकों को इस योग्य ही कब बनाया? आपने अपने घरों को, अपने कुटुम्बों को सुधारने और ऊँचा उठाने, अपने घर के प्रत्येक भाई-बहन को गौरवमय बनाने का प्रयत्न कब किया? इसलिए जहाँ-जहाँ सफलता मिल भी जाती है वहाँ भी नाम के लिए, पद के लिए, अधिकार के लिए—या अन्य छोटे-छोटे स्वार्थों के लिए दलबंदियाँ

गृह-जीवन सब सुखों का मूल है।

होने लगती हैं; ईर्ष्या द्वेष, दम्भ और कलह का प्रचार होता है। एक ओर अपनी सफलता पर हम गर्व से फूले नहीं समाते पर दूसरी ओर क्षण भर के लिए यह नहीं सोचते कि इस प्रकार की झूठी सफलता की कितनी जबर्दस्त कीमत चुकानी पड़ती है। इसके कारण समाज में न जाने कितनी विषैली भावनायें भी फैल रही हैं। इसका नाम सफलता नही है; इसका नाम उन्नति नहीं है। और इसका कारण है कि जिस नींव पर हम अपनी दीवार खड़ी करना चाहते हैं वह खराब है और दुनिया के सामने अपनी भी एक इमारत खड़ी कर देने की जल्दी में हम उस नींव को सुधारने का धीरज धारण करना उचित नहीं समझते। जो कुटुम्ब या घर समाज की जीवन-शक्ति का सोता है; जिससे सारे समाज के भविष्य को बनाने या बिगाड़ने वाले भाई-बहन निकलकर दुनिया में जाते हैं उसमें सुधार करने, उसे प्रेमपूर्ण और मधुर बनाने, उसे स्वस्थ जल-वायु पहुँचाने का प्रयत्न आज कितने लोग कर रहे हैं? मैं देश की हित-चिन्ता में पड़े हुए या समाज-सुधार में रात-दिन बिताने वाले अपने अनेक ऐसे मित्रों को जानता हूँ जिनका घरेलू जीवन बहुत ही दुःखपूर्ण और अयोग्य है। पर अपनी धुन में वे इधर ध्यान कब देते हैं? बिहार के मेरे एक मित्र हैं जो इस समय एक प्रतिष्ठित नेता माने जाते हैं पर उनका गृह-जीवन बहुत दुःखपूर्ण है। वह घर से सदा भागते फिरते हैं। उन्हें शान्ति नहीं मिलती है। उनकी पत्नी अलग दुखी है; उनके माता-पिता अलग अपनी खिचड़ी पकाते रहते हैं। लड़के उच्छृंखल जीवन बिता रहे हैं। वह बेचारे हृदय में

बड़े दुखी हैं। कभी-कभी उनकी इच्छा होती है कि सब कुछ छोड़कर घर को आदर्श शांति-गृह बनाने की कोशिश करें और लड़कों का भविष्य हाथ में ले लें पर जो बोझ उन्होंने उठा रक्खा है उससे कुछ ऐसी आसक्ति हो गई है कि छूटती नहीं। आज देश में इस तरह के कुटुम्ब तीन-चौथाई होंगे जिनका समय और जीवन इस तरह बीत रहा है कि उनके, समाज के, देश के और मनुष्यता के विकास के लिए वे बिल्कुल निकम्मे और अनुपयोगी होते जा रहे हैं। परस्पर जैसा सम्बन्ध होना चाहिए वैसा नहीं है। स्त्री का सहधर्मिणी नाम बिल्कुल व्यर्थ-सा हो रहा है। पुरुष बाहरी दुनिया के कामों में इस तरह डूबते जाते हैं कि घर की उन्हें सुध नहीं। स्त्रियाँ मन-मारे दुःखी और उदास-सी घरों में पड़ी किसी तरह जीवन के दिन काट रही हैं। जो योग्य हैं, समझदार बहनें हैं, जिनके हृदय में पति-भक्ति की यथेष्ट मात्रा है वे पति को चिन्ता से मुक्त रखने के लिए अपने दिल के रोने को दिल में ही छिपाकर रखती हैं। वे रोते हुए दिल पर हँसी का परदा भी डालना चाहती हैं। पति के पूछने पर भी अपने दिल में अनुभव होने वाले अभाव की बात बहुत कम कहती हैं—इस लिए कि उनकी—पति की चिन्ता, उनका बोझ न बढ़ जाय। यह स्त्री का त्याग है; यह उसकी महानता है। पढ़ी-लिखी न होकर भी विवाह के तत्व को उसने पूरी तरह जीवन में मिला लिया है और विवाह के समय की जाने वाली प्रतिज्ञाओं का अर्थ न समझकर भी उसने उनका उससे कहीं अधिक पालन किया है जितना उन प्रतिज्ञाओं का मतलब है। दूसरी ओर सब-कुछ

समझने-बूझने की बुद्धि और करने की ताकत रखकर भी, इन प्रतिज्ञाओं के महत्त्व की व्याख्या करके भी, पुरुष—पति—अपनी पत्नी में अपने को मिला नहीं सकता है। वह पत्नी का उपयोग अन्य बातों के लिए करना चाहता है; उसकी दुनिया में पत्नी है पर और भी बहुत-सी बातें हैं पर पत्नी के लिए तो पति ही परम-धर्म है। वही उसकी दुनिया रूपी परिधि या गोलक का केन्द्र है। उसके लिए वह सब कुछ छोड़ सकती है—छोड़ती ही है पर पति जब वह अपनी पत्नी को बहुत प्यार करता हो तब भी उसके लिए—उसके सुख के लिए, उसकी तृप्ति के लिए बाहरी दुनिया को छोड़ना नहीं जानता। दुनिया के प्रलोभनों, संसार के सामने अच्छे रूप में प्रकट होने की इच्छा के आकर्षण के सामने वह बहुत कमजोर साबित होता है। अभी एक दिन पति-व्रत के माहात्म्य के सम्बन्ध में एक बहन से मेरी बातचीत हो रही थी। पुराणों में आई हुई सती नारियों की कथाओं में कितना दूध है कितना पानी है यह मैं नहीं जानता पर उसे मैं इस समय की स्त्रियों में एक आदर्श नारी समझता हूँ। वह बोली—"यदि मैं उन्हें किसी स्त्री के साथ दुष्कर्म करते अपनी आँखों से भी देख लूँ तो उनके प्रति मेरी भक्ति कम नहीं हो सकती; मैं उन्हें छोड़ने की कल्पना भी नहीं कर सकती। उनको वह देखें; मेरे लिए हर हालत में वह एक हैं!" इससे बढ़कर त्याग की, इससे ऊँचे भक्ति-भाव की कल्पना और क्या की जा सकती है? पर जहाँ उसने पति के लिए अपने सब सुखों का बलिदान कर दिया; उन्हीं को सुखी करने को उसने अपना परम धर्म माना वहाँ

पति महोदय ने उसके सुखों के लिए अपने कार्यक्रम में परिवर्तन करना, अपनी जीवन की धारा से ज़रा भी हटकर उसके लिए अपने सुख को छोड़ने का उदाहरण नहीं उपस्थित किया। यह पुरुष और स्त्री का अन्तर है।

इसलिए यद्यपि समाज की उन्नति का मूल आधार सुखमय, शान्त और सन्तुष्ट गृह-जीवन है और यह तभी हो सकता है जब पुरुष-स्त्री, पति-पत्नी दोनों एक दूसरे के अस्तित्व में अपने को मिला-देने, एक-दूसरे के अन्दर खो जाने की कोशिश करें। व्यक्ति और कुटुम्ब के अच्छा होने से समाज की उन्नति अपने-आप हो जायगी क्योंकि व्यक्तियों एवं कुटुम्बों के मिलने से ही समाज बनता है पर यदि व्यक्ति और कुटुम्ब को ऊँचा उठाये बिना समाज-सेवा की यूरोपीय प्रणाली का प्रचार किया जायगा तो समाज की भौतिक समृद्धि तो बढ़ जायगी पर व्यक्ति अर्थात् समाज का निर्माण करने वाले लोग दिन पर दिन गिरते और कमज़ोर होते जायँगे और स्वभावतः व्यक्तिगत और सार्वजनिक दो प्रकार के, और बहुत करके परस्पर-विरोधी जीवन बनते जायँगे जैसा कि आज भी हो रहा है। जहां व्यक्ति एवं कुटुम्ब की पवित्रता और उन्नति का भाव प्रधान रहता है वहाँ व्यक्तिगत और सामाजिक दोनों प्रकार का जीवन ऊँचा होता जाता है क्योंकि सामाजिक जीवन का अच्छा होना व्यक्तिगत जीवन पर निर्भर है न कि व्यक्तिगत जीवन का अच्छा होना सामाजिक जीवन पर। प्राचीन समय में भारत की उन्नति इसीलिए हुई थी कि हमारा उद्देश्य समाज सेवा उतना नहीं, आत्म-शुद्धि करके शांत एवं संयत जीवन बिताना था।

उसी से अपने आप समाज की सेवा हो जाती थी। जब समाज-सेवा का भाव प्रबल हो जाता है तो व्यक्तिगत जीवन के उत्थान की ओर से ध्यान हट जाता है और दूसरों की उन्नति के उपदेश में अपनी उन्नति का खयाल जाता रहता है; इससे समाज का भी पतन होता है। वह ऊपर से उन्नत और समृद्ध दिखाई देकर भी भीतर से निस्सार, खोखला और अशान्त रहता है। कहते हैं कि एक बार बीरबल की सलाह से अकबर ने एक बावड़ी खुदवाई; उसमें पानी नहीं था। उसने आज्ञा दी कि रात को सब लोग इसमें एक-एक घड़ा दूध छोड़ जायँ। रात को अँधेरे में प्रत्येक ने सोचा कि सब तो दूध छोड़ेंगे ही यदि मैं चुपके से एक घड़ा पानी डाल जाऊँ तो उतने दूध में क्या मालूम होगा? सुबह देखा गया तो बावड़ी पानी से भरी थी और एक घड़ा भी दूध का नाम न था।

समाज की भावना जहाँ प्रधान होती है वहां यही होता है। पर यदि लोगों ने केवल अपने कर्तव्य का ध्यान रक्खा होता तो बावड़ी दूध से भरी होती। इसलिए तुम इस बात को अच्छी तरह समझ लो कि गृह या कुटुम्ब समाज की सब प्रकार की शक्ति का सोता है; वह समाज, देश और मनुष्यता का मूल पोषण-गृह ('नर्सरी') है। जो आदमी एक आदर्श कुटुम्ब के, सुखमय शान्त गृहजीवन के विकास में अपना समय और अपनी शक्ति लगाता है वह निश्चय ही समाज की जड़ मजबूत करता और उसकी सच्ची सेवा करता है। इसलिए तुम सदा याद रक्खो सुन्दर, शान्त और सन्तुष्ट गृह-जीवन सब सुखों का मूल है। उसको मधुर

बनाना प्रत्येक भाई-बहन और विशेषतः प्रत्येक विवाहित स्त्री-पुरुष, पति-पत्नी का काम है। जबतक यह न होगा, न देश की सच्ची उन्नति होगी; न समाज को सच्चा रास्ता दिखाई देगा !

क्या यह शरीर का मोह है ?

जैसा मैं ऊपर लिख चुका हूँ आज समाज में अनेक ऐसी स्त्रियाँ हैं जिन्होंने पति की चिन्ता न बढ़ाने के खयाल से अपने मन के दुःखों को छिपा रक्खा है। पति जो पत्नी की सबसे बड़ी पूँजी है, यदि दुनिया के बाहरी कामों में ही लग जाय तो पत्नी के लिए सब-कुछ समझते हुए भी अनमनी रहना स्वाभाविक है ! मनुष्य में बुद्धि ही सब-कुछ नहीं है; हृदय भी कोई चीज है बल्कि बुद्धि से हृदय की शक्ति सदा जबर्दस्त होती है। और विशेषतः स्त्री के अन्दर जो पुरुष की भांति बुद्धि का देवता नहीं, हृदय की देवी है। ऐसी स्त्रियाँ यद्यपि पति के कार्यों, समाज एवं देश की उनकी सेवाओं से अपने अन्दर गौरव का अनुभव करती हैं फिर भी उनका ध्यान सदा पति की ओर ही लगा रहता है। अपने एक घनिष्ठ और आदरणीय बन्धु से एक दिन मैं स्त्रियों के हृदय की इस भावना के सम्बन्ध में बात-चीत कर रहा था तब उन्होंने कहा कि स्त्री की यह चिन्ता शरीर के मोह के कारण है। यदि हृदय मिल जाय और प्रेम ऊँचे दर्जे पर पहुँच गया हो तो ऐसा अनुभव करने की जरूरत नहीं। मुझे उनकी यह बात कोरी दलील-सी मालूम पड़ी। मैंने उनसे आदरपूर्वक कहा, ऐसी बात नही है। मनुष्य के दूर हो जाने या मरने पर विशुद्ध शारीरिक मोह के कारण ही दुःख नहीं होता। मनुष्य के हृदय में, बुद्धि

में, ज्ञान में जो कुछ प्रेम, नीति और अनुभव है उन्हें वह शरीर के द्वारा ही प्रकट कर सकता है। उसके पास जो कुछ है उसे प्रकट करने का एकमात्र साधन शरीर है। शरीर से ही वह देश की सेवा करता है; शरीर के साधन द्वारा ही वह ज्ञान देकर हमें ऊँचा उठाता है, बिना शरीर के वह जो कुछ है उसे न प्रकट कर सकता है, न उसका फायदा किसी को पहुँचा सकता है, इसलिए देही या शरीरधारी के पास न रहने पर उसके अन्दर जो कुछ अच्छा है उसका लाभ भी नहीं मिलता या बहुत-कम मिलता है। इसीलिए जिन्हें हम भक्ति करते हैं, जिन्हें प्रेम करते हैं, जिन्हें व्यक्तिगत या सार्वजनिक मामलों में अपना रास्ता दिखाने वाला समझते हैं उनके पास न रहने या दुनिया से कूच कर जाने पर जीवन में सूनेपन का, अभाव का अनुभव होता है। और इसीलिए जिसे हम प्रेम करते हैं, जिसकी अपने जीवन के लिए, अपनी उन्नति और विकास के लिए आवश्यकता समझते हैं उसके पास न रहने पर उसके अनुभव का, उसकी सहानुभूति और प्रेम का, उसकी बुद्धि और ज्ञान का लाभ नहीं उठा सकते; उसके न रहने पर या दूर चले जाने पर जैसे अपने जीवन की कमाई दूर चली जाती है। पत्नी पति को ही सर्वस्व समझती है इसलिए उसके लिए यह अनुभव होना स्वाभाविक है; इस दर्द को, इस अभाव को पुरुष, जिसके लिए दुनिया में सान्त्वना की, आशा की बहुत-सी जगहें हैं और जिसके पास और बहुत-से काम हैं, अपनी दलीलों के बल से समझ नहीं सकता!

इसलिए यद्यपि यह स्वाभाविक है कि जो स्त्री जितनी ही पति-भक्त होगी; पति को जितना ही अधिक प्रेम करती होगी वह उसकी अनुपस्थिति और अभाव का उतना ही अनुभव करेगी पर तुम बहनों को सदा यह सोचना चाहिए कि यह देखना, इसका ध्यान रखना और पत्नी को सब प्रकार सुखी एवं सन्तुष्ट रखना पतियों का कर्तव्य है। यदि वे अपना कर्तव्य पालन न कर सकें तो तुम लोग अपना कर्तव्य न भूलो। तुम्हारा कर्त्तव्य यही है कि जरूरत पड़ने पर पति के सन्तोष के लिए अपने उन सुखों का भी त्याग कर दो जिनपर न्यायतः तुम्हारा अधिकार है! पति के लिए, उसके दूर रहने पर, इस प्रकार की चिन्ता शरीर का मोह नहीं वरन् पतिव्रत और पति-भक्ति का ही अंग है।

खोया हुआ प्रेम !

विवाह की वेदी पर पति पत्नी के साथ जिस प्रतिज्ञा में बंधता है उसके अनुसार वह अपनी सहधर्मिणी को बहुत थोड़ा देता है। पत्नी उसे अपनी सारी स्वतंत्रता, अपना प्रेम, अपना शरीर, अपने प्राण—अपना सर्वस्व सौंप देती है; उसके बदले में पति—पुरुष—उसे क्या देता है? वह अपनी स्वतंत्रता अपने पास रखता है; वह अपनी दुनिया; अपने सिद्धान्त की रचना करने का अधिकार भी अपने पास रखता है। वह चाहता है कि मैं उस दुनिया में पत्नी को जिस जगह और जिस आसन पर बैठा दूँ वहीं बैठने में वह सन्तोष मानकर चुपचाप मेरी आराधना करती रहे; मुझे सब-कुछ मानकर मुझे प्रेम करे और जीवन के प्रत्येक विषय में मुझे ही अपना पथ-प्रदर्शक बनाये। इतनी साधना के बाद वह पत्नी

को इस योग्य समझता है कि कभी-कभी दुनिया के झंझटों से थोड़ा समय निकालकर उससे दो-चार मीठी बातें कर ले और प्रेम की लम्बी-चौड़ी व्याख्यायें करके उसे भुलाये रक्खे ! पति का यह थोड़ा-सा प्रेम ही पत्नी की वह सारी पूँजी है जो उसे इस तपस्या के कारण मिलती है। इस पूँजी के बल पर ही वह दुनिया को भूलकर केवल पति के लिए सब कठिनाइयाँ उठाती है। ऐसी हालत में स्त्रियाँ इस प्रेम को सुरक्षित रखने के लिए प्रयत्न करें या उसके इधर-उधर होने या डिंगने की आशंका से चिन्तित और दुखित हो जायँ तो यह बिल्कुल स्वाभाविक है।

पति के इस प्रेम को स्त्रियाँ बहुत सम्हाल कर रखती हैं पर पुरुष के जीवन में सब कुछ छोड़कर एक ही को आत्मार्पण करने की शक्ति बहुत कम—प्रायः नहीं-सी-होती है। उसका यह प्रेम भी सदा एकरस, एक-सा नहीं रहता। उसके मन में जब तूफ़ान आता है तो वह अपने को सम्हाल कर रख नहीं सकता—उसका वह असंयत प्रेम उसके अंग-अंग से फूटकर बह निकलता है ! पर उसके प्रेम का यह ज्वार, यह तूफान जब शान्त होता है तो वह अतृप्त-सा दुनिया के और कामों में अपने को भुलाने की कोशिश करता है। आरंभ का वह आकर्षण, वे प्रेमभरी बातें, कमजोर पड़ने लगती हैं। इसके विरुद्ध स्त्री आरंभ में अपने को बहुत छिपाती है। उसके हृदय में बहुत धीरे-धीरे उफान आता है और वह धीरे-धीरे एवं चुपचाप ही अपनी बलि चढ़ाना पसन्द करती है पर उसका दान फिर जीवन भर कभी समाप्त नहीं होता;

वह सदा देती ही रहती है। इधर जहाँ पुरुष का—पति का—उत्साह कम होता जाता है तहाँ उसका प्रेम दिन पर दिन गहरा और व्यापक होता जाता है।※

फ्रांस (यूरोप) के विश्वविख्यात लेखक अनातोल फ्रांस ने एक जगह बिल्कुल ठीक लिखा है—"स्त्री वादा नहीं करता पर पुरुष के लिए अपना सब कुछ निछावर कर देना है। पुरुष बहुत वादे करते हैं पर समय आने पर साफ मुकर जाते हैं।" इसलिए स्त्रियों की सारी आशा पति के उस थोड़े-से, कृपा करके दिये हुए प्रेम पर ही अवलम्बित है। इसके बिना उसका जीवन सूना हो जाता है। इसलिए बहन! विवाह होने के बाद तुम सदा इस बात का ध्यान रखना कि तुमसे कोई भी छोटे-से-छोटा ऐसा काम न हो जिससे पति के मन पर उसका खराब असर पड़े। पुरुष बहुत जल्द घबरा जाता है और एक बार जो प्रेम खो जाता है वह फिर लौटाया नहीं जा सकता! तुम्हें उसे बहुत सँजोकर रखना चाहिए। तुम्हारी जरा-सी गलती, जरा-सी दिल खट्टा करनेवाली बात तुम्हारे सारे जीवन को सूना कर दे सकता है। फिर चाहे न्याय तुम्हारे ही पक्ष में हो पर वर्तमान समाज में पति-पत्नी के सम्बन्ध की जो अवस्था है उसमें, तुम्हारा दोष न होते हुए भी, तुम्हें ही रोना और पछ-

---

※ भर्तृहरि ने सच्चे-झूठे स्नेह का वर्णन करते हुए लिखा है—

आरंभ गुर्वी क्षयिणी क्रमेण लघ्वीपुरा वृद्धिमती च पश्चात्।
दिनस्य पूर्वार्द्ध परार्द्ध भिन्ना छायेव मैत्री खल सज्जनानाम्॥

अर्थात्.........सच्ची मित्रता दो पहर के बाद बढ़ने वाली छाया समान पहले छोटी रहती है पर धीरे-धीरे बढ़ती जाती है।

ताना पड़ेगा ।

हमारे धर्म-शास्त्रों में विवाह का मुख्य उद्देश्य सन्तानोत्पत्ति है। विवाह में पाणि-ग्रहण के समय ही वर कहता है कि "तू सुखपूर्वक मेरे साथ रहकर उत्तम सन्तान उत्पन्न करने वाली हो।" इसमें संकोच की न कोई बात है, न बुराई है। विवाह को भोग-विलास का साधन न बनाकर समाज को, देश को, संसार को अच्छे युवक एवं अच्छी कन्यायें भेंट करने का साधन बनाया गया था। समाज के खयाल से तो सन्तानोत्पत्ति उचित है ही पर यदि मानसिक और आध्यात्मिक भावनाओं की दृष्टि से देखें तो भी यह मालूम होगा कि मनुष्य के अन्दर सन्तान की इच्छा स्वाभाविक है।

सन्तान की इच्छा स्वाभाविक है।

पहली बात तो यह है कि प्रत्येक मनुष्य के मन में अमर होने, अपने को सदा सुरक्षित रखने की भावना प्राकृतिक है। इसीलिए वेद में प्रार्थना है—

'मृत्योर्माऽमृतं गमय।'

अर्थात् "मुझे मृत्यु से अमरता की ओर ले चलो।" मनुष्य की प्रत्येक इच्छा, प्रत्येक चेष्टा और प्रत्येक भाव-भंगी एवं अंग-संचालन में अपने बचाव की प्राकृतिक क्रिया दिखाई पड़ती है। इसका मतलब यही है कि वह विनाश से, मृत्यु से बचकर अमर रहना चाहता है। लेकिन वह जानता है कि प्रत्येक शरीरधारी के लिए मृत्यु अनिवार्य है। जो पैदा हुआ है वह मरेगा। इसलिए वह खुद तो सदा जीता रह नहीं सकता पर अपने ही

रक्त-मांस से बना हुआ अपना एक रूप, अपना एक प्रतिनिधि दुनिया में छोड़ जाना चाहता है—कुल या वंश चलाने की भावना के अंदर यही बात है।

दूसरी बात यह है कि जब हम बच्चों के निर्मल जीवन को, उनके भेद-भाव-रहित-भावों को, उनके निर्दोष विनोद को देखते हैं तो स्वभावतः मन में आता है कि अहा ! इनका जीवन कितना सुन्दर, कितना निर्मल है ! दुनिया की कठिनाइयों एवं बुराइयों से ये दूर हैं। तब अपने लड़कपन के दिन याद आने लगते हैं; वर्तमान अवस्था में कठोरता और बनावट के अनुभव होने लगते हैं और मन में आता है कि क्या अच्छा हो, वे दिन फिर आ जायँ। किन्तु वे दिन आते नहीं, आ भी नहीं सकते, इसलिए सन्तान के, बच्चे के रूप में उन्हें लाने की भावना, कभी साफ़-साफ़ और कभी अस्पष्ट-सी, मन में उदय होती है। यह जीवन की आरम्भिक याद है जो बड़े होने पर संसार के परदे में छिप जाती है किन्तु बच्चों को देखकर, परदे को हटाकर बाहर झाँकने लगती है। हिन्दी की सुप्रसिद्ध महिला-कवि श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान ने 'मेरा नया बचपन' नामक एक कविता में इस भाव को बड़ी अच्छी तरह व्यक्त किया है। उन्होंने माता के हृदय की सच्ची भावनायें लिखी हैं। कविता बड़ी है, सबकी सब देना तो कठिन है पर कुछ अंश, जो प्रसंग के अनुकूल हैं, यहाँ देता हूँ—

बार-बार आती है मुझको
मधुर याद बचपन तेरी।

गया, ले गया तू जीवन की
सबसे मस्त खुशी मेरी ॥

× × ×

वह सुख का साम्राज्य छोड़कर
मैं मनवाली बड़ी हुई।
लुटी हुई, कुछ ठगी हुई सी
दौड़ द्वार पर खड़ी हुई ॥

× × ×

दिल में एक चु-भन-सी थी
यह दुनिया सब अलबेली थी।
मन में एक पहेली थी
मैं सबके बीच अकेली थी ॥
मिला, खोजती थी जिसको
हे बचपन ! ठगा दिया तूने।
अरे ! जवानी के फंदे में
मुझको फँसा दिया तूने ॥
सब गलियाँ उसकी भी देखीं
उसकी खुशियाँ न्यारी हैं।

॥
माना मैंने युवा काल का
जीवन खूब निराला है।
आकांक्षा, पुरुषार्थ, ज्ञान का
उदय मोहने वाला है ॥
किन्तु यहाँ झंझट है भारी
युद्ध क्षेत्र संसार बना।

[निर्मल बचपन

चिन्ता के चक्कर में पड़कर
जीवन भी है भार बना ॥
आजा, बचपन ! एक बार फिर
दे दे अपनी निर्मल शान्ति ।
व्याकुल व्यथा मिटाने वाली
वह अपनी प्रकृत विश्रान्ति ॥

× × ×

मैं बचपन को बुला रही थी
बोल उठी बिटिया मेरी ।
नन्दन वन-सी फूल उठी
यह छोटी-सी कुटिया मेरी ॥

× × ×

पाया मैंने बचपन फिर से
बचपन बेटी बन आया ।
उसकी मंजुल मूर्ति देखकर
मुझमें नवजीवन आया ॥
मैं भी उसके साथ खेलती
खाती हूँ, तुतलाती हूँ ।
मिलकर उसके साथ स्वयं
मैं भी बच्ची बन जाती हूँ ॥
जिसे खोजती थी बरसों से
अब जाकर उसको पाया ।
भाग गया था मुझे छोड़कर
वह बचपन फिर से आया ॥

इस प्रकार सन्तान की इच्छा अपने बचपन को फिर से लौटा लाने का भी एक प्रयत्न है। इन आध्यात्मिक और मानसिक कारणों के अतिरिक्त इसके व्यावहारिक कारण भी हैं। बात यह है कि विवाह के बाद पति ही पत्नी का एकमात्र सखा रह जाता है। वहीं से उसको सान्त्वना मिल सकती है; वहीं से सुख मिल सकता है। किन्तु पुरुष प्रायः संसार के अनेक प्रकार के काम-काज में अपने को ऐसा फँसा लेता है कि वह स्त्री को, सर्वदा साथ रखने या स्वयं साथ रहने की अपनी जिम्मेदारी को बहुत थोड़ी मात्रा में पूरी कर सकता है। इसलिये स्त्री को–पत्नी को—जीवन का एक सहारा ढूँढने की जरूरत मालूम पड़ती है! उसे एक ऐसी चीज़ चाहिए जिससे वह अपना मन बहला सके; जिसके लिए उसे अपने जीवन में स्फूर्ति और साहस लाने की आवश्यकता अनुभव करे; जिसपर वह अपनी ममता, दया, स्नेह इत्यादि कोमल भावनाओं को निछावर कर सके और जैसे वह पति पर निर्भर करती है वैसे ही कोई उस पर भी पूरी तरह निर्भर करने वाला हो; जैसे वह पति के बिना रह नहीं सकती, जैसे पति ही उसका सर्वस्व है, वैसे ही कोई उसकी भी उतनी ही आवश्यकता समझे; उसके बिना रह न सके। बच्चा ही वह वस्तु है जो इन भावों की भूख मिटा सकता है। इसके अतिरिक्त बच्चा पति-पत्नी के विवाहित प्रेम को दृढ़ करनेवाला बंधन भी है। इसीलिए पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में सन्तान की इच्छा अधिक प्रबल होती है। सन्तान माता की आशा है और उसके दिल की शान्ति है। आरम्भ से लेकर अन्त तक उसका जीवन कर्तव्यमय है। इस

कर्तव्यमय मरुभूमि में बच्चा ही वह हरियाली है जहाँ चलते-चलते थक जाने पर वह साँस लेती और थकावट दूर करती है। बच्चों का अभाव या उनका मूल्य पुरुष पूरी तरह समझ नहीं सकते। श्रीमती सुभद्राकुमारी ने गौरवमयी आत्म-तृप्ति के साथ लिखा है—

परिचय पूछ रहे हो मुझसे,
कैसे परिचय दूँ इसका ?
वही जान सकता है इसको,
माता का दिल है जिसका।

इसीलिए हिन्दू-धर्म में नारी के आदर्श की सफलता माता के रूप में प्रकट होने में मानी गई है। कन्या में बालापन की सरलता होती है; नारी में भोग-विलास की प्रधानता होती है; और माता में दया, ममता और वात्सल्य के भाव उमड़ते रहते हैं इसलिए माता, लड़की के समान ही पवित्र मानकर पूजा करने योग्य बताई गई है।

माता हो जाने पर नारी के त्यागमय जीवन का, उसकी मंगलमयी और सदा देने वाली मूर्ति का आदर्श पूरा होता है। सन्तानवती स्त्री के मन में जीवन के प्रति बहुत ही संयत और उच्च कोटि का भाव जाग्रत होता है। यह ठीक है कि बहुत-सी स्त्रियाँ माता होने पर भी माता नहीं बन पातीं और उस अवस्था में भी उनका रमणी रूप ही प्रधान रहता है फिर भी बच्चों के कारण स्वतः संयम का भाव जाग्रत होता है।

पर सन्तान-प्रेम का यह मतलब नहीं कि ढेर के ढेर बच्चे पैदा होते चलें। सन्तान उत्पन्न कर देने से ही माता-पिता का

कर्तव्य पूरा नहीं हो जाता। उनके पालन-पोषण, उनकी शिक्षा-दीक्षा की जबर्दस्त जिम्मेदारी भी उनपर पड़ती है। निर्बल एवं अयोग्य बच्चों की अपेक्षा एक सबल और होनहार सन्तान अधिक गौरव की बात है। फिर अधिक संतान की इच्छा असंयम और भोग-विलास का कारण बन जाती है। इसलिए प्रत्येक विवाहित बहन सदा यह ख़्याल रक्खे कि माता बन जाना तो सरल है पर माता की जिम्मेदारी और उसके पद के गौरव को संभालना बड़ा कठिन है।

व्रत और त्योहार

हिन्दू-धर्म में बहनों, बहुओं और माताओं के लिए अनेक प्रकार के व्रत इत्यादि रखने की व्यवस्था है। भाई के लिए, पति के लिए, पुत्र के लिए, भैयादूज, बट-सावित्री, दुर्गाष्टमी, पुत्रदा एकादशी इत्यादि व्रत स्त्रियाँ करती हैं। इनमें कुछ तो बड़े ही पवित्र व्रत हैं। जैसे भैयादूज, बट-सावित्री, हरतालिका इत्यादि। इनमें भाई की हित-कामना और प्रेम-पूर्ण सम्बन्ध को क़ायम रखने की भावना; पति-व्रत धर्म का महत्व और प्रभाव तथा पति के कल्याण की कामना भरी हुई है। यह भी स्त्री-जाति की उच्चता और महानता का सबूत है कि वह अपने भाइयों, पुत्रों और पतियों के लिए, उनके मङ्गल और कल्याण के लिए, धर्म की शरण लेती है; उपवास करती है; स्थिरचित्त से भगवान् को पुकारती है जब कि भाई, पुत्र और पति इन अबलाओं की रक्षा के लिए कोई भी ऐसी बात करते देखे नहीं जाते। इसीलिए जहाँ स्त्री पति को, बहन भाई को और माँ पुत्र को भगवान् की देन समझकर, हृदय के

अत्यन्त पवित्र और सुरक्षित स्थान पर बैठाकर श्रद्धा, ममता और वात्सल्यस्नेहवश अपने में दूर तक मिला लेती है वहाँ पुरुषों के लिए इन सम्बन्धों में और विशेषतः पत्नी के सम्बन्ध में सुविधा और उपयोगिता का ही भाव ज्यादा रहता है ।

आजकल, समय के साथ, अच्छी-बुरी सभी बातों से श्रद्धा उठती जाती है । तर्क करने, बहस करने की भावना बढ़ती जाती है और यद्यपि एक सीमा तक इसकी जरूरत है, पर यह भूल जाना ठीक नहीं है कि ऊँचे आदर्शों की स्थापना और इतिहास का निर्माण उन्हीं लोगों के द्वारा होता है जिन्हें अपने अन्दर, अपने काम के अन्दर अटूट विश्वास और श्रद्धा होती है । इस श्रद्धा से मनुष्य का मन कोमल, दूसरों के दुःख को समझनेवाला, अनुभवशील और नम्र होता है इसलिए उसमें अच्छी बातों की—धर्म की भावना बड़ी प्रबल होती है ।

त्योहारों का, व्रतों और उत्सवों का भी आजकल 'बायकाट' होता जा रहा है । यह सब एक प्रवाह में बिना तौले, बिना जाने बूझे बहते चले जाने की प्रवृत्ति है । एक ओर कट्टरों में धर्म की जो अन्धी और बुद्धिहीन व्याख्या दिखाई पड़ती है वही आजकल के बहुत 'सुधारकों' में भी पाई जाती है । जैसे कट्टरपन्थी प्रत्येक नई चीज को देखने ही नाक-भौं सिकोड़ते हैं वैसे ही नवीनपन्थी प्रत्येक पुरानी बात को तोड़ने पर तुले हुए हैं । इन दोनों की जीवन-धारा में विशेष अन्तर नहीं है । पहला दल प्राचीन के प्रति अन्धा है और जो स्वयं करता है बस उसी को ठीक सिद्ध करके दिखाना चाहता है और दूसरा दल नवीन के

प्रति अन्धा है, जो प्रत्येक नई बातको—नाचने से लेकर सिगरेट पीने तक हर एक बात को—ठीक कहकर पुरानों की हँसी उड़ाता है। दोनों की मनोवृत्तियाँ अन्धी, अमौलिक और गुलाम हैं। चाहिए यह कि जहाँ भी अच्छी बात हो, लेने के लिए हम सदा तैयार रहें।

इस दृष्टि से हमारे यहाँ बहुत-से त्योहार, व्रत और उत्सव ऐसे हैं जिनका भाव बड़ा पवित्र है। इनको रोकना नहीं चाहिए; हाँ, उनमें उचित सुधार करने और उन भावनाओं को जगाने की कोशिश करनी चाहिए जिनके लिए वे प्रचलित किये गये थे। हाँ, तुम्हें इन त्योहारों के बाहरी आडम्बरों में, जिनसे देव-पूजा की जगह पेट-पूजा अधिक होती है, न पड़कर केवल उनके भावों का अनुसरण करना चाहिए। त्योहारों का जाति के जीवन में बड़ा महत्व है। वे किसी खास और स्मरण रखने योग्य घटना की यादगार होते हैं। उस दिन उस घटना की चर्चा, आलोचना, विचार करना चाहिए और इसमें जो अच्छी बातें, अच्छे भाव हों उन्हें अपनाना चाहिए।

चिर-यौवना

ज्यों-ज्यों अवस्था बढ़ती जाती है स्त्रियों के मन में निराशा घर करती जाती है। एक दिन एक बहन को मैंने खाने को एक फल िया तो वह बोली—"भैया! अब तो मैं बूढ़ी हो चली; क्या मेरे इन चीजों को खाने के दिन हैं? (बच्ची को दिखाकर) उसे दे दो।" इस बहन की अवस्था पचीस वर्ष से भी कम है, जो जवानी की खास अवस्था है,पर इसके मुँह से ऐसी बात सुनकर मैं तो भौचक रह गया! इस

वाक्य में त्याग नहीं है; वैराग्य नहीं है; निराशा और दुःख अधिक है। आज कल हमारे देशको स्त्रियों का स्वास्थ्य, उमंग-उत्साह, सब कुछ बीस से तीस वर्ष की आयु के अन्दर ही चला जाता है। आज-कल जब हम एक तरफ २०-२२ वर्ष की युवती लड़कियों को देखते हैं और उनसे उनकी चालीस-पचास वर्ष की माताओं और पचास-साठ वर्ष की आयु की सासों को मिलाते हैं, जिनके उनके समान कई लड़के लड़कियाँ होती हैं,तो दिल में चोट-सी लगती है। सास और माँ भली-चंगी, स्वस्थ और उमंग वाली हैं और बहू या कन्या अपने पीले मुँह और दिन-दिन छीजते हुए शरीर को लिए अपाहिज और पंगु-सी हो रही हैं। आजकल की परदे से बाहर रहकर स्वस्थ जल-वायु का लाभ उठाने वाली स्त्रियों को आज से तीस वर्ष पहले ब्याही गई परदे में मकान की गन्दी चहारदीवारी के बीच रहने वाली स्त्रियों से मिलालो। इनकी शादी बहुत लड़कपन में दस-बारह की अवस्था में हुई थी; इन्होंने भोग-विलास का जीवन बिताया; सुधार की कोई भी सुविधा इन्हें नहीं मिली; बाज़-बाज़ के ८-८, १०-१० हृष्ट-पुष्ट सन्तानें मौजूद हैं फिर भी आज-कल की बहुत-सी लड़कियों और आये दिन रोगी रहने वाली बहुओं से इन्हें मिला लो। वे इनकी कलाई भी सीधी न कर सकेंगी? क्या यही उन्नति का मतलब है? सौ में पचहत्तर स्त्रियाँ आजकल स्त्री-रोगों की शिकार हैं। चाहिए तो यह था कि परदे के बाहर स्वस्थ जल-वायु में रहने के कारण, अधिक ज्ञान होने के कारण, ये पहले की स्त्रियों से अधिक स्वस्थ होतीं; पर बात बिल्कुल उलटी है। इससे समाज

की सारी संतति निकम्मी होती जा रही है । जब पहले की स्त्रियाँ पानी के पाँच-पाँच, सात-सात भरे घड़े लेकर चलती थीं आज की फैशनेबिल लेडियों के लिए हैण्डबेग भी भारी हो रहा है, अपने बच्चे तो इनसे सम्हलते ही नहीं । अपनी माताओं, बहनों और बेटियों की यह हालत देखकर रोना आता है। प्राचीन आर्य नारियों में बुढ़ापा जल्द सुना नहीं जाता था और जो अपने तेज से बहुत दिनों तक जवान और स्वस्थ रह सकती थीं, आज उनकी सन्तति की यह दशा है ! क्या राणा प्रताप और शिवाजी आजकल की शौकीन कामिनियों के गर्भ से पैदा हो सकते हैं ? क्या स्वामी रामतीर्थ और विवेकानन्द को यह बीस वर्ष में चश्मा लगाने वाली बूढ़ी लड़कियाँ जन्म देंगी ? क्या अर्जुन और भीष्म, याज्ञवल्क्य और वशिष्ठ, बुद्ध और शङ्कर को पिलाने योग्य पवित्र दूध इनकी छाती में है ? क्या ये उस सीता को जन्म देंगी जो अपने बायें हाथ से उस धनुष को उठाकर एक तरफ रख देती थी जिसे राम ने बड़े अभिमान से तोड़ा था ? क्या ये उस सावित्री को जन्म देंगी जिसने यम को मार भगाया था ? क्या ये तेज से भरी उस सती की माता होने योग्य हैं जिसने भरी सभा में पिता को अपने पति के अपमान के लिए फटकार कर अपने को आग की लपटों में भस्म कर दिया था ? या इनके गर्भ से वे राजपूतनियाँ उत्पन्न होंगी जो सतीत्व के लिए कटार मार कर अपना अन्त कर लेती थीं या अपने युद्ध-भूमि से भागे हुए पतियों को देखकर कह सकती थीं कि ये हमारे पति नहीं हो सकते, इन्हें दर्वाज़े के अन्दर न घुसने दो ?

आज या कल जब देश स्वतन्त्र होगा और उसकी गौरव-पताका फहरानेवाले युवक-युवतियों की जरूरत होगी तो ये बहनें क्या इन्हें इसी मरकटे शरीर से जन्म देंगी ? यह याद रक्खो कि देश की बहनों के स्वास्थ्य पर ही देश का भविष्य निर्भर है क्योंकि उन्हीं की गोद में जाति का निर्माण होगा और उन्हीं का दूध पीकर संसार को शान्ति का संदेश देनेवाले बच्चे समाज के आँगन में खेलेंगे।

इसलिए तुम सदा अपने स्वास्थ्य पर ध्यान रक्खो। स्त्रियों को अपने स्वास्थ्य की ओर से उदासीन रहना और उसकी उपेक्षा करना न केवल अनुचित है वरन् एक सामाजिक पाप है। प्रत्येक स्त्री को सदा यह आशा-भरोसा और हिम्मत रखनी चाहिए कि साठ वर्ष की अवस्था में भी जवान बनी रहूँगी। हमारे देश की एक बड़ी-बूढ़ी अंग्रेज स्त्री-नेता अपने को 'बयासी वर्ष की जवान' कहती हैं और उनका उत्साह, उनका परिश्रम और कभी न थकने वाली उनकी शक्ति देखकर जवानों को शर्म आती है! बहुत-से लोग जवानी बनाये रखने की बातें करते शर्माते हैं, पर यह इसलिये कि जवानी को सिर्फ भोग-विलास का साधन समझते हैं। वे यह भूल जाते हैं कि जवानी में उत्साह है; जवानी में ऊँचा उठने और अच्छे से अच्छा काम करने की लगन है; जवानी में उत्तम भावों को जाग्रत करने का जोश है; जवानी में कर्त्तव्य पालने की शक्ति है; जवानी में सजीवता और आत्म-निर्भरता है; इसलिए जवानी बुरी चीज नहीं है। बुढ़ापे में निर्बलता है; बुढ़ापे में रोग है; बुढ़ापे में निराशा

है। इसीलिए देवता कभी बूढ़े नहीं होते; भगवान् को बुढ़ापा कभी नहीं आता। इसलिए सदा जवान बने रहने की कामना करना कोई बुरी बात नहीं है, बशर्ते कि विषय-भोग के लिए वह न हो।

दूसरी बात यह भी है कि पति-पत्नी के प्रेम में, हृदय से हृदय मिल जाने पर भी, कुछ न कुछ शारीरिक आकर्षण होता ही है। इसलिए यदि पत्नी पति का प्रेम सदा बनाये रखना चाहे तो भी उसे खूब प्रसन्न और स्वस्थ रहना चाहिए। उसके स्वस्थ न रहने से घर के और कामों में भी विघ्न पड़ेगा और दिन-दिन लोग उससे ऊबते जायँगे।

बहनों को अपना स्वास्थ्य इतना अच्छा रखना चाहिए कि चालीस वर्ष की अवस्था में भी वे बीस-पचीस की मालूम पड़ें। यह बात अचरज की मालूम होगी पर असम्भव नहीं है। तुम पूछोगी कि वह कौन-सा उपाय है जिससे ऐसा हो सकता है। नीचे मैं वे बातें लिखता हूँ—

१—अविवाहित अवस्था में माता-पिता, भाई-बहनों और विवाहित अवस्था में पति, सास-श्वसुर, देवर-देवरानियों और जेठ-जेठानियों तथा ननद इत्यादि के प्रति प्रेम रक्खो। प्रेम का अर्थ यह कि सदा तुम्हारा हृदय उनके सुख, उनकी भलाई और उनके प्रति सद्भावों से उछलता रहे। प्रेम से बढ़कर स्वास्थ्य को अच्छा बनाने वाला दूसरा पदार्थ नहीं है। प्रेम जीवन का अमृत है; प्रेम जीवन का रस है। जिसके हृदय में प्रम भरा हो उसे दुनिया की कोई कठि-

नाई निराश नहीं कर सकती; उसका हृदय सदा उमंगों से भरा-पूरा रहता है । प्रेम से क्या असंभव है ?

२—सदा दुःख को दबाकर अपने को सुखी अनुभव करो और कड़ी बात को भी हँसी में उड़ा दो । सबसे सदा मीठी बात बोलो, जिससे तुम जिससे बोलो उसके हृदय में उत्साह भर जाय; वह नाच उठे। सदा हँसी-खुशी से रहो ।

३—सदा संयम से रहो । संयम का मतलब यह है कि हलका, जल्द और हजम होने वाला भोजन करो और उठना-सोना, नहाना-धोना, खाना-पीना और पढ़ना सब काम नियत समय पर हो । शौकीनी और भोग-विलास तथा बुरी बातों से सदा दूर रहो ।

४—कभी सुस्त मत बैठो । सदा अपने को काम में लगाये रक्खो और अपने काम अपने हाथ से करो ।

५—सदा अच्छे भाई-बहनों के पास बैठो । गन्दी और दिल लुभाने वाली बातें करने वाली स्त्रियों या पुरुषों के पास न जाओ । अपने मन को सदा बुरे बिचारों से बचाओ। सदा अच्छी बातों को ध्यान में रक्खो । केवल दिल बहलाने के खयाल से कोई किताब मत पढ़ो; जिससे तुम्हें कुछ फायदा हो,कुछ शिक्षा मिले, जिससे तुम अच्छी बातें सीख सको,ऐसी ही किताब अपने पास रक्खो और ऐसी ही पढ़ो और उस पर बुद्धि से विचार करो । जो अच्छी बात हो उसे मन में गाँठ बाँध लो ।

६—चिन्ता कभी न करो; भगवान् में विश्वास रखकर इसके लिए अपने को तैयार रक्खो कि जब जो बात, जो कठिनाई आ पड़ेगी उसे सह लोगी पर उस चिन्ता से हमेशा दुखी और उदास रहना ठीक नहीं है। इससे बहुत जल्द बुढ़ापा आ जाता है। हाँ, कोई गलती हो जाय तो मन में निश्चय कर लो कि आगे से वह नहीं होने पावेगी।

७—सारे काम नियम और व्यवस्था से करो। हर चीज काम और हर बात में क़ायदा और तरतीब होनी चाहिए।

८—भूत-भविष्य की चिन्ता न करके वर्तमान को अच्छा बनाने और उसमें सुख पाने को कोशिश करो।

९—थोड़ी कसरत रोज करो। स्त्रियों के लिए चक्की चलाने, चर्खा कातने, स्वच्छ हवा में थोड़ी दूर टहलने और मकान एवं कपड़ों की सफाई करने की कसरतें बहुत उपयोगी हैं।

१०—अपने हाजमे का हमेशा ध्यान रक्खो। पेट में कोई खराबी न आने दो; जितनी भूख हो बस उतना ही खाओ। इतने पर भी यदि पेट में कोई खराबी आजाय या पखाना साफ़ न आवे तो तुरन्त उसकी दवा करो। गरम दूध में मुनक्के डालकर पीने, नीबू का रस चाटने और गुलकन्द (सिर्फ गरमी में) खाने से पेट की मामूली खराबी दूर हो जाती है। दर्द या ज्यादा ख़राबी मालूम हो तो योग्य डाक्टर या वैद्य से सलाह लो। यह याद रक्खो की सारी बीमारियों की जड़ हाजमे की खराबी है ! जिसे खाना ठीक समय पर हजम हो जाता है; टट्टी साफ़ आती और पेट साफ़

रहता है, भूख जोरों की लगती है उसे कोई बड़ी बीमारी तंग नहीं कर सकती। पेट की गड़बड़ी से आँखें कमजोर हो जाती हैं; सिर में दर्द होने लगता है; दाँत में बदबू और कीड़े पैदा हो जाते हैं; मुँह मुरझा जाता है; जुकाम और पेट में जलन तथा दर्द बना रहता है, बवासीर, प्रदर, मधुमेह इत्यादि रोग हो जाते हैं; चक्कर आने लगता है; नींद नहीं आती और भोजन बेस्वाद मालूम पड़ता है। इसलिए सदा पेट को साफ़ रक्खो। भोजन के बाद थोड़ा लवण-भास्कर चूर्ण या नीबू या एक चम्मच खाने वाला सोडा पानी के साथ पी जाओ। थोडी दूर रोज टहलना बहुत अच्छी बात है।

२१—सोते समय मुँह खोलकर एवं बाल बिखराकर सोओ। कमरे की कमसे कम एक खिड़की जाड़े में भी खुली रखनी चाहिए। जलती लालटेन या आग सोने के कमरे में कभी न रक्खो; नहीं तो विषैली गैस नाक के द्वारा शरीर में समा जायगी और फेफड़े कमजोर हो जायँगे। हमेशा बालों को बाँधकर रखने से वे कमजोर हो जाते हैं। सोने के पहले सिर में तेल अच्छी तरह लगाओ और बालों को बिखराकर सोओ। जैसे हमें हवा की जरूरत होती है वैसे ही बालों को भी होती है। रात को नौ बजे सो जाओ; दस बजे के बाद जागना बड़ी खराब बात है। इसी तरह चार बजे सुबह उठ जाना स्वास्थ्य के लिए बहुत फायदा करता है। उठकर भगवान् का स्मरण करो और कुल्ला

करके नाक बंद करके धीरे-धीरे एक ग्लास पानी रोज पिया करो; फिर थोड़ी दूर टहलो और तब टट्टी इत्यादि दूसरे कामों में लगो।

१२—कभी क्रोध न करो; न चिढ़कर बोलो। याद रक्खो कि जिसपर क्रोध किया जाता है, उसकी अपेक्षा जो क्रोध करता है उसके स्वास्थ्य पर ज्यादा खराब असर पड़ता है।

यदि तुम इन बातों पर ध्यान दोगी तो निश्चय ही अपने शरीर को नीरोग और स्वस्थ रख सकोगी।

दो बातों से बचो !

गृहस्थी में दो बातों से सदा बचो। एक यह कि कभी झगड़े-लड़ाई में न पड़ो; न खुद कोई झगड़ा खड़ा होने दो और दूसरी यह कि माता-पिता, भाई-बहन से या विवाह के बाद, पति या ससुराल में और किसी से कभी, बहुत सम्हालने पर भी यदि जरा भी झगड़ा हो जाय तो उसे खुद प्रेम से, नम्रता से, क्षमा माँगकर तय कर लो। दूसरों को पंच न बनाओ नहीं तो वे तुम्हारी कमजोरियों से फायदा उठाकर कभी तुम्हीं को नीचे गिराने की कोशिश करेंगे। यह मत ख़याल करो कि क्षमा माँगने में कमजोरी या हेटी है। नहीं, इससे तुम्हारे हृदय में पवित्रता आयगी और तुम्हारे अन्दर अच्छे विचारों की वृद्धि होगी।

वह एक साधारण गृहस्थ के घर, गृहस्थी की कठिनायों के बीच, पैदा हुई थी। कठिनाइयों के बीच लाड़-प्यार की जितनी सुविधायें मिल सकती हैं, उतनी उसे मिलीं। लड़कपन के दिन पूरे न हुए थे कि शादी हो गई—गृहस्थी का बोझ सिर पर आ पड़ा। रात-दिन की चिन्ता, अपने दुःख को छिपाकर सबको प्रसन्न रखने की उत्कण्ठा में उसका शरीर गलने लगा। कभी यह नाराज हैं; कभी उनको मनाना है; कभी ससुर बीमार हैं; कभी पति की तबियत ठीक नही है, उनकी दवा-दारू करना है। अभी दवा देकर उठी तो देखा कि मकान साफ़ करना है; बर्तन माँजने को पड़े हैं। उनसे निबटी और नहा-धोकर खाना पकाने को आग जलाई एवं आटा गूँधने लगी। आधा भोजन तैयार हो गया था कि मालूम हुवा कि दो मेहमान और आये हुये हैं। बिचारी ने सोचा था कि जल्दी से भोजन से निबटकर दवा इत्यादि तैयार कर दूँगी और पति के दर्द करते हुए शरीर में थोड़ी मालिश करूँगी, तबतक यह मेहमानों का बोझ आ पड़ा। रात को देर से सोने के कारण आँखों में जलन हो रही है; सिर भारी है, घर में पति के स्वास्थ्य को देखकर चिन्ता से हृदय दुःखी है। उधर मेहमानों को जल्दी ही खा-पीकर किसी से मिलने जाना है। किसी तरह राम-राम करके खाने-पीने का काम खत्म हुआ तो फिर बर्तन माँजने में लगी। बर्तनों से निबटो तो देखा नहाने के घर में ढेर के ढेर कपड़े पडे हैं! उन्हें साफ़ करते-करते बाहों में दर्द होने लगा और किसी तरह काम खत्म किया। फिर देखा कि धोती एक जगह से

इस चित्र की ओर देखो !

फट रही है जिसे न सी दिया तो और भी फट जायगी। झट उसमें लग गई। उधर पति के पास बैठकर उनसे दो-चार मीठी बातें करने, उन्हें शान्ति देने, उनकी सेवा करने को जी चाहता है, इधर शाम होने को आई। फिर भोजन की तैयारी में लगना है। अभी दाल-चाँवल, शाक-भाजी सब पड़ी है। उन्हें साफ़ करना है। उसके बाद फिर वही षटराग चला! इस तरह बिना एक मिनट की शान्ति और विश्राम के उसका जीवन बीत रहा है।

पीछे सन्तानवती होने पर सन्तान की बड़ी भारी जिम्मेदारी आ पड़ी। उसका पालन-पोषण करने में रात को नींद भी गायब होने लगी है। उसे नहलाना-धुलाना, खिलाना-पिलाना, कपड़े साफ़ करना, खेलाना-फुलाना!—काम बढ़ता ही गया और उसे कभी इतनी भी फ़ुर्सत न मिली कि देखे मैं क्या थी, क्या हो गई हूँ। कैसा कंचन-सा शरीर था, चेहरे पर कितनी कान्ति, कितना तेज था। मन में बड़ी-बड़ी उमंगें और बड़े-बड़े हौसले थे पर एक-एक करके सब उसने त्याग दिये!

और—

बदले में उसे क्या मिला? उसके त्याग की कानोंकान किसी को खबर न हुई। उसके जीवनव्यापी बलिदान की कहानियाँ अख़बारों में नहीं छपीं! उसका नाम किसी ने न जाना; उसकी प्रशंसा के लिए सबके ओठ चुप हैं—हाँ, निन्दा और डाँट-फटकार की बौछारें कभी-कभी उसकी तरफ आ निकलती हैं; उसकी आँखों के कोनों में सजीव मोती के दो-चार दाने उदय होते हैं; दुनिया की ओर हसरत और निराशा से देखते हैं और फिर

चुपचाप ढुलककर मिट्टी में मिल जाते हैं ! इसे भी कोई नहीं देखता। फिर भी निन्दा और कठिनाइयों से भरे इस मार्ग से वह चुपचाप अपनी गृहस्थी का बोझा उठाये जीवन की मंजिल पर ली जा रही है !

× × ×

यह एक साधारण स्त्री का चित्र है। अमेरिका की एक बहन अपने देश की ऐसी साधारण स्त्रियों के बारे में अपनी एक पुस्तक में लिखती हैं—

"मेरी इच्छा होती है कि यदि मुझे बहादुरी के तमगे बाँटने का संयोग प्राप्त हो तो मैं साधारण स्त्री को सबसे अच्छा तमग़ा दूँ। यह बात सच्ची है कि उसने कभी तूफान से डूबते हुए जहाज को किनारे नहीं लगाया, न किसी डूबते हुए आदमी को नदी से निकाला और यह भी सच है कि उसने कभी भागते हुए घोड़े को नहीं पकड़ा और न किसी जलते हुए मकान में से किसी के प्राणों की रक्षा की अथवा और किसी प्रकार से किसी हिम्मत के काम में कोई वीरता दिखाई।

"उसने केवल इतना किया कि तीस-चालीस वर्ष तक गृहस्थी में स्थिर रही और बीमारी, गरीबी के बीच अकेली रहकर चुपचाप अनेक निराशायें सहीं और इन विपत्तियों को ऐसी हिम्मत के साथ बर्दाश्त किया कि किसी को कानोंकान ख़बर न होने दी। ऐसी साधारण स्त्री के सामने बहादुर सिपाही भी सिर झुकाकर उसकी वीरता के लिए अभिवादन करेगा !

"उसकी शकल से कोई बहादुरी या उच्चता का भाव प्रकट नहीं होता। वह एक साधारण स्त्री है जिसके साधारण कपड़े,

थका हुआ चेहरा तथा काम से घिसे हुए हाथ होते हैं। इस स्त्री को सैकड़ों बार तुमने देखा होगा परन्तु कभी उसे प्रणाम करने का विचार न आया होगा; परन्तु वास्तव में एक शूर-वीर सिपाही की तरह मनुष्य-जीवन की लड़ाई में वह बहादुरी की प्रशंसा पाने की हक़दार है!

"इस बात को वर्षों गुजर गये जब वह नई जवानी के साथ हृदय में उमंगें भरे हुए विवाहित हुई थी! उसने अपने मन में बड़ी-बड़ी आशायें बाँध रक्खी थीं। × × ×।

"एक-एक करके उसकी सब आशायें नष्ट हो गईं। उसको जो पति मिला वह भला आदमी था परन्तु थोड़े ही दिनों पीछे उसका स्वभाव बदल गया। अब वह स्त्री के रूप या शृंगार की प्रशंसा नहीं करता, न उससे अब मीठी-मीठी बातें करता है; न इसके लिए उसके पास अब समय है। धीरे-धीरे उसके विवाह का सुख दूर हो गया और प्रेम और आनन्द के सुखमय मार्ग की जगह उसके सामने कर्तव्य और चिन्ता का कठोर मार्ग फैला हुआ है।

"हर रोज वह सिलाई करती, भोजन बनाती, और घर की सफ़ाई करती और यह सब उस आदमी लिए जो इस सेवा के बदले उससे दो मीठी बातें नहीं कहता था। इसके सिवाय जब उसका मिजाज बिगड़ता तो रुखाई के साथ झगड़ा करता। जब उसका मिजाज शान्त होता तो भूखे पशु की भाँति भोजन करता और अखबार लेकर एक कोने में बैठ जाता; स्त्री बेचारी अपना मन मारे अपने गृहस्थी के काम में फँसी रहती।

"भाग्य से पति में रुपया पैदा करने का गुण था; वह बड़े परिश्रम से जीविका उपार्जन करता था पर संसार में सभी ऐसे भाग्यशाली नहीं हैं। ऐसे भी हैं जिन्हें पेट की चिन्ता हर समय लगी रहती है; स्त्रियों को दरिद्र जीवन काटने को मजबूर होना पड़ता है। यह स्त्री का ही काम है कि थोड़ी आमदनी में गुजर करती है तथा पति एवं बच्चों के सुख के लिए उसने अपना पेट काटना पड़ता है; वह एक रुपये में पाँच रुपये का काम निकालती है।" *

यह अमेरिका की एक साधारण स्त्री का चित्र है! पर इसके पहले मैंने जिस चित्र का वर्णन किया है वह इससे कहीं अधिक करुण है क्योंकि जहाँ पश्चिम में स्त्रियाँ आर्थिक कठिनाइयों के कारण इतना सहती हैं वहाँ हमारे यहाँ इसे अपना धर्म समझ कर सहता हैं !

तुम साधारण स्त्री के इस चित्र को ध्यान से देखो। वह कितना बलिदान देती है, वह कितने सुखों को छोड़ती है; कितने पदार्थों के लिए उसे मन मारना पड़ता है; वह घर में सबको अच्छा खिला देती है और स्वयं क्या खाती है, इसका किसी को पता नहीं चलता; न कोई पता चलाने की परवा करता है। कभी-कभी सबको खिला लेने से बाद इतना ही बचता है कि अधपेट खाना पड़ता है; कभी शाक खत्म हो जाती है और नमक से सूखी रोटी चबानी पड़ती है, किन्तु इसका पता किसी को चलने तक नहीं देती !

* अमेरिकन स्त्री-शिक्षा, पृष्ठ १७, १८, १९

जब वह थकी होती है या भीतर ही भीतर बुख़ार से हड्डियाँ चिलकती रहती हैं तब भी घर का सब काम बिना हाय-तोबा किये करती जाती है। रोते हुए बच्चों को चुमकारकर सुलाती है और जब बच्चों को शीतला, चेचक इत्यादि कठिन रोग हों तो भी अपने प्राणों को ख़तरे में डालकर उन्हें कलेजे से चिपकाये रखती है। एक तरफ़ पति या किसी बच्चे की बीमारी से उसका दिल करता कि व रोये और दूसरी तरफ़ दूसरे रोते बच्चे को चुमकारती और कलेजे पर पत्थर रखकर हँसती और उसे भी हँसाती है। संभव है यह लड़का आगे जाकर उसीका विरोधी निकल आवे किन्तु वह अपने स्नेह में इन बातों का विचार किये बिना अपने कर्तव्य का पालन कर रही है। इस मौन-त्याग और इस अविचल धीरज के सामने किस सिपाही की बहादुरी ठहर सकती है? इस जीवनव्यापी तप के सामने किस देशसेवक का त्याग तुलना के लिए पेश किया जा सकता है?

मैं चाहता हूँ कि तुम अपने सामने यश और धन के लिए ललचने वाली स्त्रियों की जगह साधारण स्त्री का यह चित्र रक्खो! मैं जानता हूँ कि देश या समाज में ऐसी स्त्री के कोई नहीं पहचानता; किसी के हाथ उसके स्वागत के लिए नहीं उठेंगे; न तुम्हारे इस चुनाव की कोई प्रशंसा करेगा; किन्तु इतने पर भी मैं कहूँगा कि वह उन लोगों से कहीं महान् है जिन की बातों पर हजारों तालियाँ एक साथ बज उठती हैं या जिनके लिए सभाओं में सबसे आगे कुर्सियाँ सजाकर रक्खी जाती हैं! बहन! ऐसी स्त्री आँख से देखने की चीज नहीं है, कान से सुनने की कहानी नहीं

है; सिर झुकाने लायक़ मूर्ति नहीं है; हृदय में रखने, दिल में अनुभव करने की चीज़ है। मैं नहीं चाहता कि तुम्हारा नाम हो; मैं नहीं चाहता कि तुम उपदेश देने योग्य विदुषी बनो; मैं नहीं चाहता कि रानी बनकर लोगों पर हुक्म चलाओ। मैं चाहता हूँ कि तुम ऐसी ही एक साधारण स्त्री बन जाओ!

दुनिया में आगे चलकर तुम पर अनेक ऐसी कठिनाइयाँ आयेंगी जिनकी तुम्हें कल्पना भी न होगी। जब तुम बिलकुल पवित्र और निर्दोष होगी, बहुतसे स्त्री-पुरुष तुम्हारा नाम धरेंगे और निन्दा करेंगे। समाज की निन्दा से बढ़कर चोट पहुँचाने वाली चीज़ दूसरी नहीं है और विशेषतः जब एक आदमी निर्दोष हो और उसकी निन्दा की जाय तो मनुष्य पर से उसकी श्रद्धा उठ जाती है। पर तुम कभी निन्दा से विचलित होकर कोई काम न करना। भगवान के सामने पवित्र रहो और उसके चरणों में अपने को छोड़ दो। मैं जानता हूँ यह कठिन है। दुनिया बहुत गिर गई है इसलिए वह साधारण सुधार को, एक स्त्री-पुरुष की साधारण घनिष्ठता को या पवित्र प्रेम को भी अपने ही तराज़ू से तौलती है। उसके ऐसे नाप-जोख को सह लेना बड़ा कठिन काम है। मुझे खुद इसका अनुभव है। आश्रम में रहनेवाली दो-एक बहनों और दो-एक भाइयों को बहन के प्रति मेरे भाईपन के बढ़ते हुए स्नेह में भी—जो माता के दूध के समान निर्मल और बच्चे के मुखड़े के समान पवित्र था—दुनिया-भर की आशंकायें दिखाई पड़ी थीं और सम्पूर्ण नीति-शास्त्र को, शुरू से अन्त

दुनिया की राय तुम्हारी कसौटी नहीं है

तक, मथ डाला गया था! मुझे याद है कि एक-बार तो मेरी आँखों से भी आँसू निकल गये पर कायर-हृदय की तरह भीतर ही भीतर मन में चुरने वाली इन निन्दाओं से हमारे मन कभी शंकित और भीत नहीं हुए; हमारा सम्बन्ध पवित्र था इसलिए इस सारे विष और निन्दा को पीकर भी वह अमर रहा। मेरे जीवन का वह अनुभव आज मेरे कमरे में सुन्दर अक्षरों में टँगा है—"पाप-रहित हृदय से बढ़कर दूसरा रक्षक नहीं है!"

फिर जब आश्रम में, महात्माजी के पवित्र सिद्धान्तों की छाया में, पलने वाले बहन-भाइयों में ऐसी कल्पनायें उठ सकती हैं; जब आदर्शवाद के कल्पना-लोक में विहार करने वाले कवियों और सुशिक्षित आदमियों के मन में इस तरह की बातें आ सकती हैं तो साधारण समाज में तुम्हें इससे कहीं अधिक निन्दा के लिए सदा तैयार रहना चाहिए। इसके भय से, यदि तुम सच्ची और निर्दोष हो तो, अपने सिद्धान्तों से डिग जाना ठीक नहीं। जो मनुष्य निन्दा पर कान देकर आदर्श से गिर जाता है वह ईश्वर का अपमान करता है और उसके प्रति अविश्वास प्रकट करता है। सदा याद रक्खो कि जो सत् है, सच्चा है वह मर नहीं सकता, वह निन्दा का विष पीकर भी बना रहेगा; जो नाशमान है, नष्ट होने योग्य है वही नष्ट होता है।

इसलिए मैं चाहता हूँ कि तुम अपने को इतना ऊँचा उठा लो कि न तो कोई निन्दा तुम्हें तुम्हारे उचित मार्ग से हटा सके और न यश की कोई भावना तुम्हें झूठे मार्ग पर चला सके। इसी में तुम्हारा गौरव है और इसी में तुम्हारा आदर्श है। याद

रक्खो जब सीता और सती निन्दा से बच न सकीं तो साधारण स्त्रियों के जीवन की झूठी-सची कहानियाँ फैलने में आश्चर्य की क्या बात है ? दुनिया बहुत गिर गई है। सबको खुश रखना असम्भव है, इसलिए कोई काम लोगों की खुशी-नराजी के कारण मत करो बल्कि यह सोचकर करो कि वह अच्छा काम है और उससे भगवान् प्रसन्न होगा। यही सबसे अच्छी कसौटी है।

तुम्हारे तीन आदर्श !

ऊपर मैं लिख चुका हूँ कि तुम साधारण स्त्री को अपना आदर्श बनाना। उस स्त्री का चित्र भी तुम्हारे सामने खींचकर रखने की चेष्टा मैंने की है। पर उसके अतिरिक्त प्राचीन आर्य-नारियों में से सीता और दमयन्ती दो के चरित ऐसे हैं कि प्रत्येक स्त्री उन्हें अपना आदर्श बनाकर जीवन को ऊँचा उठा सकती है। सीता के चरित में पति के प्रति प्रेम है; जीवन की कठिनाइयों को सहने का साहस और हौसला है; लज्जा है पर अपने आदर्श और अपने धर्म के पालन की दृढ़ता भी है। वह राम के राज्य छोड़कर जंगलों में जाने के समय उन्हें राज छोड़ने के संकल्प से हटाती नहीं; इसके बारे में वह एक शब्द भी नहीं कहतीं, यद्यपि कुछ ही समय पहले उनका ब्याह हुआ और वह सदा सुख के पालने में झूलती रहीं। पर भोग-विलास में उनकी आसक्ति नहीं थी, उनका मोह नहीं था। उन्हें इसे छोड़ते जरा भी दुःख नहीं हुआ। पति जंगलों में मारा-मारा फिरे और वह राज-भोग भोगें, यह उनकी कल्पना के बाहर था। इसलिए राम के समझाने पर, घर पर ही रहकर सास-ससुर की सेवा करने को

कहने पर भी, वह न डिगीं और राम के हिचकिचाने और वन की कठिनाइयाँ बताने पर बोलीं कि 'आप मेरे पति हैं, आपके चरणों में मेरी अगाध श्रद्धा है; आपके बिना मैं जी भी न सकूँगी। आपके साथ जंगल भी मुझे स्वर्ग हो जायगा।' इसपर भी जब राम साथ ले जाने को राजी न हुए तो सीता, अपूर्व तेजस्विता के साथ, बोलीं—

"मेरे पिता मिथलाधिप राजा जनक ने आपको पुरुष-शरीर-धारी स्त्री नहीं समझा था, अतएव उन्होंने आपको अपना दामाद बनाया। × × ×
जो सती है, जो आपके साथ बहुत दिनों तक रह चुकी है, लड़कपन में ही जिसके साथ आपका ब्याह हुआ है, उस स्त्री को आप नट के समान दूसरे को देना चाहते हैं!"*

इसी प्रकार की तेजस्विता सीता ने तब दिखाई थी जब हनुमान ने लंका में उनसे कहा कि "माँ! तुम मेरी पीठ पर बैठ जाओ। मैं एक छलांग में समुद्र लाँघकर तुम्हें भगवान् रामचन्द्र के पास पहुँचा दूँगा।" सीता बोलीं—"वत्स! मैं इस तरह यहाँ से नहीं जा सकती। जब राम वीरों की भाँति शत्रु को मार कर, विजय प्राप्त करके मुझे ले चलेंगे तब जाऊँगी।" धोबी के कलंक

---

* किं त्वामन्यत वैदेहः पिता मे मिथिलाधिपः।
राम जामातरं प्राप्य स्त्रियं पुरुषविग्रहम्॥
स्वयं तु भार्यां कौमारीं चिरमध्युषितो सतीम्।
शैलूष इव मां राम परेभ्यो दातुमिच्छसि॥
—वाल्मीकीय रामायण, अयोध्या काण्ड ३, ८]

लगाने पर अग्नि-परीक्षा के समय भी सीता ने ऐसी तेजस्विता दिखाई थी। पति के लिए उन्होंने राज-पाट, भोग-विलास छोड़ा; सास-ससुर सबको छोड़ दिया; लंका में वियोग में दुबली-पतली हो गई; पर उनका प्रेम केवल शरीर का मोह नहीं था; उसमें तेजस्विता थी, उसमें गौरव था। इसलिए एक बार उन्होंने कहा था—"राम, क्या तुमने मुझे अपनी एक तुच्छ शय्या-संगिनी समझ रक्खा है?" सीता की पति-भक्ति ऐसी नहीं थी जो उचित-अनुचित का कुछ विचार नहीं करती। वह पतिभक्त थीं, सती थीं, पर साथ ही उनमें साहस, गौरव, तेज और अपने सिद्धान्तों पर दृढ़ रहकर धर्म-पालन करने की भी शक्ति थी। अपने सतीत्व और अपनी पति-भक्ति का जरा भी अपमान उन्होंने कभी सहन नहीं किया। पति के मन में भी कालिमा आ गई तब भी उन्होंने सफ़ाई न देकर राम से; बड़े गर्व और दुःख से कहा–"हे राम! तुम ऐसा कहते हो?" उस पतिव्रत के लिए स्वयं पति—राम—को भी छोड़ने का साहस उनमें था। आज देश में उनके समान ही पति-भक्त, त्यागशील, धर्म-परायण पर तेजस्वी स्त्रियों की आवश्यकता है!

मेरी सम्मति में, सीता के बाद, दमयन्ती को तुम अपना तीसरा आदर्श चुन सकती हो। दमयन्ती ने पति के लिए क्या-क्या नहीं सहन किया? उसके पति नल जब जुए में सब कुछ हारकर, नंगे-भूखे जंगलों में घूमते तो दमयन्ती परछाईं की तरह सदा उनके साथ लगी रहती। उसने पति के लिए सब कुछ छोड़ा। उसका हृदय पति के प्रम से भरपूर था; इसलिए घास पर सोने

में उसे मखमली गद्दों से भी अधिक सुख होता था और काँटे उसे फूल के समान लगते थे। उसकी भक्ति और उसके धीरज को देखकर जब नल दुःख से अधीर हो रात को उसे सोती छोड़ कहीं चले गये और एक व्याध ने उसका सतीत्व भंग करना चाहा तो उसने अविचल धैर्य और अद्भुत साहस एवं तेज के साथ अपने नारी-धर्म की रक्षा की थी। सीता जहाँ सच्चे अर्थ में एक तेजस्वी सहधर्मिणी एवं एक तपस्विनी नारी थी वहाँ दमयन्ती एक प्रेममयी पत्नी। और सच्ची जीवन-संगिनी थी। यदि कोई बहन इनके जीवन से पति-प्रेम और तेजस्विता, त्याग और आदर्श पत्नीत्व के भाव ग्रहण करे तो वह स्त्री-जाति का गौरव दुनिया के सामने रख सकती है।

× × ×

पहले पत्र में मैं लिख चुका हूँ कि सम्भव है तुम्हारे विवाह के समय मैं उपस्थित न रह सकूँ, इसलिए विवाह के पहले जितनी बातें विवाहित जीवन के बारे में योग्य कन्या को जाननी चाहिएँ, मैंने लिख दी हैं। हमारे देश में प्रायः विवाह के बाद, विदा करते समय, लड़की को थोड़े में उपदेश करने की प्रथा है। पर उन सब बातों को मैंने पहले ही लिख दिया है जिससे ब्याह होने के बाद सुसराल में तुम्हारे जीवन का सद्व्यय हो किन्तु आज मुझे बुद्धिमान कण्व का वह उपदेश याद आ रहा है जो उन्होंने शकुन्तला को पति के घर भेजते समय दिया था। उसमें थोड़े में सब बातें आ गई हैं, इसलिए उसे भी लिख देता हूँ—

"गुरुजनों—बड़ों—की सेवा करना; सौतों* के साथ प्यारी सखी के समान आचरण करना; स्वामी कभी तिरस्कार भी करें तो क्रोध में आकर अनुचित एवं विरुद्ध काम मत करना; परिवार के सब लोगों के साथ बहुत उदारता का व्यवहार करना; भोग की वस्तुओं में अभिलाषा मत रखना। इस तरह रहने वाली स्त्रियाँ योग्य गृहणी होती हैं, इसके विपरीत आचरण करनेवाली कुल के लिए पीड़ा के समान हो जाती हैं।" †

इसी तरह साधारण स्त्रियों के मुँह से मैंने एक टूटा-फूटा गीत सुना था, जिसके कुछ अंश याद हैं—

पहनो-पहनो री सुहागिन ज्ञान—गजरा।
दया धरम की ओढ़ चुनरिया शील का नेत्रों में डालो कजरा।
पहनो-पहनो री सुहा० ॥
लाज करो तुम पर-पुरषों से अपने पति का देखो मुखड़ा।
सास-ससुर की सेवा करियो कबहुँ पती से न कीजो झगड़ा।
पहनो-पहनो री सुहा० ॥

अर्थात् "ऐ सुहागिन! यह ज्ञान की माला पहन ले, दया-धर्म

---

* उस समय पुरुष बहुविवाह करते थे जो राजा-महाराजाओं एवं धनी लोगों में आज भी प्रचलित है।

† शुश्रूषस्व गुरुन कुरु प्रियसखी वृत्ति सपत्नीजने
भर्त्तुर्विप्रकृतापि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः।
भूमिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भोगेष्वनुत्सेकिनी
यांत्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः।
अभिज्ञान शाकुन्तल, अंक ५

की चूनरी ओढ़ और आँखों में शील-संकोच का काजल दे। दूसरे पुरुषों से लज्जा रखना और अपने पति की ओर ही ध्यान रखना। सास-ससुर की सेवा मन लगाकर करना और पति से कभी झगड़ा न करना।"

थोड़े में यह सब शिक्षाओं का निचोड़ है!

स्त्रियों के सम्बन्ध में, उनके आदर्श के सम्बन्ध में, बहुत लिखा जा सकता है पर मैंने तुम्हें थोड़े में सारी बातें बताने की चेष्टा की है जिससे न केवल तुम एक योग्य गृहणी बन सको वरन् भगवान् ने तुम्हें जो स्त्री का जन्म दिया उसका आदर्श पूरा हो; तुम्हारा जन्म सफल हो और दुनिया से विदा होते समय तुम्हें इस बात का संतोष—गर्व नहीं—रहे कि मैंने अपना कर्त्तव्य पालन किया है।

भगवती, दुनिया में लिखने की बातें बहुत हो सकती हैं पर मैंने तुझे जो ग्यारह पत्र लिखे हैं उनमें लिखी हुई बातों पर ध्यान देगी तो वही बहुत होगा। भगवान् ने हम लोगों को धन नहीं दिया, रूप नहीं दिया, यश नहीं दिया, बल नहीं दिया; पर जो निर्मल मन और दुर्बल शरीर दिया है उससे भी हम लोग बहुत ऊँचा उठ सकते हैं। परवा नहीं, उस उठने को दुनिया न जाने; परवा नहीं, उस उठने में लोग निन्दा के काँटे मार्ग में बिखेरें; परवा नहीं, सच्चे हितैषी और मित्र भी बदल जायँ; पर हमारा मन पवित्र रहे; हमारा विश्वास उस परम पिता के अन्दर अटल रहे जिसके निर्णयों पर दुनिया की निन्दा और दुनिया से मिलने वाला यश अपना प्रभाव नहीं डाल सकता। जिस समय हमें

कोई देखने वाला न हो उस समय भी हममें पाप की भावना न आये और आवे तो हम एक मिनट के लिए भी न भूलें कि यद्यपि यहाँ कोई मनुष्य उपस्थित नहीं है भगवान् सब देख रहा है।

हम लोगों के पास दुनिया में गर्व करने लायक़ और कोई पूँजी नहीं है इसलिए हमें अपने सुविचारों और सद्गुणों को विकसित करने की ज्यादा आवश्यकता है। हमारे पास वह धन नहीं है जिसको ढेर में बहुत-से पाप छिप सकते हैं या जिसके द्वारा पुण्य की दूकान से बहुत-सा सामान सहज ही में ख़रीदा जा सकता है; हमारे पास यश नहीं है जिसके अन्दर हम अपने हृदय की मलिनता को छिपाकर निर्द्वन्द्व दुनिया में घूम सकें; हमारे पास बल और रूप नहीं है जिससे हम लोगों का अपने अनुकूल उपयोग करने का झूठा हौसला करें; हमारे पास बस यही छोटा-सा शरीर है और उसके अन्दर वह चरित्र है जो किसी को दिखाया नहीं जा सकता पर जिसके सहारे दुनिया की सम्पूर्ण कठिनाइयों को पार करके भगवान के चरणों तक पहुँचा जा सकता है!

मैं चाहता हूँ कि प्रेम तुम्हारी पूँजी हो; सेवा तुम्हारा साधन हो; त्याग तुम्हारी साँस हो और निष्पाप हृदय तुम्हारा रक्षक हो!

बस, आशीष के साथ—

तुम्हारा भाई

'सुमन'

भाई के पत्र

[विवाह-समस्या और स्त्री-जीवन]

[३]  माता

माता गुरुतरा पृथ्व्याः = माता पृथ्वी से भी बड़ी है ।

जगज्जननी !

तेरे हृदय की स्नेह-गङ्गा में स्नान कर न जाने कितने तर गये। तेरी छाती के अमृत ने न जाने कितनों को अमर बनाया है! तेरे नेत्रों की ज्योति से न जाने कितने अभागों को प्रकाश मिला है; तेरी भौहों के संचालन से इतिहासों के न जाने कितने पन्ने लिखे गये हैं! तेरी गोद में दुनिया कबसे जन्म ले रही है; कब से पल रही है और कब से नष्ट हो रही है! दुःख में, आंतक में, प्रसन्नता में, जन्म में, मृत्यु में सदा तेरी शीतल गोद में दौड़कर छिप जाने को प्राणी लालायित है! कभी कन्या के रूप में, कभी नारी के रूप में, और कभी माता के रूप में तू सदा रही और सदा रहेगी! जो-कुछ जगत् में है वह तुझसे है; तेरे बिना कुछ नहीं हो सकता।

माँ! आज तेरी यह महिमा लोग क्यों भूल गये हैं? तू तो अनादि-काल से ज्यों की त्यों अपने कर्तव्य में स्थिर है! आँधी हो, तूफ़ान हो, धूप हो, बादल हों; महल हो या सूनी झोपड़ी हो; सुख हो या दुःख हो; स्वास्थ्य हँस रहा हो या बीमारी रो रही हो, तू तो अविचल है! तूतो माता ही है; तू तो और नहीं हो सकती! पर हम तो और हो गये। क्यों ऐसे हो गये माँ? एक दिन वह था जब मनुष्य मनुष्य का भाई था; मनुष्य ही क्यों पशु-पत्ती इत्यादि जीवों से भी मनुष्य मिल गया था; तब ईर्ष्या-द्वेष, दंभ, लोभ, छल-कपट कहाँ था? तब तो हमारे घर में

जीवन का बोझ बढ़ा देने वाली इतनी सामग्री न थी। जरा-सा शरीर था; और उसके अन्दर पृथ्वी में भी समा न सकने वाले प्रेम के अमृत से भरा विशाल हृदय था! वह क्या तेरा पराक्रम न था?

उसके बाद—

अभिमान की आँधी में, हम तेरे स्नेह के आँचल की छाया से दूर भटक गये। दुनियादारी बढ़ गई; भाइयों के मन में भाइयों को कुचलने, विजय करने, अपने चरणों में झुकाने की अभिलाषा जाग उठी! लड़ाइयाँ हुईं; भाई ने भाई का खून बहाया और गर्व की साँस ली। बड़े-बड़े राष्ट्र, बड़े-बड़े देश बन गये; दल-बन्दियाँ हुई। ईर्ष्या-द्वेष, लोभ और होड़ का सोता बह चला। तेरे स्नेह की वह मन्दाकिनी हमारे हृदय के मरु-प्रदेश में खो गई! तब से वही अहंकार और अभिमान का अविराम खेल पृथ्वी पर चल रहा है! आज वह हारता है, कल वह जीतता है। आज यह गिरा कल वह उठा!

माँ! ओ जगज्जननी! आज तेरे बच्चों की क्या दशा है? सब है, पर तेरी वह आदर्श मूर्ति कहाँ है? उसके बिना तो जैसे यह सब कुछ नहीं है। संसार के समस्त जल से हमारी प्यास, हमारी आग न बुझेगी; हमें तेरे दूध की जरूरत है। बिना उसके न हम सच्चे हिन्दू होंगे, न सच्चे भारतीय होंगे, न सच्चे मनुष्य होंगे।

माँ, तुझे प्रणाम है। तू अपने बच्चों की सुध ले!

यह अविराम क्षय !

जब हमें ज़रा-सी बीमारी हो जाती है तब हम छटपटाने लगते हैं; डाक्टरों और वैद्यों के पास दौड़ते फिरते हैं। जब हमारा एक रुपया खो जाता है तो हमारा मन उदास हो जाता है और आगे से हम सावधान रहने का निश्चय करते हैं पर यह एक आश्चर्य की बात है कि बच्चों की मृत्यु के रूप में जो महामारी दिन-दिन बढ़ती जा रही है, उसके निराकरण के लिए हम चुप हैं ! हमारी जो बहुमूल्य सम्पत्ति आये दिन मिट्टी में मिलती जा रही है उसके लिए हमें परवा नहीं है। जो मनुष्य जरा-सी हानि और जरा-से दुःख में पागल हो जाता है वह यह व्यापक क्षय देखकर भी अचल है। क्या यह कम अचरज की बात है ?

हमारी भूलों के कारण दिन-दिन बच्चों की मृत्यु-संख्या बढ़ती जाती है। आज से दस वर्ष पहले जो सरकारी मर्दुमशुमारी हुई थी उसके अनुसार सारे हिन्दुस्थान में प्रति एक हज़ार पैदा हुए बच्चों में १९८ मर जाते हैं। कुछ लोगों के हिसाब से प्रति हज़ार २०५-६ बच्चे मरते हैं। यह तो औसत है पर बम्बई, बंगाल और संयुक्तप्रान्त में तो मृत्यु-संख्या बहुत ज़्यादा है। बम्बई में प्रति हज़ार ६६७ बच्चे जन्म लेने के बाद, पहले वर्ष के अन्दर ही, मर जाते हैं। संयुक्तप्रान्त में भी प्रति हज़ार पौने तीन सौ के करीब बच्चे मर जाते हैं। इस भयंकर

क्षय का कहीं ठिकाना है ? मातायें कहती हैं कि 'मरना-जीना तो ईश्वर के अधीन है; उसपर हमारा क्या बस है ? नहीं तो कौन माता अपने बच्चे की मृत्यु चाहेगी ?'

मैं यह नहीं कहता कि कोई माता अपने बच्चे की मृत्यु चाहेगी; मेरा कहना तो यह है कि ऐ माताओ ! जिन बच्चों को तुम ९–१० महीनों तक अपने पेट में रखकर, अपने शरीर के रक्त-मांस से बढ़ाकर और कठिन पीड़ा सहकर जन्म देती हो, उन्हें किस तरह रखना चाहिए कि वे बड़े होकर अपने अच्छे कर्मों से तुम्हारे मातृत्व को गौरवान्वित करें, यह तुम भूल गई हो। आजकल माता-पिता सिर्फ़ बच्चा पैदा कर देना ही अपना काम समझ लेते हैं। बच्चों का पालन-पोषण किस तरह किया जाय कि वे स्वस्थ, सुगठित एवं तेजस्वी शरीर वाले युवकों-युवतियों के रूप में संसार में आयें, उन्हें किस तरह की शिक्षा-दीक्षा दी जाय कि उनमें सच्चे मानवी भावों का विकास हो, इन बातों की ओर हमारा ध्यान नहीं है। ग़रीबों के घरों में बच्चे गन्दी एवं बदबूदार गद्दियों पर, धुएँ के बीच पड़े रहते हैं; शरीर में मैल भरी रहती है; टट्टी-पेशाब में हाथ-पाँव सने रहते हैं; उनको उपयुक्त दूध इत्यादि नहीं मिलता, इससे वे गन्दे, अनुपयुक्त और मुरदे-से हो रहे हैं। अमीरों के घरों में अन्धे लाड़-प्यार में ही बच्चे का भविष्य बिगड़ जाता है; उसका शरीर दुर्बल और कमजोर कर दिया जाता है। हम बच्चों को छाती से चिमटा लेने में जितना आनन्द पाते हैं, उतना यह सोचने में नहीं पाते कि क्या करने से वे मनुष्यता का, समाज का, देश का सिर ऊँचा

करनेवाले होंगे। इस प्रकार कुरीतियाँ, अज्ञान, अनियमित और असंयत प्रेम, दरिद्रता और बच्चों का पालन किस तरह करना चाहिए यह न जानने के कारण देश में हजारों बच्चे रोज मर रहे हैं। और जो बच जाते हैं वे भी दुबले, कमजोर और अयोग्य निकलते हैं तथा जवानी तक पहुँचते-पहुँचते बूढ़े हो जाते हैं।

मैं मानता हूँ कि मरना-जीना आदमी के बस की बात नहीं है। पर इसका मतलब सिर्फ़ यह है कि कोई आदमी सदा जीवित नहीं रह सकता; एक न एक दिन मरेगा; उसकी मृत्यु न हो, ऐसा नहीं हो सकता। पर इसके साथ ही यह भी मानना पड़ेगा कि हम अपनी लापरवाही, अपने अज्ञान और अपने अन्ध-विश्वास से मृत्यु को नजदीक बुला सकते हैं और अपनी सावधानी, संयम, ज्ञान और व्यवस्था से उसे दूर हटा सकते हैं। अकाल-मृत्यु शब्द का मतलब ही है उचित समय से पहले मर जाना। प्राचीन समय में लोग अपने संयम एवं व्यवस्थित जीवन के कारण बलिष्ठ, तेजस्वी और दीर्घजीवी होते थे। आज भी यदि हम बुद्धि से काम लें तो हमारी सन्तानें वैसी हो सकती हैं।

पर—

यह तभी हो सकता है जब मातायें अपना कर्तव्य समझें; जब वे यह समझ लें कि उनकी गोद में उनके जो बच्चे पल रहें हैं आगे जाकर उनपर न केवल उनका सुख-दुःख बल्कि सारे संसार का सुख-दुःख निर्भर है। माताओ! तुम सच्ची माता बनोगी तो तुम्हारे पुत्र तुम्हारे गौरव को बढ़ाने वाले होंगे। यदि

रक्खो, दुनिया का भविष्य पुरुषों के हाथ नहीं, तुम्हारे हाथ है। पुरुष तो तुम्हारी ही गोद में जन्म लेता है; तुम्हारी ही गोद में पलता है। आज के पुरुष चाहे नष्ट हो गये हों, चाहे तुम पर अन्याय करते हों पर कल के पुरुषों को तो तुम बिल्कुल ही अपनी इच्छा के अनुसार रच सकती हो क्योंकि बच्चे माता के पास ही रहते हैं; माता की गोद में ही उनका चरित्र बनता है, उनका बनना-बिगड़ना तुम पर निर्भर है, पिता पर नहीं।

अपने बच्चों को किस तरह तुम स्वस्थ, दीर्घजीवी, योग्य, चरित्रवान् और बुद्धिमान बना सकती हो यह सब सच पूछो तो तुम्हारी अपनी समझ और योग्यता पर निर्भर है। क्योंकि उन्नति का कोई एक रास्ता नहीं है; फिर सबका स्वभाव, परिस्थिति, वातावरण, सुविधा अलग-अलग होती है। इसपर भी आगे, थोड़े में, जो बातें लिखी हैं उनपर ध्यान देने से तुम्हारा रास्ता बहुत सरल हो जायगा।

स्त्रीत्व से मातृत्व तक

सबसे पहली बात तो यह है कि प्रत्येक स्त्री-पुरुष को 'माता' एवं पिता के पद का गौरव और उसकी जिम्मेदारी समझनी चाहिए। अनियंत्रित भोग-विलास में डूबने वाले लोग न केवल अपने शरीर और मन की छिपी शक्तियों को नष्ट करते हैं वरन् सदा के लिए अपने कुल और अपनी भावी सन्तानों को कमज़ोर और अयोग्य बना जाते हैं। इस दृष्टि से विवाहित जीवन को भोग-विलासमय जीवन बना लेना न केवल एक व्यक्तिगत नैतिक पाप है वरन् सामाजिक अपराध भी है। इसे प्रत्येक बहन-भाई अच्छी तरह समझ लें।

सामाजिक अपराध

दूसरी बात यह है कि माता के शरीर के खून से ही बच्चे का शरीर बनता है। एक बच्चा होने में उसके शरीर का कई सेर खून नष्ट हो जाता है और पैदा होने के बाद भी उसे माँ के जिस दूध की जरूरत पड़ती है वह माता के अच्छे एवं स्वस्थ शरीर में ही यथेष्ट मात्रा में मिल सकता है। इसलिए जबतक स्त्री का शरीर स्वस्थ, बलिष्ठ, नीरोग तथा बच्चे की जिम्मेदारियों को सम्हालने योग्य न हो उसे माता बनने की चेष्टा न करनी चाहिए। साधारणतः १५–१६ वर्ष की अवस्था में नीरोग एवं स्वस्थ लड़कियों का शरीर गर्भ धारण करने और मातृत्व की जिम्मेदारियों को सम्हा-

उपयुक्त आयु

लने-योग्य होता है; पर इसके बाद भी दो-तीन वर्ष बचाये जायँ और पति-पत्नी ब्रह्मचर्य-पूर्वक रह सकें तो उनका भी लाभ होगा और सन्तान का भी।

भारत में स्वस्थ लड़कियों को प्रायः १२ से १५ वर्ष की अवस्था के अन्दर नियमित रजःस्राव होने लगता है। प्रति अट्ठाईस दिनके बाद लगातार तीन या चार दिन तक नियमित मात्रा में यह रजःस्राव होता है। इसे ही मासिक-धर्म भी कहते हैं। यह प्रायः चालीस-पैंतालीस वर्ष की अवस्था तक होता है। अधिक स्वस्थ स्त्रियों को ५० वर्ष तक भी होता देखा गया है। स्त्रियों के स्वास्थ्य के लिए इसका ठीक समय पर होना बहुत जरूरी है। यदि किसी लड़की को ऐसा न हो तो शीघ्र ही योग्य लेडी डाक्टर से इसकी दवा करानी चाहिए। जिन स्त्रियों का स्वास्थ्य ख़राब रहता है, या जिन्हें क़ब्ज की या कोई भीतरी बीमारी होती है, मासिक धर्म के समय उनके पेट में बड़ी पीड़ा होती है; कमर-दर्द शुरू हो जाता है और सिर भारी रहने से चक्कर भी आने लगते हैं। यह अच्छी बात नहीं है। मासिक धर्म में कमर-दर्द एवं पेट में पीड़ा नहीं होनी चाहिए। हाँ, शरीर में थोड़ी सुस्ती और कमजोरी का अनुभव जरूर होता है। जिन स्त्रियों को * नियमित समय पर और उचित मात्रा में रजःस्राव नहीं होता उनके कमर

मासिक-धर्म

* बाज-बाज स्त्रियों को २५ दिन में भी होता है और बराबर पाँच दिन तक होता रहता है। बहुतों को ऋतुधर्म के बाहरी लक्षण प्रकट ही नहीं होते। फिर भी बच्चे होते हैं।

और पेडू में दर्द बहुत हुआ करता है; सिर दर्द बढ़ता जाता है और दाँत एवं आँखें कमजोर हो जाती हैं। प्रायः स्त्रियाँ इन बातों को बहुत छिपाती हैं, जिसका परिणाम अन्त में बड़ा खराब होता है। चक्कर आने लगते हैं और हिस्टीरिया के दौरे भी आने शुरू हो जाते हैं। इसलिए ऐसी शिकायत होने पर इलाज का ठीक इन्तजाम करना चाहिए।

खान-पान एवं व्यवहार

रजोदर्शन के समय से लेकर चार दिनों तक शरीर को बहुत सम्हालकर रखना चाहिए। शरीर में कमजोरी आजाने के कारण ठण्ड लग जाने का ऐसे समय बड़ा भय रहता है। इसलिए जाड़े के दिनों में तो स्नान से भी बचना चाहिए या खूब धूप निकल जाने पर ही गर्म पानी से स्नान करना चाहिए। आरम्भ के तीन दिनों तक यदि स्नान न करके गर्म पानी से हाथ-मुँह धो लिये जायँ तो भी ठीक होगा। साधारणतः हिन्दुओं के यहाँ इन चार दिनों में स्त्रियाँ किसी को छूती नहीं, न उनके हाथ का बनाया भोजन करने का नियम है। पति को छूने का तो बिल्कुल निषेध-सा है। आजकल इसके विरुद्ध भी आवाज उठाई जा रही है। समय बदल गया है, बहुत-सी स्त्रियाँ आज बड़े-बड़े स्कूलों में अध्यापिका का काम करती हैं या और काम कर रही हैं। उनके लिए छूत बचाना कठिन है। पर यह व्यवस्था स्त्रियों के लिए नैतिक और शारीरिक दोनों दृष्टियों से लाभदायक है। एक तो यह कि इस अवस्था में शरीर बहुत कमजोर हो जाता है इसलिए

यह छूत लाभकारी है।

स्त्रियों को पूर्णतः विश्राम करना चाहिए और परिश्रम के कामों से बचना चाहिए। यदि छूने का क्रम जारी रक्खा जाय तो बहुत से काम सदा की तरह ही उनको करने पड़ेंगे, इससे यथासम्भव छूत मानने में कोई हर्ज नहीं है पर आजकल व्यवहार में इसका अनर्थ भी होता है। छूत तो मानते हैं पर बहुत-से ऐसे घरेलू काम मान लिये गये हैं जो छूत से अलग हैं और इस अवस्था में भी स्त्रियों के सिर आ जाते हैं। जैसे सूखे बर्तन माँजना; ऊनी चीज़ें बुनना; दाल-चावल इत्यादि साफ़ करना; घर की सफ़ाई इत्यादि। सच पूछो तो इन कामों से भी इस हालत में स्त्रियों को बचना चाहिए !

इन दिनों मन भी बड़ा उत्तेजित रहता है, कुवासनाओं के प्रबल हो जाने का भय बना रहता है, विविध मनुष्यों के स्पर्श से यह

नैतिक दृष्टि से—

उत्तेजना बढ़ सकती है। पति के प्रति इस तरह की भावना उत्पन्न होने की आशंका अधिक रहती है इसलिए पति को छूने (और कहीं-कहीं तो देखने तक) का बिलकुल निषेध है।

भोजनादि बनाने का निषेध इसलिए है कि आग के पास बैठने से बीमार पड़ जाने का भय रहता है। आँखें कमज़ोर हो जाती हैं। दूसरे शरीर के विकारग्रस्त रहने से ऐसे भोजन का प्रभाव भी भोजन करने वालों के मन पर अच्छा नहीं पड़ सकता।

इसलिए आजकल हमारे यहाँ इस हालत में छूतछात की जो साधारण परिपाटी प्रचलित है वह स्वास्थ्य की दृष्टि से बुरी

नहीं है। पर हाँ, ऐसा भी न होना चाहिए कि यदि भूल से कोई बच्चा या और कोई छू जाय तो उसे जाड़े के दिनों में भी नहाने के लिए बाध्य किया जाय। यह छूत का तात्पर्य नहीं, उसकी अति है।

रहन-सहन

इन तीन दिनों तक स्त्री को एकान्त में ही अधिक समय व्यतीत करना चाहिए और अच्छी बातें सोचने, अच्छी पुस्तकें पढ़ने में मन लगाना चाहिए। चित्त को स्थिर और शान्त रखना चाहिए और कमरे में जितने भी शृंगारमय चित्र इत्यादि हों उन्हें अलग दूर रखवा देना चाहिए। कम्मल पर सोना और कम्मल ओढ़ना अच्छा है पर बहुत-सी स्त्रियों को जाड़े के दिनों में सरदी से काँपते देखा गया है। उनके पास पहनने, ओढ़ने को बहुत कम रहता है; वे एक कोने में सिकुड़ी पड़ी रहती हैं। यह बड़ी ख़राब बात है। ऐसी अवस्था में शरीर की पूरी-पूरी हिफ़ाजत न होने से अनेक रोगों के पैदा हो जाने का भय बना रहता है।

भोजन और विश्राम

भोजन की ओर भी स्त्रियाँ प्रायः कुछ ध्यान नहीं देतीं। पर इसका मन और शरीर दोनों पर बुरा प्रभाव पड़ता है। ऋतु-धर्म के समय स्त्रियों को बासी, खट्टा, चरपरा और तेल से बना भोजन हरगिज़ न करना चाहिए और ताज़ा, हलका एवं सात्विक भोजन करना चाहिए। खट्टी चीज़ें नुक़सान और मामूली मीठी चीज़ें फ़ायदा करती हैं। बहुत-सी स्त्रियाँ विश्राम करने का मतलब चुपचाप चारपाई पर पड़े रहना समझती हैं पर यह उनकी बड़ी भारी

भूल है। दिन को सोना हर हालत में नुकसान करता है। ज्यादा कमजोरी मालूम होने पर तकिये या दीवार के सहारे पाँव फैला-कर आराम करना चाहिए। इस अवस्था में स्त्रियों को सिर्फ अच्छी बातें ही करनी चाहिएँ; इधर-उधर बकवाद करते फिरना ठीक नहीं है। ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध इत्यादि दुर्भावों को मन में न आने देना चाहिए।

एक ज़रूरी बात

चौथे दिन स्नान करके स्वच्छ वस्त्र पहनकर स्त्री को पहले थोड़ी देर भगवान् का ध्यान करना चाहिए और उससे अपने को सन्मार्ग पर चलाने और अपने कुटुम्बियों के कल्याण की कामना करनी चाहिए। फिर पति, देवर, भाई, पुत्र, प्रिय सम्बन्धी इनमें से जिसमें अधिक गुण हों और जो उपस्थित हो, उसका दर्शन करना चाहिए। पति हो तो उसके चरणों में प्रणाम करना चाहिए।

गर्भाधान

यह शर्म की बात नहीं है!

हिन्दूधर्मशास्त्र में विवाह और सन्तानोत्पत्ति को धर्म-साधन का एक प्रधान अंग माना गया है। इसीलिए इसमें संयमपूर्ण जीवन बिताने और आवश्यकतानुसार उपयुक्त सन्तान उत्पन्न कर समाज को भेंट करने में शर्म की कोई बात न थी। पर आजकल हम लोगों ने विवाह और विवाहित जीवन को इतना भोग-विलासमय और अप्राकृतिक बना लिया है कि हमारे अन्दर, अपने मन में जमी हुई कालिमा के कारण, स्वभावतः इन विषयों की चर्चा करते शर्म आती है। वेद में, उपनिषद में, स्मृतियों तथा वैद्यक-ग्रन्थों में विस्तार के

साथ इन बातों का, वैज्ञानिक ढंग से वर्णन किया गया है। और हमारे यहाँ सोलह संस्कारों में विवाह और गर्भाधान दो मुख्य संस्कार माने गये हैं। बड़े-बड़े आचार्यों का कहना है कि गर्भाधान के समय स्त्री-पुरुष की मनोवृत्ति, स्वास्थ्य, परिस्थिति इत्यादि के अनुकूल ही सन्तान उत्पन्न होती है। इसलिए सदैव विषय-भोग में लिप्त न रहकर शुभ घड़ी और मुहूर्त्त में, जब मन प्रसन्न और स्थिर हो तथा ऊँचे सात्विक भावों से पूर्ण हो, स्वस्थ एवं अधिक दिनों तक ब्रह्मचर्य-पूर्वक संयमपूर्ण जीवन बिताने के बाद, गर्भाधान करने की हमारी प्राचीन प्रथा हँसने योग्य नहीं है, न उसमें शर्म की कोई बात है; बल्कि आजकल की शर्मीली, असंयत भोगविलासमय विवाहित जीवन-प्रणाली से कहीं ऊँची और अच्छे परिणाम से भरी हुई है।

इस प्रकार के गर्भ-धारण से संयमी, सुन्दर, नीरोग और बलिष्ठ सन्तान होती है और माता-पिता का सुयश उससे बढ़ता है।

कई बाहरी लक्षणों से बच्चे के पेट में आने का पता चतुर एवं बड़ी-बूढ़ी स्त्रियाँ चला लेती हैं। गर्भ-धारण के बाद मासिक रजःस्राव प्रायः बन्द हो जाता है। पहले महीने में कभी-कभी कुछ मिचलाहट-सी आती है और सुबह उठते समय बड़ा आलस्य मालूम पड़ता है। एक-डेढ महीने बाद दाइयाँ एवं घर की बूढ़ी स्त्रियाँ स्वयं ही सब बातों का पता लगा लेती हैं।

यों तो सदा अच्छी बातों पर विचार, सात्विक आहार और शान्त स्वभाव स्त्रियों के चरित्र के आभूषण हैं पर जब उनको

यह पता चल जाय कि पेट में बच्चा है, तब उन्हें अपने स्वास्थ्य और मन को अधिक अच्छा बनाने की सदा कोशिश करनी चाहिए। बहनो ! यह याद रक्खो कि इस समय माता का जैसा रहन-सहन होगा, वैसी ही सन्तान उत्पन्न होगी।

पहले पाँच महीने

गर्भ-स्थिति के बाद के पाँच महीनों में बच्चे के शरीर के भिन्न-भिन्न अंग बनते हैं। पहले यह गर्भ एक छोटे दाग़ या छींटे के समान होता है, परन्तु धीरे-धीरे बढ़कर दूसरे महीने में एक इंच, चौथे महीने में पाँच से छः इंच और तोल में १९-२० तोले या एक पाव के क़रीब हो जाता है। पहले चार महीनों में उसकी आँखें, नाक, कान, मुँह, हाथ-पैर तथा लड़की-लड़के के भेद-सूचक अंगविशेष बन जाते हैं। इसके बाद हड्डियाँ गठित होतीं और सिर का ढाँचा पूरा होता है। जिस रूप में बच्चा उत्पन्न होता है, वह रूप तो प्रायः सात महीनों में पूरा होता है किन्तु साधारणतः बच्चे के सारे शरीर का ढाँचा पाँच महीनों के अन्दर बन जाता है।

शारीरिक विकास

अब यह बात ध्यान रखने की है कि माता के शरीर के खून से ही बच्चे का शरीर बनता और बढ़ता है और जो कुछ वह खाती है उसका उसके खून और शरीर पर बड़ा असर पड़ता है। इसलिए हृष्ट-पुष्ट सन्तान उत्पन्न करने के लिए यह जरूरी है कि गर्भ-धारण के बाद स्त्री विषय-भोग से दूर रहे, संयम से काम ले और खाते-पीते, उठते-बैठते सोते-जागते हर समय अपने शरीर का, अपने

गर्भिणी का स्वास्थ्य

स्वास्थ्य का, अपने मन का, ध्यान रक्खे। गर्भवती स्त्री को यह बात कभी न भूलनी चाहिए कि उसके स्वास्थ्य पर ही उसके पेट में स्थित एक जीव की ज़िन्दगी निर्भर है। इसलिए उसे सदा नीरोग और प्रसन्न रहना चाहिए। उठने-बैठने में सावधानी रखनी चाहिए। जोर से चलना, कूदना या उछलना, ज़्यादा गरिष्ठ एवं देर से हज़म होने वाले पदार्थों को खाना एवं एकदम आलसी बनकर बैठ रहना—इन बातों से बचना चाहिए। बहुत सी स्त्रियाँ यह समझकर कि हमें दो जीवों के लिए भोजन करना है, ऊटपटांग, बिना मात्रा का विचार किये बहुत अधिक भोजन करती जाती हैं और प्रायः सोंधी चीजें, चाट इत्यादि खाया करती हैं। बहुत-सी तो सोंधी मिट्टी, खपरैल भी तोड़कर खा जाती हैं। पर इन बातों का क्षणिक परिणाम चाहे जो हो अन्त में स्त्री और बच्चे दोनों के स्वास्थ्य पर इसका बुरा असर पड़ता है। भूख के मुताबिक, हलका, सादा और जल्द हज़म हो जाने वाला भोजन हमेशा फ़ायदा करता है। आरंभ में मिचलाहट आती है; ऐसे समय दूध, साबूदाना, मूँग की दाल की खिचड़ी इत्यादि जल्द हज़म हो जानेवाली चीजें और आम, अनार, नारंगी, अंगूर इत्यादि फल खूब खाने चाहिएँ। घी-दूध का उपयोग भी अधिक हो पर इस बात का सदा ध्यान रहे कि क़ब्ज न होने पावे। इसके लिए रोज़ भोजन के बाद एक चम्मच खाने का साफ़ सोडा (सोडा बाइकार्ब) पानी के साथ या दूध में मिला-कर लिया जा सकता है। इससे पेट साफ़ रहेगा, जलन नहीं होगी और भूख भी लगेगी। गर्भवती स्त्री को कड़ा जुलाब कभी

न लेना चाहिए अन्यथा बच्चे के विकास में बाधा पड़ेगी और उसके बनते हुए शरीर पर इसका बड़ा खराब असर पड़ेगा। कभी-कभी कच्ची-पक्की सौंफ खाँड के साथ फाँक लेने से भी पेट साफ़ हो जाता है और भूख बढ़ती है। पान में, या यों अलग भी, थोड़ी केसर रोज खाने से बच्चे के शरीर का रंग बड़ा अच्छा निकलता है।

दूसरी बात यह है कि गर्भिणी स्त्री को प्रसन्न और शान्त मन के साथ रात को शय्या पर जाना चाहिए और जहाँ तक हो नौ बजे रात से पाँच या छः बजे दिन तक अर्थात् ८-९ घण्टे अवश्य सोना चाहिए। दिन को भूल कर भी न सोना चाहिए; हाँ गर्मी के दिनों में भोजन के बाद आध घण्टे लेट सकती है।

इस प्रकार गर्भ-स्थिति के बाद के पाँच महीनों में स्त्री जितनी ही नीरोग, प्रसन्न, संयमी और स्वस्थ होगी तथा जितनी ही खून बढ़ाने वाली सात्विक चीजें खायगी बच्चे का शरीर उतना ही सुगठित और बलिष्ठ होगा। अपने स्वभाव को स्त्री जितना मधुर और शान्त रक्खेगी उतनी ही उत्तम सन्तान पैदा होगी।

शेष साढ़े चार महीने

अन्तिम साढ़े चार महीनों में बालक का सिर और दिमाग़ बनता है; हड्डियाँ सुगठित होती हैं और उसके संस्कार एवं प्रवृत्तियाँ बनती हैं। इसलिए, यद्यपि गर्भ-धारण के समय से ही गर्भिणी को अपने स्वभाव में शान्ति, मधुरता, संयम, प्रेम एवं

अन्य सात्विक वृत्तियों को बनाना चाहिए पर अन्तिम साढ़े चार महीनों में तो उसे अपना चित्त बहुत ही संयत और शान्त रखना चाहिए; आलस्य की जगह उत्साह और हर्ष से उसका चेहरा खिला रहे और वह सदा अच्छी भावनाओं, अच्छी बातों को मन में स्थान दे; अच्छी एवं चरित्र बनाने वाली पुस्तकें पढ़े। किसी से लड़ाई-झगड़ा न करे; किसी पर चिढ़कर, क्रोध करके जली-कटी बातें न करे और अपने सोने के कमरे में सुन्दर, बलिष्ठ और सात्विक आदर्श के महात्माओं के चित्र टाँगकर रक्खे जिससे उनपर उसकी निगाह पड़ती रहे। इससे सन्तान पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ेगा।

माता के मनोबल का प्रभाव

बहुत-से लोग समझते हैं कि सन्तान देना और उसे अच्छी-बुरी बनाना ईश्वर के अधीन है। यों तो दुनिया में सब कुछ ईश्वर की ही मर्जी पर है और उसी की इच्छा सबके अन्दर काम कर रही है पर ईश्वर ने मनुष्य को विवेक और बुद्धि दी है जिसके सहारे, भगवान् में विश्वास रखकर, वह अनेक आश्चर्यजनक काम कर सकता है। ईश्वर की दी हुई इसी बुद्धि की सहायता से मनुष्य चाहे जैसी सन्तान उत्पन्न कर सकता है। सन्तान का भला-बुरा होना, यदि सम्पूर्णतः नहीं तो, बहुत-कुछ माता के ऊपर निर्भर है। मैं यह कोई नई बात नहीं बता रहा हूँ। शुकदेव, अभिमन्यु, युधिष्ठिर, बुद्धदेव, नेपोलियन, सिकन्दर इत्यादि दुनिया के अनेक महापुरुषों पर गर्भ की अवस्था में ही माताओं के रहन-सहन का प्रभाव पड़ा था।

कहने का तात्पर्य यह है कि माता-पिता और विशेषतः माता या गर्भवती के मनोबल का पेट में स्थित बच्चे पर बहुत ज़्यादा प्रभाव पड़ता है। और यह प्रभाव अन्तिम साढ़े चार महीनों में बहुत बढ़ जाता है क्योंकि चार-साढ़े चार महीनों के बाद बालक का हृदय बनने लगता है। इसलिए अन्तिम साढ़े चार महीनों में गर्भिणी को बहुत सावधानी से रहना चाहिए !

मैं भावी माताओं और गर्भिणी बहनों से जोर देकर कहना चाहता हूँ कि दुनिया का भविष्य तुम्हारे हाथ है। तुम जिस

जैसी चाहे बना लो !

तरह रहोगी, जैसा सोचो-विचारोगी, तुम्हारी सन्तान भी वैसी ही होगी। इसलिए पहले इस बात को गाँठ बाँध लो और इस पर सच्चे हृदय से, दृढ़ता-पूर्वक विश्वास करो कि तुम जैसी सन्तान चाहो बना सकती हो। इस विश्वास के साथ तुम इस बात का भी निर्णय शुरू में ही कर लो कि तुम कैसी सन्तान चाहती हो। दुनिया में बहुत-से गुण हैं। उनमें किस गुण का होना तुम अपने पुत्र या पुत्री में सबसे अच्छा या आवश्यक समझती हो ? कोई माता शूर-वीर पुत्र चाहती है; कोई देशभक्त चाहती है; कोई ज्ञानी और बुद्धिमान चाहती है; कोई तेजस्वी और चरित्रवान चाहती है; कोई त्यागी, सन्तोषी और संयमी चाहती है। इसके अतिरिक्त साधारण स्त्रियाँ रूपवान, धनवान पुत्र चाहती हैं पर यह कोई बड़ी अच्छी कामना नहीं है। इसी प्रकार कोई सती-साध्वी कन्या पसन्द करेगी; कोई रूपवती और सुगठित शरीर वाली को अच्छा समझेगी; कोई तेजस्वी और परिश्रमी कन्या के लिए ला-

लायित होगी और कोई सीधी-सादी विनयी और धीरजवान लड़की पसन्द करेगी। इनमें तुम जिसे चाहो, उसे चुन लो। इसका निश्चय कर लेना बहुत जरूरी है कि तुम कैसी कन्या और कैसा पुत्र चाहती हो? मेरी समझ से, अच्छा पुत्र वह है जो भगवान् में विश्वास रक्खे; पाप से डरने वाला, त्यागी और सदाचारी हो। इसी प्रकार अच्छी कन्या वह है जो विनयी, मृदुभाषिणी, धीरजवान और साध्वी हो। इस प्रकार के पुत्र और पुत्री की कामना करके, या जिन गुणों को तुम ज्यादा अच्छा समझो उनका निश्चय करके अन्तिम साढ़े चार-पाँच महीनों में सदा यह प्रार्थना करो कि ऐसी सन्तान हो। इसके साथ तुम्हारा आचरण भी वैसा ही होना चाहिए जैसा तुम अपनी सन्तान के अन्दर देखना चाहती हो। अर्थात् यदि तुम सच्चरित्र, शान्त स्वभाव का, त्यागी और सन्तोषी पुत्र चाहती हो तो तुमको सदा अपना स्वभाव शान्त रखना चाहिए; तुम्हारे मन में कोई बुरी भावना नहीं आनी चाहिए; दूसरों के प्रति तुम्हारा व्यवहार मधुर और ईर्ष्या-द्वेष एवं लोभ से रहित होना चाहिए और विषय-भोग से दूर रहना चाहिए। इसी प्रकार सोचो कि यदि पुत्र की जगह कन्या हुई तो वह सती-साध्वी और विनयी हो और स्वयं भी वैसा ही रहन-सहन, विचार रक्खो। एक क्षण भी व्यर्थ की बातों में न गँवाओ।

त्यागी और सच्चरित्र—यदि तुम त्यागी, धार्मिक, सच्चरित्र एवं शान्त सन्तान चाहती हो तो राम, बुद्ध, ईसा, सावित्री, सीता, दमयन्ती, गांधी इत्यादि की जीवनियाँ पढ़ो; उनके जीवन

की उन बातों को बार-बार याद करो जिन्हें तुम अपनी सन्तान में देखना चाहती हो। यदि मिल सके तो उनके चित्र कमरे में सदा आँख के सामने रक्खो। यदि पुस्तकें न मिल सकें तो उनकी कथायें जानकर और सच्चिरित्र स्त्री-पुरुषों से सुनो। तुम स्वयं अपना जीवन वैसा ही बनाने की कोशिश करो।

शूर-वीर—यदि शूर-वीर एवं हृष्ट-पुष्ट सन्तान चाहती हो तो लक्ष्मण, कर्ण, अर्जुन, सिकन्दर, नेपोलियन शिवाजी, राणा प्रताप, चाँदबीबी, लक्ष्मीबाई (झाँसी की रानी) की जीवनियाँ पढ़ो और उनके चित्र देखा करो। राजपूतों की वीरता-भरी कहानियाँ पढ़ा करो।

देशभक्त—देशभक्त सन्तान के लिए भिन्न-भिन्न देशों की स्वतन्त्रता की कथायें, मैज़िनी, गेरीबाल्डी, मैकस्विनी, खुदीराम, कन्हाईलाल, तिलक, चित्तरंजनदास, लाजपतराय, मोतीलाल इत्यादि की जीवनियाँ पढ़ो; उनके चरित्र एवं चित्र पर सदा ध्यान रक्खो।

ज्ञानी—ज्ञानी सन्तान के लिए प्राचीन ऋषि-मुनियों, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ इत्यादि के चित्र-चरित्र पर विशेष ध्यान देना चाहिए। सन्तों के भजन एवं जीवनियाँ भी उपयोगी हैं।

इसी प्रकार जैसी सन्तान की इच्छा हो उसी तरह के आचार-विचार, पठन-पाठन में लगा रहना चाहिए और रोगी, अन्धे-लूले-लँगड़े, चिड़चिड़े, लालची, विषयी स्त्री-पुरुषों के दर्शन से भी,

यथासंभव, बचना चाहिए। घर में कोई रोगी हो तो उसके बारे में बहुत ज्यादा न सोचना चाहिए अन्यथा बच्चा रोगी होगा। घर-गृहस्थी के कामों में यथासंभव सहायता करते हुए भी किसी बात की अधिक चिन्ता न करनी चाहिए।

तुम देख सकती हो कि एक ही माता-पिता की भिन्न-भिन्न सन्तानें भिन्न-भिन्न, और कभी-कभी एक-दूसरे के विरोधी स्वभाव की होती हैं। इसका कारण यही है कि गर्भावस्था में माता-पिता के जैसे विचार और आचार होते हैं उसका उनपर प्रभाव पड़ता है। गर्भावस्था में यदि माता-पिता का जीवन चिन्ता और दुखों में बीतेगा तो सन्तान का स्वभाव भी, बहुत करके, करुण, उदास, चिन्तित और दुःखमय होगा। इससे इस विषय में खूब सावधानी से काम लो और अपने शरीर एवं मन को सदा नीरोग, स्वस्थ, शान्त, प्रसन्न और सुविचारों से भरा-पूरा रक्खो। यह मत भूलो कि तुम्हारी जरा-सी ग़लती से तुम्हारी सन्तान का सारा जीवन नष्ट हो जायगा और फल-स्वरूप तुम्हें भी आगे बहुत कष्ट भोगने पड़ेंगे।

दुनिया के अनेक विद्वानों का कहना है कि पिता की अपेक्षा माता का सदा सन्तान पर ज्यादा प्रभाव पड़ता है। बच्चा माता के पेट में, उसीके रक्त-मांस से बढ़ता है; पैदा होने पर उसीका दूध पीता है। वही उसे सुलाती, खिलाती-पिलाती है; उसी की गोद में वह बढ़ता है; उसीके लाड़-प्यार, क्रोध और प्रसन्नता से उसके संस्कार बनते हैं। बच्चे के जीवन का वही केन्द्र है; वही उसकी रक्षा है, वही उसकी छाया है; बिना उसके उसका जीना

कठिन है। बिना पिता के बच्चा माता के साथ बिना किसी असुविधा का अनुभव किये हुए बढ़ सकता है पर यदि दुर्भाग्य-वश माता की मृत्यु हो जाय तो बच्चा, बहुत करके तो, मर ही जायगा और बच गया तो भी, रोगी, अनाथ, दुःखी और उदास होगा। इन सब बातों से सहज ही सन्तान पर माता के प्रभाव का अनुमान किया जा सकता है। इसलिए माता होने वाली बहनें सदा इन बातों को याद रक्खें तो उनका भला होगा।

गर्भ का विकास

मैं ऊपर लिख चुका हूँ कि बिल्कुल आरंभ में गर्भ एक जरा-से दाग़ के समान, बीच में कुछ उभरा, होता है। दूसरे महीने एक पैसे के बराबर, चौथे महीने पाँच-छः इंच लम्बा और एक पाव वजन का और नवें महीने, सब अंगों के ठीक-ठीक बन जाने पर, लग-भग बीस इंच लम्बा और तोल में साढ़े तीन सेर रहता है। विस्तार के साथ नीचे के ❀ नक़शे में देखिए—

❀ देखिए श्री अयोध्याप्रसाद का 'सन्तति-शास्त्र'।

समय	अवस्था	विशेष
११. दसवाँ हफ्ता	गला साफ़ दिखाई देता है। लम्बाई ढाई इञ्च। वज़न चार-साढ़े चार तोले।	
१२. ग्यारहवाँ हफ्ता	पलकें तैयार हो जातीं पर बंद रहती हैं नाक के छेद बन जाते हैं। ओठ दिखाई पड़ते हैं पर मुँह बन्द रहता है। कलेजा तैयार हो जाता है। लम्बाई तीन इञ्च; वज़न छः तोले।	
१३. बारहवाँ हफ्ता	हाथ-पाँव उंगलियों-सहित साफ़ दिखते हैं। लड़का लड़की का अन्तर स्पष्ट होने लगता है। नाभि में, बच्चे तक खून पहुँचाने वाली, नाल साढे तीन इञ्च लम्बी होती है। कमर एवं पाँव की पिंडलियाँ बनने लगती हैं। वज़न लगभग आध पाव; लम्बाई चार इञ्च।	वागभट्ट और चरक नामक प्राचीन आचार्यों का मत है कि तीसरे महीने सब अंग एक साथ ही उत्पन्न होते हैं।
१४. चौथा महीना	रग-पट्ठे दिखाई देते हैं। चेहरा लम्बा हो जाता है। फेफड़ा तैयार हो जाता है। बच्चे का हिलना भी कुछ-कुछ जान पड़ता है। लम्बाई छः इञ्च; वज़न एक पाव।	'शरीर-कल्पद्रुम' में लिखा है कि इस समय स्त्री को उसकी

समय	अवस्था	विशेष
१५. पाँचवाँ महीना	सिर पर भूरे बाल उगते हैं; चमड़ी चिकनी होती है; रग-पट्ठे मज़बूत बन जाते हैं। बच्चा अकसर हिलता है। लम्बाई दस इञ्च। वज़न डेढ़ पाव।	इच्छा के अनुसार अच्छी चीज़ें न खिलाने से सन्तान अंगही होती है। वाग्भट्ट और सुश्रुत के मत से चेतनता आती है; बुद्धि का विकास होने लगता है।
१६. छटा महीना	ऊपर की चमड़ी तैयार होती है; अंगुलियों में नाखून उगते हैं। लम्बाई एक फुट और वज़न एक सेर।	
१७. सातवाँ महीना	इस महीने के अन्त तक शरीर के सब हिस्से बन चुके रहते हैं। बच्चा गर्भाशय में उलटा हो जाता है; बोझ के कारण पाँव ऊपर और सिर नीचे हो जाता है। पाँव माता की छाती की ओर रहते हैं; पलक खुलने लगती हैं। लम्बाई १४ इञ्च; वज़न डेढ़ सेर।	सात-आठ महीनों में भी सन्तान उत्पन्न होकर जीती देखी गई है पर ज़्यादातर बचती नहीं।

समय	अवस्था	विशेष
१८. आठवाँ महीना	सब अंग पुष्ट होते हैं । चेतनता आती है; पलकें खुलने लगती हैं । लम्बाई डेढ़ फुट और वज़न लगभग ढाई सेर ।	
१९. नवाँ महीना	इस समय बच्चे का शरीर पुष्ट होता है । लम्बाई २० इञ्च तक और वज़न तीन से पाँच सेर तक होता है ।	बहुत-से विद्वानों का मत है कि ७ सेर वज़न तक के बच्चे पैदा हो सकते हैं ।
२०. दसवाँ महीना	इसमें पूर्ण विकसित अवस्था में सदा बच्चा पैदा होने की सम्भावना बनी रहती है । चेतनता पूरी हो जाती है ।	

पेट में बच्चे का पोषण और विकास माता के खून से ही होता है। गर्भ-स्थिति के प्रायः दो महीनों बाद नाल बनता है। यह नाल बच्चे की नाभि से लगा रहता है और इसका सम्बन्ध माता के खून एवं रस की नाड़ियों से रहता है। इसलिए गर्भिणी जो खाती-पीती है उसीके द्वारा बने रस और खून से बच्चे का विकास होता है। इससे सिद्ध होता है कि गर्भिणी का स्वास्थ्य जितना ही अच्छा रहेगा; उसके शरीर में जितना ही खून बनेगा, बच्चे का विकास उतना ही अच्छा होगा।

किन्तु इसके साथ ही यह आश्चर्य की बात है कि बहुत-सी हृष्ट-पुष्ट और बलवान स्त्रियों को दुर्बल सन्तान उत्पन्न होती देखी जाती है और बहुत-सी कमजोर स्त्रियों को खूब हृष्ट-पुष्ट और बलवान् सन्तान उत्पन्न होती है। कहीं-कहीं यह भी देखने में आता है कि माता-पिता दोनों सबल और स्वस्थ हैं; गर्भावस्था में स्त्री ने भोजन भी पुष्टिकर किया फिर भी निर्बल सन्तान उत्पन्न हुई। असल बात यह है कि बच्चे का सबल होना मुख्य रूप से गर्भिणी के संयम, गर्भ-स्थिति के समय की मनोवृत्ति, संस्कार और भोजनादि पर निर्भर है।

गर्भ-स्थिति से बच्चा पैदा होने तक प्रायः २८० दिन या नौ महीने दस दिन लगते हैं। कभी इससे ज्यादा दिन भी लग जाते हैं। *

* सुश्रुत के मत से ग्यारहवें महीने भी बच्चा पैदा हो सकता है। सु० शा० अ० ३,३५

प्रसव

प्रसव-काल अर्थात् बच्चा पैदा होने का समय गर्भिणी के लिए बड़ा कठिन होता है। कितनी ही स्त्रियाँ पानी से निकाल ली हुई मछली के समान बेहाल होकर तड़पती हैं। उस पीड़ा का ठीक-ठीक वर्णन शब्दों में हो नहीं सकता। प्राचीन कवियों ने भी इसका वर्णन किया है। तुलसीदासजी कहते हैं—'बाँझ कि जान प्रसव की पीरा?'—बाँझ स्त्री प्रसव की पीड़ा क्या जान सकती है? किन्तु जहाँ बहुत-सी स्त्रियों को प्रसव-काल में असह्य वेदना होती है वहाँ गाँवों की छोटी जातियों की स्वस्थ स्त्रियों को बच्चा पैदा होने के घण्टे-आध घण्टे पहले तक खेतों में काम करते देखा गया है। उनके लिए प्रसव में इतनी कठिनाई नहीं होती; न दाइयों की जरूरत पड़ती है, न वे इतना हाय-तौबा मचाती हैं! इससे यह प्रकट होता है कि यद्यपि प्रसव की पीड़ा कठिन होती है फिर भी इसकी कमी-ज्यादती गर्भिणी के स्वास्थ्य और स्वभाव पर निर्भर है। कमजोर या कोमल स्त्रियों को निश्चय ही गहरी वेदना सहनी पड़ती है; आलसी और आरामतलब स्त्रियों का भी बुरा हाल होता है पर जो स्त्रियाँ आलसी नहीं हैं और सदा काम-काज में लगी रहती हैं, धीरज से काम लेती हैं उन्हें उतना कष्ट नहीं होता। इसलिए जो बहनें स्वस्थ और उत्तम संतान के साथ ही यह चाहती हैं कि प्रसव-काल में उन्हें अधिक पीड़ा न हो उन्हें सदा आलस्य से दूर रहना और परिश्रमपूर्वक घर-गृहस्थी के काम-काज करना चाहिए। जो स्त्रियाँ रोज मील-आधा मील टहलती हैं,

प्रसव-पीड़ा

उन्हें बहुत कम कष्ट होता है। पर इसका यह मतलब नहीं कि गर्भिणी से बहुत अधिक काम लेना चाहिए। गर्भिणी को उछलने-कूदने, पेट दबनेवाले काम, दौड़ने, भारी बोझ उठाने इत्यादि से और अंतिम दो-तीन महीनों में, यदि संभव हो, आग से दूर रहना चाहिए। अन्य कार्यों को खूब मन लगाकर धीरे-धीरे पर उत्साह के साथ करना चाहिए।

आसन्न-प्रसूता के लक्षण

बच्चा पैदा होने का समय ज्यों-ज्यों नजदीक आता है, गर्भिणी का शरीर और मुँह सूखता और कुम्हलाता जाता है। मुँह और आँखों में शिथिलता मालूम पड़ती है; अन्न से अरुचि हो जाती है। एक प्रकार का जल गिरता है। ❀ इन लक्षणों से अनुमान किया जा सकता है कि बच्चा पैदा होने का समय आ गया है। ये लक्षण उन स्त्रियों में विशेषकर होते हैं जो पहली बार गर्भवती होती हैं।

प्रसव के समय से १४ घण्टे पहले प्रायः पेट के पिछले हिस्से में दर्द बढ़ने लगता है। इसका कारण यह कि बालक धीरे-धीरे खिसकता है। झिल्ली की जिस पतली थैली में बच्चा रहता है वह फैलती और आगे आती

भूलें

जाती है। इस समय ज्यादा पीड़ा होती है क्योंकि बच्चा पैदा होने के कुछ पहले पतली झिल्ली फट जाती है और बच्चे के

* बच्चा पैदा होने के ८—१० दिन पहले से ही पेट कुछ हलका मालूम पड़ता है; पेशाब, जल्दी-जल्दी उतरता है; टट्टी साफ़ नहीं होती और उसमें तकलीफ़ भी होती है।

साथ पेट की खेड़ी भी खिंचती आती है। इस समय स्त्रियाँ बड़ी असावधानी करती हैं, व्याकुल होकर बार-बार उठती-बैठती हैं; चलती-फिरती हैं। कई उकड्डू बैठकर काँखती और जोर लगाती हैं। बड़ी-बूढ़ी स्त्रियाँ पेट मसलती हैं। लोग समझते हैं कि इससे बच्चा जल्दी होगा। यद्यपि इससे बच्चे के जनने के समय में घण्टे-आध घण्टे की कमी हो सकती है पर इन कामों से कभी-कभी बहुत ज्यादा नुक़सान हो जाने की भी सम्भावना बनी रहती है! इन बातों से बच्चा कभी-कभी टेढ़ा हो जाता है और उसके अङ्ग बेडौल हो जाते हैं। इसीलिए अंग्रेज़ों के यहाँ प्रायः गर्भिणी को पलङ्ग पर लिटा कर ही बच्चा जनवाते हैं। वैद्यक-ग्रन्थों का भी यही उपदेश है। इससे बच्चा सुडौल रहता है।

भयंकर अवस्था

प्रकृति का साधारण नियम यह है कि बच्चा सिर के बल पैदा होता है। पर कभी-कभी कूदने-फाँदने, चोट लग जाने या गर्भिणी के रोगी होने की अवस्था में बालक उलटा या टेढ़ा भी हो जाता है। उस अवस्था में पहले क्रमशः पाँव और हाथ नीचे दिखते हैं। चतुर दाइयों का कर्त्तव्य है कि ऐसी अवस्था में बड़े धीरज, सावधानी और शान्ति से काम लें और बच्चे के सिर को धीरे-धीरे नीचे लावें। कभी कभी सिर और हाथ, सिर और एक पाँव या चारों हाथ-पांव साथ निकलते हैं। यह बड़ी भयङ्कर अवस्था है; इसमें बच्चे और माता दोनों की मृत्यु तक हो सकती है इसलिए कई बार आप्रेशन कराके तब बच्चे को पेट से निकालते हैं।

जब बच्चा गर्भ से बाहर आता है, उस समय दाई या घर की चतुर स्त्रियों को बड़ी सावधानी रखनी चाहिए। जब बच्चे का सिर निकले तो उसके साथ ही यह देख लेना चाहिए कि सिर के साथ कुछ और तो नहीं लिपटा है। कभी-कभी सिर के साथ नाल भी लिपटा हुआ बाहर निकलने लगता है। यदि ऐसा हो तो बच्चे के सिर से नाल निकाल देना चाहिए। सिर को दाहिने हाथ से सम्हालना और बायें हाथ से पेट को धीरे-धीरे दबाना चाहिए। इससे बच्चा सरलता से पेट के बाहर आ जायगा। यदि इस समय देर लगे तो समझना चाहिए कि बच्चे का सिर ज्यादा बड़ा है या कोई विकार है। * बहुत-सी दाइयाँ बच्चे को खींचकर निकालती हैं पर यह बुरी बात है; इससे हाँथ-पाँव खराब और टेढ़े हो जाने का भय रहता है।

सौरी-घर

गर्भिणी स्त्री के लिए बच्चा जनने का जो कमरा होता है उसे सौरी-घर या प्रसूति-गृह कहते हैं। हमारे देश में, अज्ञान-वश, इसके लिए प्रायः सबसे ख़राब और गन्दी एवं प्रकाश-हीन कोठरी चुनी जाती है और उसमें हवा आने के सारे रास्ते, सूराख़ इत्यादि तक, बन्द कर दिये जाते हैं। बच्चों की बढ़ती हुई मृत्यु-संख्या का एक बड़ा कारण यह मूर्खता भी है। यदि बुद्धि से काम लिया जाय और स्वास्थ्यकर नियमों पर ध्यान दिया जाय तो बहुत-सी

---

* 'सन्तति-शास्त्र, (श्री अयोध्याप्रसाद) काशी, १९२२।

कठिनाइयों और अनेक प्रकार की दुर्दशा से हमारी रक्षा हो सकती है।

सबसे पहली बात, जिसपर ध्यान देना बहुत जरूरी है, यह है, कि सौरो-घर खूब साफ-सुथरा, प्रकाशमय और हवादार होना चाहिए। तङ्ग और अन्धेरी कोठरी में गर्भिणी को रखने से अनेक रोग हो जाते हैं। यह जरूरी नहीं है कि बड़ा भारी और शानदार कमरा हो; भले ही वह कच्चा-मिट्टी का हो पर* लम्बा-चौड़ा हो उसमें प्रकाश आने को गुंजाइश हो, आस-पास बदबूदार नालियाँ या पाखाना इत्यादि न हो। ऐसे कमरे को अपनी हैसियत और सुविधा के अनुसार गोबर-मिट्टी या चूने से लीप-पोत एवं धोकर साफ रखना चाहिए और खूब सूख जाने पर घण्टे-आध घण्टे अंगीठी जलाकर कमरे को बन्द रखना चाहिए। इससे फ़ायदा यह होगा कि धुएँ के कारण विषैले कीड़े और मच्छर आदि मर जायँगे। इसके बाद दशांग, लोबान या अगरबत्ती इत्यादि सुगन्धित चीजें जलाकर उसे शुद्ध कर लेना चाहिए।

स्थान

इसके बाद गर्भिणी को स्वच्छ धुले हुए वस्त्र पहनाकर उसके अन्दर ले जाना चाहिए। आजकल स्त्रियाँ बहुत साधारण, पुराने

---

* वैद्यक के प्रसिद्ध प्राचीन आचार्य वाग्भट्ट तक ने लिखा है—

प्राक्चैव नवमान्मासात् सूतिकागृह माश्रयेत।

देशे प्रशस्ते सम्भारे सम्पन्नं साधकेऽहति॥

इसका मतलब यह है कि नवें महीने में लम्बे-चौड़े हवादार स्थान में बने एवं सब आवश्यक सामग्री से युक्त घर को सूतिकागृह बनाना चाहिए।

और कभी-कभी मैले वस्त्र पहनकर अन्दर जाती हैं क्योंकि बहुत जगह ऐसा क़ायदा है कि प्रसूता या जच्चा के काम में आने वाले वस्त्र फिर आगे काम में नहीं आते और चमारिन या दाई ले जाती है। थोड़े-से कपड़ों के लोभ से ऐसा करना बड़ी ख़राब बात है क्योंकि पुराने और गन्दे कपड़ों में कीड़े होते हैं जो शरीर की कमजोरी के कारण बहुत जल्द गर्भिणी के स्वास्थ्य को नष्ट करने वाले स्थायी रोग उत्पन्न कर जाते हैं। बच्चा पैदा होने के पहले या सौरी-घर में भेजते समय गर्भिणी को बहुत ही हलके और ढीले वस्त्र पहनाना चाहिए। साड़ी बहुत छोटी और पतली हो; जिससे पेट कस न जाय। पिन से बाँध देना सबसे अच्छा उपाय है। पेट के ऊपर एक पतली पट्टी बाँधने से पेट में बच्चे का बोझ कम मालूम पड़ता है।

ओढ़ना बिछौना

गर्भिणी के लिए भीतर जो पलङ्ग या चारपाई हो वह खूब मज़बूत, कसी और खटमल इत्यादि जन्तुओं से रहित होनी चाहिए। पलङ्ग बहुत ऊँचा न हो। लकड़ी का बड़ी चौकी इस काम के लिए अधिक उपयुक्त है। उसपर एक गद्दा, फिर ऊपर एक या दो कम्मल, फिर दरो, उसपर एक किरमिच या मोमजामा बिछाना चाहिए और सबके ऊपर धुली हुई साफ़ सफेद चादर होना चाहिए। ओढ़ने के लिए भी धूप में सुखाये हुए ऋतु के अनुकूल काफ़ी कपड़े होने चाहिए। गर्भिणी के उपयोग—बिछाने ओढ़ने या अन्य कामों—के लिए जो कपड़े हों उन्हें पहले से ही खौलते हुए गर्म पानी में देर तक रखकर, निचोड़कर, सुखा रखना चाहिये। पानी में थोड़ा

पारा डाल देने से कपड़ों के अन्दर के सब ज़हरीले कीड़े मर जाते हैं।

बच्चा होने के पहले से सब सामान तैयार रखना चाहिए। प्रायः किसी चीज की जरूरत पड़ने पर स्त्रियाँ घबड़ाई-सी इधर-उधर दौड़ती फिरती हैं; उस समय जो चीजें घर में होती हैं वे भी नहीं मिलतीं। इसलिए अच्छा यह है कि प्रसूति-गृह में गर्भिणी को भेजने के पहले से ही सब सामान वहाँ लाकर क़ायदे से सजा कर एक तरफ़ रख दिये जायँ। निम्नलिखित चीजें जरूरी हैं—

आवश्यक सामग्री

१—खूब अच्छा लम्बा-चौड़ा कसा पलङ्ग या लकड़ी की चौकी।

२—एक साफ़ गद्दा, दो-तीन कम्मल (बिछाने के लिए), एक दरी, मोमजामा या किरमिच के दो बड़े टुकड़े; चार साफ़ धुली सफेद चादरें (बिछाने के लिए); ओढ़ने के लिए ऋतु के अनुकूल कपड़े; पतली बारीक मलमल-जैसी खादी या स्वदेशी वस्त्र के आध-आध गज के चार टुकड़े। थोड़ा साफ़ पुराना वस्त्र। डेढ़ गज लम्बी दो-तीन गिरह चौड़ी कपड़े की साफ़ धुली पट्टी। दो तौलिये।*

३—स्टोव, अँगीठी, कढ़ाई, दो-तीन पानी गरम करने के बर्तन।

* सब कपड़े खौलते गर्म पानी में उबाल कर सुखाये हुए होने चाहिएँ।

४—गर्म पानी, तेल, सरसों का तेल, अच्छा साबुन (कार्बोलिक हास्पिटल सोप हो तो अच्छा), तेज़ चाकू, तेज़ बड़ी कैंची, नया रेशम, सूत की लच्छी, मोमबत्ती, दियासलाई, बोरिक पाउडर, बेसन, शहद, सोंठ, अजवाइन, चम्मच, उपले की छनी हुई राख, अरण्डी का तेल और मिल सके तो फिनायल स्पंज।

हमारे यहाँ हवा को लोग, अज्ञानवश, भयानक समझने लगे हैं। वे यह भूल गये हैं कि हवा का दूसरा नाम हमारे यहाँ प्राण है। स्वच्छ और ताजी हवा से बढ़कर स्वास्थ्यकर वस्तु दुनिया में दूसरी नहीं है। इसलिए ताजी हवा कभी नुक़सान नहीं करती। हाँ, जब तेज़ हवा चलती हो तो उसके झोंकों से गर्भिणी या बीमार को बचाना चाहिए। गर्भिणी के सामने वाले दर्वाज़े या खिड़कियाँ बन्द रखनी चाहिएँ जिससे हवा सीधे उसके ऊपर न आवे; बग़ल की खिड़कियाँ खुली रहनी चाहिएँ जिससे हवा कमरे में आती रहे पर उसके तेज़ झोंके गर्भिणी तक न पहुँचे। यह याद रक्खो गर्भिणी के लिए भी और बच्चा पैदा होने के बाद बच्चे के लिए भी शुद्ध वायु बड़ी ज़रूरी चीज़ है।

हवा से न डरो !

साफ़-सुथरे कपड़ों का इस्तेमाल दूसरी बात है जिसकी तरफ़ ध्यान देना चाहिए। आश्चर्य की बात तो यह है कि बच्चा पैदा होने की खुशी में जहाँ बहुत-सा रुपया दान-दक्षिणा और उत्सव-बधावे में ख़र्च कर दिया जाता है वहाँ प्रसूता (जच्चा) को दस दिन फटे-पुराने गूदड़ों में ही क़ाटने पड़ते हैं। इससे बड़ी

हानि होने की संभावना रहती है। इसलिए चाहे और ख़र्चों में कमी कर दी जाय पर इन बातों में कमी न करनी चाहिए।

तीसरी बात यह है कि सौरी-घर या प्रसूति-गृह में आग जलाने और धुँआ करने की बड़ी बुरी रीति प्रचलित है। एक

धुआँ मत करो !

ओर आग जलाई जाती है, दूसरी ओर हवा आने के सारे रास्ते बन्द कर दिये जाते हैं। यह याद रखने की बात है कि आग में एक तरह की विषैली गैस रहती है जो बहुत जल्द हवा को ख़राब कर देती है। इसलिए आग उसी हालत में जलानी चाहिये जब ख़ूब सरदी पड़ रही हो या पानी बरसने से नमी बढ़ गई हो या शीत लग जाने का डर हो। गर्मी के दिनों में या दिन को जब हवा में सर्दी न हो सौरी-घर में आग हर्गिज़ न जलानी चाहिए और ठण्ड के दिनों में भी सिगड़ी या अँगीठी में कोयले इत्यादि बाहर ही जलाकर, धुँआ बन्द हो जाने पर ही, कमरे के अन्दर ले जाना चाहिए। चाहे ख़ूब सर्दी ही पड़ रही हो, कमरे के अन्दर धुँआ हर्गिज़ न होने देना चाहिए। इससे साँस लेने में तकलीफ़ होती है और फेफड़ों पर बहुत ज़ोर पड़ता है तथा हवा विषैली हो जाती है। गर्भिणी को गर्मी पहुँचाने की सबसे अच्छी तरकीब तो यह है कि गर्म पानी की बोतलें भरकर पलंग पर, उसके पास दोनों तरफ़ रख दी जायँ।

प्रसव के बाद

बच्चा जनाने के लिए आजकल जो दाइयाँ, चमारिनें या नाइनें आती हैं वे अत्यन्त मूर्ख होती हैं; उनको बच्चे और माता की सुविधा और सेवा का उतना ध्यान नहीं रहता जितना भरपूर टके वसूल करने का रहता है। इसलिए जहाँ मिल सकें होशयार और पासशुदा दाई को बुलाना चाहिए। दाई मधुरभाषिणी और साफ़-सुथरा रहने वाली हो। जिनको ये सुविधायें प्राप्त न हो सकें उनको भी निम्नलिखित बातों पर जरूर ध्यान देना चाहिए —

दाई कैसी हो ?

१—अच्छी से अच्छी और सबसे होशयार दाई को बुलाना चाहिए।

२—सौरी-घर में प्रवेश करने के पूर्व गरम या ताजा पानी से अच्छी तरह उसके हाथ-पैर, मुँह धुलवा देना चाहिये और उसे साफ कपड़े पहनाना चाहिए। दोनों हाथों के नाखून अवश्य कटवा देने चाहिएँ।

३—बच्चा होने के बाद उसकी नाभि में लगा हुआ नाल भी बाहर आ जाता है। यह वही नाल है जिसके द्वारा माता के शरीर से खून एवं अन्य आवश्यक सामग्री, गर्भावस्था में, बच्चे के शरीर में पहुँचती

रहती है। बच्चा होने के कुछ देर बाद इस नाल को काटा जाता है। इस नाल को काटने में हमारे यहाँ बड़ी मूर्खता और असावधानी से काम लिया जाता है। सच पूछिए तो बच्चों के शरीर के भविष्य का इतिहास बहुत-कुछ प्रसव के समय की सावधानी और नाल के ठीक-ठीक काटने पर निर्भर है। गावों में या साधारण लोगों के यहाँ जो चमारिनें नाल काटने आती हैं, वे अपने साथ एक हँसिया या भोथरी छुरी लाती हैं। इस हँसिये या छुरी से न जाने कितने बच्चों के नाल कटे होते हैं; इसमें अनेक रोगों के जहरीले कीड़े भरे रहते हैं। इसे वे सब धोती भी नहीं। इसलिए ऐसे औजार से नाल काटने में बच्चों को अनेक रोग जन्म से ही हो जाते हैं। इस समय बच्चा बड़ा कोमल होता है और दुनिया की बाहरी कठिनाइयों को सहने की शक्ति उसके अन्दर बिलकुल नहीं होती; इससे स्वभावतः बाहरी कीटाणुओं का असर उसके शरीर पर बहुत जल्द होता है। ऐसे गन्दे औजार से नाल काटने पर एक खास

हत्या मत करो !

तरह का रोग (जिसे 'टिटनेस' 'धनुस्तम्भ' या 'जमोगा' कहते हैं) हो जाता है। इस रोग में बच्चा रोता, छटपटाता, शरीर ऐंठता और प्रायः दुनिया से चल बसता है। बहुत जगह ऐसा भी रिवाज है कि प्रत्येक कुटुम्ब में इसके लिए अलग एक छुरी रहती है। बाप-दादों के समय से चली आती हुई, जंग लगी, इसी भोथरी छुरी से कुटुम्ब के सब बच्चों के नाल काटे जाते हैं। यह रिवाज भी बड़ा खतरनाक है। क्योंकि बहुत दिनों के रक्खे और नित्य उपयोग में न आने वाले धातु में छोटे-छोटे जहरीले कीड़े पैदा हो जाते हैं जो बच्चे के खून में मिल जाते और तरह-तरह के कठिन रोग पैदा कर देते हैं। दूसरी बात यह कि इस भोथरे औजार से काटने पर नाल खिंच जाती है; उससे ज्यादा खून निकालने के कारण बच्चा या तो मर जाता है या बहुत कमजोर हो जाता है। यदि भगवान् की दया से इन दोनों बातों से रक्षा हो गई तो भी नाल पक कर घाव हो जाता है और बच्चे को बड़ा कष्ट देता है।

मैंने सुना है कि कहीं-कहीं इससे भी बुरे ढंग से नाल काटने का काम किया जाता है। कहीं ठेकरे से रगड़कर और कहीं पतली लकड़ी से भी नाल काटते हैं। इससे बच्चे को बड़ा कष्ट होता है। नाल काटने में हमेशा जल्दी करनी चाहिए क्योंकि जबतक नाल नहीं कटता बच्चे को साँस लेने में बड़ी कठिनाई पड़ती है। नाल कटते ही बच्चा साँस लेने लगता है।

नाल काटने की विधि

नाल काटने की सबसे अच्छी सुविधाजनक और स्वास्थ्यकर रीति यह है कि बच्चा पैदा होने के पहले ही एक नई और खूब तेज़ बड़ी कैंची खौलते हुए पानी में डाल रखनी चाहिए और बच्चा पैदा होने पर उसको नाल काटने के काम में लाना चाहिए। *इसकी तरकीब यह है कि नाभि से चार अंगुल छोड़ कर नाल पर एक रेशमी या साधारण साफ़ तागे से मज़बूत गाँठ बाँधे और फिर पहली गाँठ से दो इंच या लगभग चार अंगुल पर वैसी ही दूसरी गाँठ बाँधे*

फिर दोनों गांठों के बीच से नाल को उसी तेज़ कैंची से झटपट काट दे । इस तरकीब से खून बहुत थोड़ा गिरता है और बच्चे को कष्ट भी नहीं होता ।

इस तरह काटने के बाद नाल का जो हिस्सा बच्चे की नाभि से लगा रहता है, उसके भी पक जाने का डर बना रहता है । इसलिए इसमें भी एक धागे से गाँठ बाँधकर उस धागे को बच्चे के गले में माला की तरह पहना देना चाहिए । नाल के कटे हुए ऊपरी हिस्से में थोड़ा-सा बोरिक पाउडर भर कर उसपर एक साफ़-मखमल-जैसी खादी का टुकड़ा रखकर उसे एक हलकी पट्टी से बाँध देना चाहिए । बोरिक पाउडर के ऊपर कपड़े का जो टुकड़ा रक्खा जाय वह खौलते पानी में दो मिनट तक भिगोकर रक्खा जाय जिससे उसके ज़हरीले कीड़े नष्ट हो जायँ । नाल को सदा धूल या और तरह की मैल से बचाना चाहिए, नहीं तो उसके पक जाने का बड़ा डर रहता है ।

बहुत-से लोग कटे हुए नाल में गरम राख या कई चीज़ें लगाते हैं

"बच्चे की नालमें एक कण कस्तूरी और जरासी राय सेंदुर भरकर सेंक देने से सदा के लिए बालक पित्त-प्रधान प्रकृति का हो जाता है और कफ या बादी उसे जीवन में कम सताते हैं।"*

बच्चा पैदा हो जाने के कुछ देर बाद माता को कठिन पीड़ा होती है। कभी-कभी ज्यादा दर्द के कारण वह बिलकुल बेहोश हो जाती है। इस समय बड़ी सावधानी की आवश्यकता पड़ती है। दाई को बालक की ओर ध्यान देना चाहिए, साथ ही उसे चाहिए कि माँ के पेट को हाथों से दबा रक्खे। इससे भीतर की थैली (जरायु) फैलती नहीं। अनजान दाइयाँ कभी-कभी माँ को उठाकर खड़ा कर देती हैं कि खून गिर जाय; ऐसा करना ठीक नहीं है। बच्चा पैदा होने के साथ या थोड़ी देर बाद खेड़ी, आमर या आंवल गिरती है; इसमें खून-मल इत्यादि लगे रहते हैं। जबतक यह न गिरे पेट दबाये रहना चाहिए, इससे वह जल्द निकल आती है। इस आमर का थोड़ी भी मात्रा में पेट में रह जाना बड़ा हानिकर होता है; जिनके पेट में इसका एक भी टुकड़ा रह जाता है वे प्रसव के अनेक रोगों में फंस जाती हैं। बच्चा पैदा होने के बाद गर्भाशय धीरे-धीरे सिकुड़ कर अपनी पहले-जैसी अवस्था में आ जाता है परन्तु खेड़ी रहजाने से भली-भाँति सिकुड़ने नहीं पाता, खून बहुत निकल जाता है। भीतर जो टुकड़ा रह जाता

ध्यान देने की बातें

* 'सफल-माता' पृष्ठ ९६-९७, चाँद-कार्यालय, प्रयाग।

है, वह सड़ जाता है। प्रसूति-ज्वर इत्यादि भयङ्कर रोग, जिनसे बचना कठिन है, इसी से उत्पन्न होते हैं।

जो भी खेड़ी, आमर इत्यादि निकले उसे तुरन्त दूर मैदान में गड़वा देना चाहिए; थोड़ी देर भी पड़े रहने से उसमें कीड़े पैदा हो जाते हैं और हवा विषैली हो जाती है जिससे अनेक बीमारियाँ फैलती हैं। आमर—

विश्राम की जरूरत

मल और रक्त—इत्यादि निकल जाने के बाद प्रसूता को साफ़ करके डेढ़ गज लम्बी और आध गज चौड़ी साफ़ मुलायम कपड़े की एक पट्टी से उसका पेट कसकर बाँध देना चाहिए। खून इत्यादि निकलने का डर रहता है इसलिए साफ एवं मुलायम कपड़ों की एक गद्दी और उसपर एक लँगोटी बाँध देनी चाहिए। इससे पेट और गर्भाशय दोनों ठीक रहते हैं। इसके बाद धीरे-धीरे उसकी साड़ी निकालकर दूसरी हलकी छोटी साड़ी लपेट देनी चाहिए; पर ज्यादा हिलाना-डुलाना या खड़ा करना ठीक नहीं है। प्रसूता को अधिक से अधिक देर तक चुपचाप आराम करने देना चाहिए; बहुत-सी स्त्रियाँ बार-बार आकर उसे टोकती और जगाती हैं, यह ठीक नहीं है। पर हाँ सोते समय उसकी नाड़ी और चेहरे पर ध्यान रखना चाहिए। यदि चेहरा या नाख़ून ज्यादा पीले पड़ जायँ तो समझना चाहिए कि खून अधिक गिर गया है। कभी-कभी खून गर्भाशय में ही जम जाता है जिससे हाथ-पाँव के नाख़ून पीले पड़ जाते हैं। यह भय की बात है। ऐसी अवस्था में योग्य डाक्टर से तुरन्त सलाह लेनी चाहिए।

इसके बाद कम से कम दस दिन तक तो माता को चुपचाप चारपाई पर ही चित लेटे रहना चाहिए। टट्टी-पेशाब के लिए भी चारपाई पर पड़े-पड़े हो इंतजाम हो जाय तो बहुत ठीक। क्योंकि इन दिनों माता के शरीर में जो कमी हो जाती है वह पूरी होती है; जरा भी धक्का या चोट लगने से बड़ी हानि हो सकती है। हम लोगों के यहाँ छः दिन बाद—छटी को—उठाकर स्नान इत्यादि कराते हैं। पर वह अच्छी बात नहीं है। पहले छः दिनों में तो उसे, यथासंभव, चारपाई पर भी उठकर न बैठना चाहिए।

दस दिन की हिफाजत

माता के शरीर के भीतरी अवयवों को पहले की अवस्था में लौटने में कम से कम दो महीने लगते हैं। इसलिए दो महीनों तक माता को बहुत कम उठना-बैठना चाहिए और ज्यादा समय लेटे रहना और विश्राम करना चाहिए।

जिस दिन बच्चा हो उस दिन माता को पेशाब आना अच्छा है; टट्टी न आवे तो भी चिन्ता की कोई बात नहीं है।

माता को बच्चा होने के दिन तो कुछ खाने को नहीं देना चाहिए क्योंकि इन्द्रियाँ एकदम निर्बल पड़ जाती हैं और भोजन पचाने की शक्ति पेट में नहीं रहती। इसके बाद चार दिनों तक गाय का उबाला हुआ थोड़ा कुन-कुना दूध देना चाहिए; अन्न कुछ भी न दिया जाय तो बहुत अच्छा। इसके बाद पाँच दिन तक दूध-साबूदाना दें और फिर क्रमशः दाल का पानी, दलिया, मूँग की पतली खिचड़ी इत्यादि देना चाहिए। जिस स्त्री का स्वास्थ्य बहुत अच्छा हो

खाने को क्या दें?

उसे दूसरे दिन गरम घी, और पुराने गुड़ को घोलकर तथा उसमें सोंठ, पीपल का चूर्ण या अजवान का चूर्ण मिलाकर पिलाना चाहिए। पीने के लिए अजवायन का पका हुआ पानी देना चाहिए। अजवायन बड़ी अच्छी चीज है। यह बुखार को रोकती, पाचन-शक्ति बढ़ाती और अधिक पेशाब लाकर पेट एवं गर्भाशय के सब विकारों को दूर करती है। पीने के लिए साधारण पानी हर्गिज़ न दिया जाय। प्यास लगे तो दूध देना चाहिए। इस बात का हमेशा ख़याल रक्खा जाय कि देर से हज़म होने वाला भोजन माता को कभी न देना चाहिए। कम से कम दो महीनों तक उसे बिलकुल हलका भोजन करना चाहिए, जो जल्द हज़म हो जाय और पेट साफ़ रहे। बहुत-सी स्त्रियाँ माता की शारीरिक कमज़ोरी दूर करने के लिए उसे बादाम का हलवा इत्यादि खिलाती हैं, यह बुरी बात है। इससे उलटे हानि होती है। दो महीनों तक दूध फल, घी, चावलों का माड़, पुराने चावलों का थोड़ा भात, मूँग की खिचड़ी, पतली रोटी खाना अच्छा है। दूध में सोंठ का चूर्ण या मुनक्के डालना चाहिए। भोजन में हल्दी का चूर्ण मिलाकर खाना भी अच्छा है। हल्दी से शरीर की हड्डियाँ मज़बूत होती हैं और दर्द दूर होता है।

नवजात शिशु

अहा ! कैसा कोमल बच्चा है ! भोलेपन की मूर्ति ही है ! सचमुच कलेजे का टुकड़ा है ! दुनिया के इस ईर्ष्या-द्वेष के उपवन में मानों एक निर्दोष फूल एकाएक खिल गया हो या विधाता ने आँगन में मानों एक गुलाब का फूल फेंक दिया हो ! अहा ! जन्म के समय यह बच्चा कैसा निर्दोष और पवित्र है पर बड़ा होकर, दुनियादारी के झकोरों में क्या इसकी यही निर्दोषता क़ायम रहेगी ? रहेगी या नहीं, सो तो भगवान् जाने पर यदि माता-पिता आरंभ से चाहें और कोशिश करें तो इसकी दिव्य, दैवी विभूति बड़ा होने पर भी क़ायम रह सकती है ।

रोना जरूरी है

बच्चे के लिए यह दुनिया बिलकुल नई चीज है इसलिए पेट से बाहर आते ही वह घबड़ा-सा जाता है और रोने लगता है । पैदा होने के बाद बच्चे का रोना बहुत जरूरी है; रोना उसके नीरोग और सजीव होने का चिन्ह है; यदि न रोये तो समझना चाहिए कि उसमें कोई खराबी है जिसके कारण रोने में बाधा उपस्थित हो रही है । प्रायः उसका साँस लेना रुक जाता है । इसलिए ऐसे उपाय करना चाहिए जिससे वह ठीक-ठीक साँस लेने लगे । यदि बालक बाहर आते ही न रोये तो उसके मुँह में फूँक मारना चाहिए । फूँक मारने के पहले मुँह को खूब साफ कर

लेना चाहिए। यदि यह उपचार सफल न हो तो पैर फैला कर बच्चे को उसपर चित लिटा देना चाहिए और बच्चे की बाहों को थोड़ा ऊपर उठाकर मुँह में फूंक मारना चाहिए। फूँक मारने के बाद दोनों हाथों को उसकी छाती पर मोड़कर धीरे से दबाना चाहिए। एक-दो मिनट तक ऐसा करने से बच्चा साँस लेने लगेगा।

इस क्रिया को करने के साथ ही बच्चे के मुँह, आँख, कान, नाक और नथनों को साफ़ एवं मुलायम कपड़े से अच्छी तरह साफ़ कर देना चाहिए और मुँह में अँगुली डालकर अन्दर का झाग राल इत्यादि निकाल देना चाहिए। *

नाल पर ज़रा-सी आँच दिखाने से भी बच्चा रोने लगता है। ठंडे पानी के छींटे भी देते हैं और बहुत जगहों में थाली बजाई जाती है। इससे घबड़ाकर बालक रोने लगता है। पेट

* श्रीमती सुशीलादेवी अपनी पुस्तक 'सफल माता' (चाँद-कार्यालय, प्रयाग) में लिखती हैं—"यदि मुँह से राल इत्यादि निकालने पर भी बालक न रोये और उसकी शक्ल पर कुछ काला या नीलापन दिखे तो समझ लेना चाहिए कि बालक की नाड़ियों में खून का प्रवाह ठीक-ठीक नहीं हो रहा है। इस दशा में शीघ्र ही नाल को बिना गाँठ लगाये या बन्धन दिये नाभि की ओर से काट देना चाहिए। नाल के काटने पर जब उसमें से लगभग ६ माशे रक्त निकल जाय तब उसे इस प्रकार कस-कर बाँध देना चाहिए कि प्रवाह बन्द हो जाय। ऐसा करने से नीलापन दूर हो जायगा। यदि न हो तो बन्धन खोलकर २—३ माशे खून और गिराया जाय लेकिन इससे अधिक नहीं। इस पर भी यदि नीलापन दूर न हो और वह न रोये तो फिर शीघ्र किसी योग्य डाक्टर या वैद्य को दिखलाना चाहिए।" [पृष्ठ ९४—९५]

से बाहर आते ही बच्चा रोने लगता है पर यदि मुँह, नाक इत्यादि साफ़ करने के बाद भी बच्चा न रोये तो, स्वस्थ अवस्था में, तबतक उसका नाल न काटना चाहिए जबतक वह रोने न लगे।

शरीर की सफ़ाई

रोने के बाद सब अंग साफ़ करके बच्चे को नहलाना चाहिए। हमारे देश में नहलाने का नाम भर होता है; ज़रा-सा पानी डालकर पोंछ-पाँछ स्त्रियाँ छुट्टी पा जाती हैं पर इस तरह नहलाने से कोई लाभ नहीं। नवजात शिशु के सारे शरीर पर मैल चढ़ी रहती है और यह मैल ऐसी चिपकी होती है कि मुश्किल से निकलती है। यदि बच्चे के शरीर का यह मैल ठीक तरह से न निकाली जाय तो उसे आगे फुंसियाँ हो जाने का डर रहता है इसलिये बच्चे को इस तरह नहलाना चाहिए कि उसके शरीर से सब मैल निकल जाय। इसके लिए कई तरह के रिवाज हैं। कहीं-कहीं बेसन या कपड़छन की हुई राख पोतकर स्नान कराते हैं और कहीं बच्चे के सारे शरीर में शहद पोत कर थोड़ी देर तक यों ही पड़ा रहने देते हैं। पाँच—सात मिनट में शहद के कारण मैल फूल जाती है; तब उसे नहलाते हैं ,इससे मैल निकल जाती है।

बच्चे को नहलाने के लिए साधारण पानी काम में लाना ठीक नहीं है। तपाई हुई चाँदी या सोने को पानी में बुझाकर बच्चे को नहलाना चाहिए। पीपल या बट वृक्ष की छाल को पानी में उबालकर तब उस पानी से भी नहलाते हैं! नहलाने

के बाद साफ कपड़े से बच्चे का शरीर अच्छी तरह पोंछ देना चाहिए जिससे पानी बिलकुल न रह जाय। फिर उसे मुलायम एवं साफ बिछावन पर सुला कर कपड़ा ओढ़ा देना और सिर पर अच्छे शुद्ध तेल में भीगा हुआ एक फाहा भी रख देना चाहिए। नहलाते समय बच्चे की आँखों को त्रिफला या बोरिक पाउडर के पानी से धो देना चाहिए। बच्चे की आँखों के सामने लालटेन इत्यादि न ले जाना चाहिए, पीछे से ही उस पर धीमी रोशनी पड़े अन्यथा आरम्भ में उसकी आँखें ख़राब हो जाने का डर बना रहता है। क्योंकि उसको आँखों को रोशनी सहन करने का अभ्यास नहीं होता।

पेट की सफ़ाई

गर्भ में बच्चे के पेट के अन्दर बहुत दिनों से मल संचित होता रहता है। इसलिए पैदा होने के बाद किसी तरह पेट से यह मैल निकल जाना हितकर है। इसके लिए शहद में तीन-चार बूँद अरण्डी का साफ तेल या मीठा कास्टर आयल मिलाकर चटा देना चाहिए। इससे एक-दो दस्त आयेंगे और बच्चे का पेट साफ़ हो जायगा।

नवजात शिशु को, जन्मघुटी के नाम पर, बहुत-सी चीजें चटाई या पिलाई जाती हैं पर इस विषय में बड़ी सावधानी की जरूरत है। क्योंकि बिना जाने-बूझे कोई चीज खिला देने से बच्चे पर उसका बड़ा बुरा असर पड़ सकता है।

इस विषय में एक अनुभवी लेखिका * का मत है कि निम्न

---

* देखिए 'सफल माता' (श्रीमती सुशीलादेवी); पृष्ठ ९९–१००

लिखित नुस्खों में से कोई एक चटाना चाहिए—

१. घी में थोड़ा-सा सेंधा नमक डाल कर दो।

२. बच, ब्राह्मी और इलायची का चूर्ण कपड़छन कर एक या दो चावल-भर घी और शहद में चटाओ। इससे बहुत लाभ होता है।

३. शहद में सोना घिसकर दो।

४. चावल-भर कपड़छन किये हुए आँवले के चूर्ण में आधा चावल स्वर्ण-भस्म, घी और शहद मिला-कर चटाओ।

इनमें से किसी एक को, विशेषतः दूसरे को, माता के स्तनों में दूध न आने तक (प्रायः तीन दिन लगते हैं) दिन में दो बार चटाने से बालक स्वस्थ, बलवान और बुद्धिमान होगा।

पालन-पोषण

बच्चों के पालन-पोषण में आजकल बड़ी असावधानी की जाती है। कहीं तो उसे इतना दूध पिला दिया जाता है कि बदहज़मी हो जाती है; हरे-पीले दस्त चलने लगते हैं; बच्चा मुँह से दूध उगलने लगता है और कहीं इतना कम दूध पिलाया जाता है कि उसकी बाढ़ रुक जाती है। इसी प्रकार नहलाने-धुलाने, सुलाने और कपड़ा पहनाने में भी बहुतेरी ग़लतिय की जाती हैं; फलस्वरूप दिन पर दिन उसका स्वास्थ्य गिरता जाता है और वह रोगी एवं दुर्बल हो जाता है। यदि मातायें च.हें तो जरा-सी सावधानी से उनके बच्चे सबल, नीरोग और बुद्धिमान् हो सकते हैं।

नवजात शिशु के लिए माँ के दूध से उत्तम और लाभकारी कोई आहार नहीं है। इसलिए जो मातायें रोगी न हों, उन्हें भरसक अपना ही दूध पिलाना चाहिए। रोगी होने की अवस्था में गाय या बकरी का दूध पानी मिलाकर पिलाना अच्छा होगा। किसी दूसरी स्त्री का दूध, बिना भलिभाँति उसे जाने-बूझे, पिलाना ठ.क नहीं। क्योंकि दूध पिलानेवाली यदि साफ़-सुथरी और नीरोग न हुई तथा उसके हृदय में बच्चे के प्रति प्रेम न हुआ तो वह दूध बच्चे को लाभ के बदले हानि ही अधिक पहुँचायेगा।

जब बच्चा पैदा होता है तो उसके पेट में बहुत थोड़ी जगह रहती है; उस समय प्राय: ३ तोले से अधिक दूध उसके पेट में अँट ही नहीं सकता अत: बच्चे को दूध पिलाते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि ज्यादा दूध पेट में न चला जाय नहीं तो नुकसान करेगा। इसके लिए नीचे के नक़शों पर ध्यान देना चाहिए—

पेट का वज़न

समय	कितना पेट में अँट सकता है
पैदा होने के समय	२॥ से ४ तोला
पहले महीने के अंत में	एक छटाँक
चौथा महीना	ढाई छटाँक
छठा महीना	तीन-सवातीन छटाँक
आठवाँ महीना	लगभग एक पाव
साल के अन्त में	सवापाव

कितनी बार दूध पिलाया जाय

समय	बार
पहला महीना	१० बार
दूसरा-तीसरा	८ बार
तीसरा-चौथा-पाँचवाँ	७ बार
छः से बारह तक	६ बार

जिन्हें प्रथम सन्तान होती है उन माताओं को बच्चा होने के प्रायः तीन दिन बाद दूध आता है। इन तीन दिनों तक पिछले अध्याय में बताये नुस्खों के सिवा कुछ देने की जरूरत नहीं है। हाँ, माँ का स्तन बच्चे के मुँह में दिन में चार-पाँच बार देना चाहिए। दूध आने पर बच्चे को गोद में लेकर, एक हाथ से उसका सिर और दूसरे से स्तन पकड़कर दूध पिलाना चाहिए और एक बार आठ-दस मिनट से अधिक दूध नहीं पिलाना चाहिए। एक ही स्तन से दूध पिलाना ठीक नहीं; चार-चार मिनट में बदल देना चाहिए। यह याद रहे कि *लेटे-लेटे कभी दूध न पिलाना चाहिए* और सदा दूध पिलाने के पहले स्तनों को साफ़ पानी से धो लेना चाहिए। कभी-कभी फिटकरी के पानी से धोना लाभकारी है।

नीचे लिखे नक़्शे के अनुसार माता को दूध पिलाना चाहिए—

समय	सुबह से रात को सोने तक	रात को सो जाने पर
तीसरे दिन से महीने के अंत तक	प्रति २ घण्टे बाद	बार (यदि बच्चा जगे तो)
दूसरा-तीसरा महीना	प्रति २॥ घण्टे बाद	१ बार ,,
तीसरे से बारहवें तक	प्रति ३ घण्टे बाद	२ बार ,,

बच्चे को रात में, १० से ५ तक जहाँ तक हो, दूध न पिलाना चाहिए। यदि रोये तो और तरह से बहला देना चाहिए; जब किसी तरह न माने तभी एकाध बार दूध पिलाना चाहिए। निम्न-लिखित अवस्थाओं में माता को दूध नहीं पिलाना चाहिए—

१. आग के पास से उठने के बाद।

(आध घण्टे बाद पिला सकती है)

२. बच्चे को उबटन लगाने या सेंकने के बाद।

(आध घण्टे बाद पिला सकती है)

३. नहलाने के पहले या बाद।

(आध घण्टे पहले या बाद पिला सकती है)

४. जब माँ को ज्यादा जुकाम हो अथवा पेट में पीड़ा, बद-हजमी या बुखार हो।

५. पेट में कोई फोड़ा हो जाय।

यदि माँ ज्यादा बीमार हो जाय और अधिक दिनों तक उसके दूध पिलाने की सम्भावना न हो तो उचित परिमाण में पानी और शक्कर मिलाकर गाय या बकरी का दूध पिलाना चाहिए। कितना पानी और कितनी शक्कर मिलाने से गाय-बकरी का दूध माँ के दूध के समान गुणकारी हो जायगा, यह लिखने के पहले नीचे के नक़शे में यह बता देना अच्छा होगा कि माँ और पशुओं के दूध में क्या अन्तर है—

दूध के विभिन्न अंशों की सूची

किसका दूध	मक्खन या घी का अंश	प्रोटीड या मांस का अंश	शक्कर का अंश	नमक का अंश	पानी का अंश
स्त्री	३.३२	३.४२	४.५५	.११	८८९
गाय	३.८२	४.२१	३.६७	.७१	८७.५
बकरी	४.३४	३.७९	३ ७८	.६५	८६.८५
भैंस	७.१	४.०	४.०	.८	८४.१

१. मक्खन या घी के अंश से चरबी बनती, शरीर में गरमी उत्पन्न होती है; वजन बढ़ता है; हड्डियाँ मजबूत होतीं और दिमाग़ की ताक़त बढ़ती है। शरीर मुलायम और चिकना होता है।

२. प्रोटीड या मांस के अंश से मांस बढ़ता है।

३. शक्कर के अंश से गरमी उत्पन्न होती और चरबी के काम में सहायता पहुँचती है। बल बढ़ता है।

४. नमक के अंश से खून बनता और साफ़ होता है; हड्डियाँ बढ़ती हैं।

५. पानी के अंश से सब चीजों के रस बनकर पाचन-क्रिया को जारी रखने एवं खून बनाने में सहायता पहुँचती है।

ऊपर के नक़्शे से यह बात मालूम हो सकती है कि भैंस के दूध में माँ के दूध से बहुत ज्यादा फ़र्क़ है इसलिए भैंस का दूध बच्चे को नहीं दिया जा सकता। वे उसे हजम नहीं कर सकते। पहले ४–५ महीनों तक यदि बच्चे को गाय या बकरी का दूध पिलाना पड़े तो जितना दूध हो उतना ही पानी मिलाना चाहिए और एक पाव दूध में एक चम्मच शक्कर भी मिला लेनी चाहिए। फिर इसे छान कर बोतल में रख लेना अच्छा होगा। ज्यों-ज्यों बच्चे की उम्र बढ़ती जाय पानी की मात्रा में धीरे-धीरे कमी करनी चाहिए। *

"इस तरह तैयार किये हुए दूध को एक साफ चौड़े मुँह की बोतल में भरकर ...कार्क से उस बोतल का मुंह बन्द कर देना चाहिए। इस बोतल को किसी धातु के बर्तन में रखकर उसमें पानी भर देना चाहिए। अब इस बर्तन को आँच पर रखकर धीमी आँच से गरम करना चाहिए। कम से कम १५ मिनट तक बोतल को इस प्रकार आँच में रखना चाहिए। इसके बाद जब पानी ४–५ मिनट तक उबल चुके तब दूध वाली बोतल को गरम पानी से निकाल कर ठण्डा होने देना चाहिए। × × अब इस पानी में किसी भी प्रकार की गरमी न पहुँचने पावे। बेहतर यह होगा कि किसी गहरे बर्तन में ठण्डा पानी डालकर उसी में इस दूध वाली बोतल को पड़ा रहने देना चाहिए।"

—'सफल माता,' १२४–१२५

दूध सदा गरम करके पिलाना चाहिए। क्योंकि सावधानी से रखे हुए सिर्फ एक चम्मच दूध में पैंतीस करोड़ कीटाणु रहते हैं।

गाय के दूध में थोड़ा चूने का पानी मिलाने से वह शीघ्र पच जाता है। इसके बनाने की तरकीब यह है कि एक सेर पानी में एक तोला पत्थर का अनबुझा चूना घोलकर रख दिया जाय और जब वह सब चूना नीचे बैठ जाय तो ऊपर का पानी निथार कर बोतल में भर लिया जाय और उसमें से ६ माशे से १ तोला तक पानी कभी-कभी दूध में मिला लिया जाय। यदि पानी तैयार करने में कठिनाई हो तो एक-दो रत्ती खाने का सोडा मिला सकते हैं।

जन्म के बाद, पहले महीने में, बच्चा २०-२२ घण्टे और फिर छः महीनेतक १७-१८ घण्टे और सात से वर्ष के अन्त तक १५-१६ घण्टे सोता है। फिर ज्यों-ज्यों उम्र बढ़ती जाती है, सोने के इस समय में कमी आती जाती है। स्वस्थ बच्चा खूब शांति से सोता है और रोगी बच्चे सोते कम और रोते बहुत हैं। बच्चे के स्वास्थ्य और समुचित विकास के लिए उसका इतने समय तक सोना जरूरी है। इसलिए दिन हो या रात दूध पिलाते ही बच्चे को सुला देना चाहिए। रात को, बच्चे को अलग एक छोटे पलंग पर सुलाना चाहिए। क्योंकि एक ही पलंग पर सोने से माँ को बच्चे के दब जाने का खटका लगा रहता है और उसे ठीक-ठीक नींद नहीं आती। दिन में पलंग की अपेक्षा पालने में सुलाना ज्यादा अच्छा है। आरम्भिक महीनों तक १२-१३ घण्टे और उसके बाद चार-पाँच महीनों तक ९-१० घण्टे माँ को जरूर सोना चाहिए। ऐसा न करने से उसका स्वास्थ्य खराब होगा।

पाचन-शक्ति नष्ट होगी; दूध गाढ़ा और दूषित हो जायगा; बच्चे का स्वास्थ्य भी खराब हो जायगा।

नीचे के नक़शे से मालूम होगा कि किस अवस्था में बच्चों को कितने घण्टे सोना जरूरी है।

बच्चों की नींद का नक़शा

अवस्था	रात दिन (२४ घण्टे में)	दिन में	रात में
पहला दिन	२२ घण्टे	कोई हिसाब नहीं	कोई हिसाब नहीं
एक सप्ताह तक	२१ घण्टे	"	"
दूसरे सप्ताह से महीने के अन्त तक	१९—२० घण्टे	९—१० घण्टे	१० घण्टे
दूसरे से चौथे तक	१८—१९ घण्टे	८—९ घण्टे	१० घण्टे
पाँचवाँ-छठा	१७—१८ घण्टे	७—८ घण्टे	१० घण्टे
नौ मास तक	१५—१६ घण्टे	५—६ घण्टे	१० घण्टे
बारह मास तक	१४—१५ घण्टे	५—६ घण्टे	९ घण्टे
डेढ़ वर्ष तक	१२—१३ घण्टे	३—४ घण्टे	९ घंटे
दो वर्ष तक	११—१२ घण्टे	२—३ घण्टे	९ घंटे
तीन वर्ष तक	१०—११ घण्टे	१—२ घण्टे	९ घंटे
पाँच वर्ष तक	१० घण्टे	०	१० घंटे
आठ वर्ष तक	९—९½ घण्टे	०	९—९½ घंटे
दस वर्ष तक	८½—९ घण्टे	०	८½—९ घंटे
सोलह वर्ष तक	८ घण्टे	०	८ घंटे

यदि बच्चा इस हिसाब से न सोये अर्थात् कम सोये तो समझना चाहिए कि वह विकार-ग्रस्त है। बहुत-सी मातायें, बच्चों के रोने से चिढ़कर उन्हें सुलाने के लिए अफ़ीम इत्यादि दिया करती हैं और बहुत-सी उन्हें डरा-धमकाकर सुला देती हैं। दोनों बातें बड़ी ख़राब हैं। पहली अवस्था में अफ़ीम के कारण बच्चों को क़ब्ज़ हो जाता है तथा फेफड़ों में भी कमजोरी आजाती है और दूसरी अवस्था में बच्चे डर जाने के कारण मीठी नींद नहीं सोते और सोते-सोते डर कर चौंक पड़ते एवं रोने लगते हैं।

साधारणतः जब बच्चे को भूख लगती है तो वह रोता है। यह प्राकृतिक साधन है जिससे वह अपनी भूख प्रकट करता है पर इसका यह मतलब नहो कि भूख के सिवा और किसी कारण से बच्चा रोता ही नहीं इसलिए बच्चे के रोने पर देखना चाहिए कि क्यों रो रहा है। यदि स्तन मुँह में देने से चुप हो जाय तो समझना चाहिए कि भूख के कारण रोता था; न चुप हो तो समझना चाहिए कि किसी पीड़ा से रोता है।

डेढ़ वर्ष के बाद माँ को दूध पिलाना बन्द कर देना चाहिए। किन्तु इसके बाद भी दो-ढाई वर्ष की अवस्था तक उसे दूध ही अधिक देना चाहिए; अन्नप्राशन संस्कार के बाद उसे दाल का पानी इत्यादि कभी-कभी चटा सकते हैं।

बच्चा यदि बहुत कमजोर न हो तो प्रथम सप्ताह के बाद उसे दो पहर को कुनकुने पानी से धूप में (जहाँ हवा न चलती हो) नहलाना चाहिए।

हफ़्ते में दो-तीन दिन तो जरूर नहलाना चाहिए। बच्चे को

पावों पर सुलाकर धीरे-धीरे नहलाना और चुमकारते जाना चाहिए; एकाएक ज्यादा पानी डालने से वह घबड़ा जाता है। दूध पिलाने के घण्टे-डेढ़ घण्टे बाद नहलाना चाहिए। नहलाने का मतलब सिर्फ पानी डाल देना नहीं है। अच्छी तरह बच्चे के शरीर को पोंछकर सारी मैल निकाल देनी चाहिए। स्नान कराने के पहले तेल की मालिश करना बहुत लाभदायक है। जो मातायें रोज बच्चों को तेल-उबटन लगाती हैं, उनके बच्चे नीरोग रहते हैं। इससे चमड़ी मुलायम होती तथा फोड़े-फुंसियों से रक्षा होती और बदन सुडौल होता है। सिर में तेल की मालिश करने से दिमाग मजबूत होता है।

जब बच्चा पैदा होता है तो उसके शरीर पर बहुत-से छोटे-छोटे रोयें रहते हैं। इनको निकालने के लिए बहुत जगह स्त्रियाँ लोई फेरती हैं। लोई फेरने का मतलब यह है कि बालक के शरीर पर खूब तेल चुपड़कर गुँधे हुए मुलायम आटे की एक लोई सब जगह फेरते हैं। इससे शरीर की मैल तो दूर हो ही जाती है; ये रोयें भी दूर होते जाते हैं और चमड़ी साफ़ हो जाती है। मुँह पर खास तौर से इसे फेरते हैं जिससे चेहरा खिल उठता है।

४-५ महीने तक बच्चे को कोई कपड़ा पहनाने की जरूरत नहीं। गहने तो क़तई तौर पर न पहनाने चाहिए। हाँ, ठण्ड; मक्खियों-मच्छरों से बचाने के लिए कपड़े ओढ़ा देने चाहिए।

बच्चे सोये-सोये टट्टी-पेशाब कर देते हैं, इसलिए नीचे मोमजामा या किरमिच का टुकड़ा बिछा देना अच्छा है। बहुत-सी मातायें इधर ध्यान नहीं देतीं; उनके बच्चे घण्टों पेशाब-

पाखाने के अन्दर सने पड़े रहते हैं। इससे न केवल स्वास्थ्य वरन् उनकी आदत भी बिगड़ती है; वे बचपन से ही गन्दा रहना सीख जाते हैं। बच्चों की आदत ऐसी डालनी चाहिए कि बचपन से ही उन्हें गन्दगी असह्य हो जाय और यह तभी हो सकता है जब माँ खुद ही इसका ध्यान रक्खे और बच्चे तथा उसके बिछौने को साफ़ रखने के साथ ही खुद भी साफ़ रहे। एक कपड़ा गन्दा होते ही तुरन्त उसे बदल देना चाहिए।

बच्चों को गोद में ज्यादा हर्गिज़ न रखना चाहिए और न उनके रोने पर उनकी प्रत्येक बातें मान लेनी चाहिए। इन दोनों बातों से बालक सुस्त रोने और हठी हो जाते हैं।

बच्चे की बाढ़

स्वस्थ और नीरोग माँ का बच्चा, जो दसवें महीने होता है, पैदाइश के समय कम से कम ३ सेर का होता है। साधारणतः स्वस्थ बच्चे का वज़न ७ पौण्ड या साढ़े तीन सेर होना चाहिए। असाधारण स्वस्थ बच्चे पाँच सेर तक के देखे गये हैं। पैदा होने के बाद पाँच-छः दिन तक वजन घट जाता पर फिर एक सप्ताह के अन्दर पूरा हो जाता एवं बाद में बराबर बढ़ता जाता है। यदि माँ के दूध में कोई ख़राबी न हो और बच्चे को बराबर यथेष्ट दूध पीने को मिले एवं वह बीमार न पड़े तो छः महीने तक वह दो-ढाई तोला रोज़ बढ़ता है और फिर सातवें महीने से वर्ष के अन्त तक डेढ़-दो तोला रोज़ बढ़ता है। इस तरह साल के अन्त में बच्चा जन्म के समय के वज़न से प्रायः तिगुना हो जाता है। लड़के-लड़कियों की बाढ़ में कुछ अन्तर है। नीचे

के * नक़शों में दोनों के क्रम-विकास का व्योरा देखिए—

1. अधिक स्वस्थ बच्चे की बाढ़—तौल

आयु	लड़के की तौल	लड़की की तौल
जन्म	४ सेर	३ सेर ४७ तोला
छः महीना	८ सेर	७ सेर ६० तोला
एक वर्ष	१० सेर २० तोला	९ सेर ७२ तोला
डेढ़ वर्ष	११ सेर ३० तोला	११ सेर
दो वर्ष	१३ सेर २० तोला	१२ सेर ६० तोला
तीन वर्ष	१५ सेर ४८ तोला	१५ सेर
चार वर्ष	१७ सेर ४० तोला	१७ सेर
पाँच वर्ष	२० सेर ४८ तोला	१९ सेर ७२ तोला
छः वर्ष	२२ सेर ४५ तोला	२१ सेर ७२ तोला
सात वर्ष	२४ सेर ६० तोला	२४ सेर
आठ वर्ष	२७ सेर २० तोला	२६ सेर ३७ तोला
नौ वर्ष	३० सेर	२८ सेर ६० तोला
दस वर्ष	३३ सेर २४ तोला	३२ सेर
ग्यारह वर्ष	३६ सेर १६ तोला	३५ सेर १२ तोला
बारह वर्ष	३९ सेर ७२ तोला	४० सेर ५४ तोला
तेरह वर्ष	४४ सेर १२ तोला	४५ सेर ४८ तोला
चौदह वर्ष	४९ सेर ५२ तोला	५० सेर १२ तोला
पन्द्रह वर्ष	५५ सेर ३२ तोला	५४ सेर १६ तोला

* 'जननी और शिशु,' सफलमाता और सन्तति शास्त्र के आधार पर ।

२. साधारण बच्चे की बाढ़—तौल

आयु	लड़के की तौल	लड़की की तौल
जन्म	३॥ सेर	३। सेर
एक महीना	४॥ सेर	४। सेर
दो महीना	५॥ सेर	५। सेर
तीन महीना	६। सेर	६ सेर
छः महीना	८ सेर	७॥ सेर
एक वर्ष	१० सेर	९ सेर ६० तोला
दो वर्ष	१२ सेर ७० तोला	१२ सेर २० तोला
तीन वर्ष	१४ सेर २० तोला	१४ सेर
चार वर्ष	१६ सेर २० तोला	१६ सेर
पाँच वर्ष	१८ सेर ४० तोला	१८ सेर
छः वर्ष	२० सेर ६० तोला	२० सेर
सात वर्ष	२२ सेर ६० तोला	२२ सेर १० तोला
आठ वर्ष	२५ सेर ४० तोला	२४ सेर २० तोला
नौ वर्ष	२७ सेर ६० तोला	२६ सेर ३० तोला
दस वर्ष	३० सेर	२९ सेर
ग्यारह वर्ष	३३ सेर २० तोला	३२ सेर १० तोला
बारह वर्ष	३६ सेर ३० तोला	३६ सेर ३० तोला
तेरह वर्ष	३९ सेर २० तोला	४० सेर
चौदह वर्ष	४३ सेर १० तोला	४४ सेर
पन्द्रह वर्ष	४७ सेर	४७ सेर के लगभग

इसी प्रकार लम्बाई भी बढ़ती है। पहले छः महीनों में पाँच इंच और दूसरे छः महीनों में चार इंच बढ़नी चाहिए। जन्म के समय स्वस्थ बच्चे की लम्बाई साधारणतः २० इंच होती है। लम्बाई के विकास का ब्यौरा नीचे के नक़शे में देखिए—

३. स्वस्थ बच्चे की बाढ़—लम्बाई

आयु	लड़के की लम्बाई	लड़की की लम्बाई
जन्म	२० इंच	२० इंच
एक वर्ष	२९ इंच	२८ ३/४ इंच
दो वर्ष	३२ इंच	३१ १/२ इंच
तीन वर्ष	३४ १/२ इंच	३४ १/२ इंच
पाँच वर्ष	४ १/४ इंच	४० इंच
सात वर्ष	४५ ३/४ इंच	४५ १/२ इंच
दस वर्ष	५१ १/२ इंच	५१ इंच
बारह वर्ष	५५ इंच	५६ १/२ इंच
चौदह वर्ष	५९ १/२ इंच	६० इंच
पन्द्रह वर्ष	६० १/२ इंच	६१ १/४ इंच

माँ को सदा इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि बच्चा नाक से साँस ले; यदि वह मुँह से साँस ले तो सोते समय उसका मुँह थोड़ी देर बन्द करने से वह स्वतः नाक से साँस लेने लगेगा। आरम्भ में बच्चा प्रति मिनट ४४ बार साँस लेता है जब मनुष्य केवल २८ बार। धीरे-धीरे यह संख्या घटती जाती है

और चौथा वर्ष लगते-लगते २८ तक आ जाती है। इसी प्रकार शुरू में बच्चे की नाड़ी प्रति मिनट १३० बार चलती है पर धीरे-धीरे घट कर चौथे वर्ष में ८० तक आ जाती है।

दाँत निकलना

स्वस्थ बच्चों को प्रायः ६—७ महीने बाद दाँत निकलने लगते हैं। किसी-किसी को देर से निकलते हैं। सब से पहले नीचे के दो दाँत निकलते हैं; फिर ऊपर के चार और फिर क्रमशः नीचे के जबड़े के दो दाँत, एवं नीचे और ऊपर की दो-दो दाढ़ें निकलती हैं। ढाई-तीन वर्ष की अवस्था तक बीस दाँत निकल जाते हैं। इन्हें दूध के दाँत कहते हैं।

दाँत निकलने के समय बच्चों को बड़ा कष्ट होता है। बच्चे चिड़चिड़े हो जाते हैं; काटते हैं। मुँह से लार टपकने लगती है; हरा खुरदुरा, फटा हुआ दस्त आने लगता है; मुँह लाल हो जाता है; रोता है; नींद नहीं आती, कभी-कभी क़ै भी होने लगती है; बच्चा बार-बार मुँह में अँगुली डालता है; आँखें आ जाती हैं; दर्द के कारण बुख़ार भी हो आता है। ऐसे समय बच्चे को बड़ी सावधानी से रखना चाहिए। उसका हाज़मा प्रायः ख़राब हो जाता है; इसलिए चूने का पानी या खाने का सोडा ज़रा-सा मिलाकर दूध पिलाना चाहिए। यदि दस्त रुक जाय तो शहद में अरण्डी के तेल की ४-६ बूँदें डालकर चटानी चाहिएँ। मसूड़े निकलने के समय ज्यादा बेचैनी होती है। उस समय ६ माशा पिसा हुआ सोहागा या सेंधा नमक साफ़ शहद में

मिलाकर दिन में तीन-चार बार मसूड़ों पर मलना चाहिए। इससे दर्द कम होता है और बच्चे को आराम मिलता है।

६-७ वर्ष की उम्र में दूध के दाँत टूटने लगते हैं। प्रायः हर साल चार दाँत टूटते और उनकी जगह नये निकलते हैं। बारह वर्ष तक २८ दाँत हो जाते हैं और फिर १६-१७ वर्ष के बाद अन्त की चार दाढ़ें निकलती हैं। इस तरह कुल ३२ दाँत हो जाते हैं।

सुन्दर स्वास्थ्य के लिए दाँतों की सफ़ाई पहली बात है। दूध पिलाकर या कुछ खिलाकर सदा बच्चों के दाँत और मुँह धो देना चाहिए और अच्छी तरह देख लेना चाहिए कि दाँत में कोई टुकड़ा रह तो नहीं गया है। बदहज़मी, सिरदर्द, दाँतों से खून निकलना, दाँत-दर्द इत्यादि रोग दाँतों की गन्दगी से ही पैदा होते हैं।

दाँत निकलने पर बच्चों को बताना चाहिए कि खूब चबाकर धीरे-धीरे खाने से भोजन शीघ्र पचता है और स्वास्थ्य ठीक रहता है।

बच्चे का भविष्य

बच्चे को इच्छानुकूल बनाना माता पर ही निर्भर है। माता के हाथ में ही बच्चे का भविष्य है। इसलिए न केवल गर्भावस्था में वरन् बच्चा होने के बाद भी माता को अपना जीवन बड़ी सावधानी से बिताना चाहिए। क्रोध की अवस्था में या बिगड़कर कभी बच्चे को दूध नहीं पिलाना चाहिए, हमेशा प्रसन्नचित्त से, ममता के साथ दूध पिलाने से बच्चे का विकास शीघ्र होता है।

दूसरी बात यह कि प्राय: मातायें बच्चों को रोने से चुप करने के लिए डरावनी चीजों के नाम लिया करती हैं। कभी पिता का डर दिखाती हैं। यह बड़ी बुरी बात है। पहली अवस्था में बच्चे डरपोक हो जाते हैं; उनकी इच्छा-शक्ति घट जाती है और निर्भयता चली जाती है और दूसरी अवस्था में वे पिता को भय-प्रद समझकर उसके हृदय से दूर हटते जाते हैं। थोड़े-से स्वार्थ के लिए या समय की बचत के लिए डर दिखाकर बच्चों की मानसिक शक्ति को कुण्ठित कर देना बड़ा अनुचित है।

तीसरी बात यह कि माता को अपनी दिनचर्या खूब व्यवस्थित और अनुकरण-योग्य रखनी चाहिये। वह जब बच्चे के पास जाय तो प्रसन्नचित्त और हँसते मुँह से जाना चाहिए। प्राय: ५-६ महीने की अवस्था के बाद बच्चे जैसा देखते हैं, उसकी नक़ल करने लगते हैं। एक बड़े अंग्रेज विद्वान् बेकन का

कहना है कि माता की देखादेखी नक़ल उतारने की जो मनोवृत्ति बच्चों में होती है वही दुनिया की सारी शिक्षाओं की जड़ है। इसलिए क्रोध में, उत्तेजना में या अत्यन्त लाड़-प्यार में बच्चों के सामने कोई ऐसी बात नहीं करनी चाहिए जिनसे आगे जाकर उनका भविष्य बिगड़ने की सम्भावना हो।

बच्चों के सामने किसी की उपेक्षा, अपमान और अवज्ञा नहीं करनी चाहिए, इससे बड़े होकर वे अविनयी और ढीठ हो जाते हैं।

जब बच्चा एक-दो वर्ष का हो जाय तो सदा उसके सामने अच्छी बातें करनी चाहिएँ; महात्माओं के नाम याद कराने चाहियें। बच्चा यदि कोई अनुचित बात कह देता है तो भी मारे लाड़ के स्त्रियाँ हँस पड़ती हैं। यह बुरी बात है; इससे उसकी आदत ख़राब होती है। ऐसे समय हँसना हर्गिज़ न चाहिए; न क्रोध करना चाहिए वरन् गम्भीर मुँह से उसे उसकी ग़लती बतानी चाहिए।

मातृत्व का गौरव !

माता ! अहा, इस शब्द में कितनी मिठास है ! इसमें कितनी पवित्र स्मृतियाँ छिपी हैं ? इसमें कितना गौरव भरा है ! इसीलिए हमारे धर्म में स्त्री का रमणी—पत्नी-रूप महान् नहीं माना गया; माता-रूप में ही स्त्री पूजनीय मानी गई है। मातृत्व में ही स्त्री का गौरव है और इसी में उसका आदर्श पूरा होता है।

पर माता का सच्चा अर्थ बच्चों की माँ बन जाना नहीं है वरन् अपने अन्दर उस अनादि शक्ति का अनुभव करना है—अपनी उस महानता को जानना है, जिसने आरम्भ की जंगली दुनिया को सभ्य बनाया है; जिसने मनुष्य को पशु से मनुष्य बनाकर आज उसे इतना ऊँचा उठा दिया है। माता का सच्चा अर्थ वैसी मातायें बनना है जिनके लिए नेपोलियन-सा दुनिया को विजय करने का साहस रखने वाला महावीर तरस कर कह गया है—"*मुझे सुमातायें दे सको तो मैं तुमको एक महान् जाति बना दूँ !*" माता का अर्थ अपने अन्दर उस पवित्र तेज को उत्पन्न करना है जिसे देख कर पुरुष सच्चे पुरुष और स्त्रियाँ सच्ची स्त्रियाँ बनें। आज की मातायें जो लाड़-प्यार में बच्चों को बिगाड़ देती हैं; जो उन्हें चोरी करना, झूठ बोलना सिखाती हैं; जो जीवन की सब से कोमल और प्रभाव-योग्य अवस्था में उनका

स्वास्थ्य नष्ट कर देती हैं, सच्ची मातायें नहीं हैं। *माता* वह है जो कभी अपने हित और सुख का ध्यान न करके बच्चों के हित की कामना में दृढ़ रहे। आज-कल के माता-पिता १७-१८ वर्ष के लड़कों को अपने पास से जुदा करना नहीं चाहते, चाहे उनका भविष्य चौपट हो जाय। देखते हैं कि लड़का चौपट हो रहा है पर झूठा मोह और दुलार उन्हें दूर करने नहीं देता। यह मातृत्व नहीं है; यह पिता की मर्यादा नहीं है। वे यह भूलते हैं कि वे सदा न रहेंगे और यदि वे अपनी सन्तान को योग्य न बना गये तो अपना, अपने कुल, अपनी जाति और मनुष्यता की भी हानि करेंगे और उस लाड़-प्यार में पलकर नष्ट होते हुए बच्चे के लिए भी दुनिया में केवल कष्ट, अपमान, दुःख और कठिनाइयाँ छोड़ जायँगे।

नहीं, माताओ! तुम्हें यह झूठा मोह, यह विनाशक दुलार छोड़ना पड़ेगा। तुम उन राजपूतनियों की ओर देखो जो अपने तुच्छ प्राण बचाने के लिए युद्ध-भूमि से भागने वाले पुत्रों के कलेजे में कटार भोंक देती थीं। तुम उन माताओं की ओर देखो जो धर्म के लिए अपने पुत्रों की बलि देने में अपने दूध का गौरव समझती थीं। तुम उन जननियों की ओर देखो जिन्होंने दुनिया को सच्चे मनुष्यों का, सच्ची देवियों का दान दिया है। तुम उन मंगलमूर्तियों को देखो जिन्होंने जगत् को सच्चा आत्म-ज्ञान सिखाया है; तुम अनुसूया, मैत्रेयी, अरुन्धती, गार्गी को देखो। तुम उस सीता की ओर देखो जिसके हृदय में सच्ची जननी का आत्माभिमान चमक रहा था। तुम आज सच्चे

मातृत्व की मंगलमयी उषा की तरह दुनिया को जीवन का संदेश दो और सूर्य की भांति तुम्हारा आशीर्वाद दुनिया को जीवन एवं प्रकाश दे।

माता आत्म-विसर्जन की प्रतिमा है! माता दया की मूर्ति है! माता कल्याण की उषा है! माता जीवन की पवित्र स्मृतियों का जीवित स्मारक है! माता करुणा का भण्डार है। माता अपने शरीर एवं मन का सारा सत्व विकासित करके, मनुष्यता को सदा दान देने वाली अन्नपूर्णा है! माता त्याग की आभा है! माता जीवन-दीप का स्नेह है जो छिपकर, गुप्त रहकर, जलकर, मिटकर सब को प्रकाश देता है!

माताओ! तुम ऐसी मातायें बनो। तुम महान् हो; कोई तुमसे बड़ा नहीं है, यह अनुभव कर लेने से तुममें मातृत्व के सच्चे गौरव का वह प्रकाश जग जायगा, जो हम मनुष्य नाम-धारी पशुओं को मनुष्यता के, देवत्व के, अमरता के सच्चे मार्ग पर चलायेगा!

माताओ!

मृत्योर्माऽमृतं गमय!

भाई के पत्र

[विवाह-समस्या : स्त्री-जीवन]

[४] —— हवा किधर बह रही है ?

"प्रेम को लेकर आत्म-समर्पण करने में जो सुख है, वह कोरी बराबरी के ऊपरी अधिकार में नहीं है। मेरा विश्वास है कि प्रेम से सब-कुछ सम्भव है।"

—पत्र-संख्या ५

कुछ सच्चे पत्र

[गतवर्ष एक बहन से स्त्री-पुरुष-समस्या के विषय में मेरा जो पत्र-व्यवहार हुआ था, उसके आवश्यक अंश यहाँ दिये गये हैं। यह बहन विहार प्रान्त के एक प्रतिष्ठित परिवार की कन्या हैं और विहार के परदा-बहिष्कार आन्दोलन में पू० महात्माजी की अनुमति से काम भी करती रही हैं। आजकल अधिकार एवं बराबरी के झगड़े को लेकर पढ़ी-लिखी स्त्रियों में जिस कच्ची भावना का प्रचार हो रहा है, इनके आरम्भिक पत्र इस बात के उदाहरण हैं। आरम्भिक पत्रों में अधीरता की मात्रा अत्यधिक है पर मेरे समझाने एवं मेरे पत्र पढ़ने के बाद उनके विचार बहुत बदल गये हैं। अब इनका विवाह भी विहार के एक प्रतिष्ठित कुटुम्ब में हो गया है। ससुराल जाने तथा गृहस्थी की जिम्मेदारी आ पड़ने पर स्त्री जिस नये संसार में आ जाती है उसमें वह भी आ गई है और उनका जो पत्र विवाह के बाद आया उसमें उन्होंने मेरे ९-११-२९ के पत्र की ताईद करते हुए लिखा है कि अब मैं सचमुच परिस्थिति की गुरुता का अनुभव कर रही हूँ और आपकी आज्ञा एवं शिक्षा का भरसक पालन करने की चेष्टा करूँगी।

ये पत्र यहाँ इसलिए दिये जा रहे हैं कि इनसे इस समस्या पर रोशनी पड़ती है। ये व्यक्तिगत पत्र हैं और जब ये लिखे गये, इन्हें प्रकाशित करने की कल्पना भी मन में न आई थी इसलिए इनमें दोनों ओर के सच्चे मनोभाव प्रकट हुए हैं। आशा है इन पत्रों में प्रकट किये हुए सद्विचारों से मेरी बहनें लाभ उठायेंगी।

—'सुमन']

[१]

पत्र

अजमेर
९ फरवरी; १९२९ ई०

प्रिय श्री—,

'स्त्रियाँ और पुरुषों की ज़्यादतियाँ' नामक एक लेख कुछ दिन पूर्व मिला था। × × × । आप में प्रतिभा है, मानव-जाति की सेवा की भावना है, उत्साह है इसलिए उपर्युक्त लेख में प्रकट की हुई भावनाओं के सम्बन्ध में आपको कुछ लिखने को बाध्य हुआ हूँ। आप से मेरा परिचय नहीं है, इसलिए आपको यह विश्वास दिला देना कठिन है कि मेरे हृदय में आप से अधिक क्षोभ और आग है। कितनी ही बार मैंने अँधेरी रात में बैठ कर अपनी अनेक बहनों की दुर्दशा और रोमाञ्चकारी दयनीय स्थिति पर आँसू बहाये हैं—; अपने उन मित्रों से, जो सुधार के समर्थक होने पर भी बहुत ज़्यादा आगे बढ़ने से डरते हैं, लड़ता रहा हूँ फिर भी आपको ये चन्द बातें लिखने को बाध्य हुआ हूँ।

आपने पुरुषों के अत्याचार की जो कहानियाँ लिखी हैं, वे ठीक हैं। मैंने तो उनसे भी घृणित अत्याचार देखे हैं और कलेजा थाम कर रह गया हूँ। जहाँतक मुझसे बन पड़ा है सदैव मैंने मातृजाति को सहारा देने की चेष्टा की है। परन्तु हमारी माताओं और बहनों को सामाजिक आन्दोलन करते समय, व्यक्तिगत उदाहरणों का ध्यान न रख समाज के सामूहिक हित का ध्यान रखना चाहिए। मैंने तो इसे ऐसा ही सोचा है। मैं स्वयं देश, काल, जाति सब का भेद तोड़ कर विवाह करने का पक्ष-पाती हूँ, फिर भी इसके लिए सामाजिक आन्दोलन करना उचित नहीं

समझता। आप यदि व्यक्तिगत उदाहरणों की तह में पैठकर, समाज में क्या दोष आ गया है, यह देखें तो आपको मालूम होगा कि ये अभागे पुरुष क्रोध की अपेक्षा दया के ही पात्र अधिक हैं। जिसको अंग्रेज़ी में 'सेंस ऑव् प्रपोरशन' (सामञ्जस्य की भावना) कहते हैं, वह नष्ट हो गया है। सारे समाज की रचना ही दूषित हो रही है; इसमें पुरुषों और स्त्रियों—दोनों का भाग होते हुए भी, इसकी प्रधान ज़िम्मेदारी अलग-अलग नहीं डाली जा सकती। जैसे उदाहरण आपने पुरुषों की ज़बर्दस्ती के दिये हैं वैसे तो स्त्रियों की ज़बर्दस्ती के भी मैंने अपनी आँखों देखे हैं। फिर भी मुझे कभी उन स्त्रियों पर क्रोध नहीं आया। मैं जानता हूँ कि यह परिस्थिति का, वातावरण का दोष है, न पुरुष का न स्त्री का। हमें एक-दूसरे की निन्दा और भर्त्सना की जगह समाज की रचना ही नये सिरे से करने का प्रयत्न करना चाहिए; उसे ही बदलना चाहिए। जब समाज के मूल में घुसे हुए दोष दूर हो जायँगे तो उसमें उत्पन्न होनेवाले स्त्री-पुरुष स्वतः ठीक हो जायँगे। हमारा समाज तो उस भूमि के समान हो गया है जिसमें उपज की शक्ति ही नाममात्र को रह गई है और उसमें भी जो अधमरे, अशक्त पौधे उगते हैं उनको भूमि के कीड़े भीतर ही भीतर चाल डालते, खोखला और तत्त्वहीन कर देते हैं। उनका रूप-ढाँचा मात्र क़ायम है। इन पौधों का अन्न खाकर, इनकी अपौष्टिकता और सारहीनता पर इन्हें गाली देना व्यर्थ है—इससे क्या लाभ होगा ? हमें तो खेत को ही नये सिरे से तैयार करना होगा।

हमारी मातायें और बहनें आज कैसी मर्मान्तक वेदना का जीवन बिता रही हैं, यह क्या कहने की बात है ? मैं तो जब जब सोचता हूँ अपने को अन्धकार में पाता हूँ। कभी-कभी क्रोध उमड़ पड़ता है। मन में आता है, सचमुच ऐसे पुरुष नष्ट हो जाते तो अच्छा होता। पर जब शान्त होकर सोचता हूँ तो देखता हूँ कि इसमें उनका भी बहुत दोष

नहीं है। वे निरुपाय हैं, अज्ञान हैं; परिस्थिति ने उनकी बुद्धि निकम्मी कर दी है; वे दया के पात्र हैं, क्रोध के नहीं। सन्तोष होता है जब मैं देखता हूँ कि हमारी बहनें, इस हीनावस्था में भी, त्याग और तपस्या की साधना की भाँति, अन्धकार में चिनगारी की तरह चमक रही हैं। उनकी दया, उनकी करुणा, उनकी तपस्या, उनकी ममता और उनके स्नेह एवं प्रेम से ही समाज के अभागे पुरुषों का उद्धार होगा। उनके स्नेह और आशीर्वाद, उनकी लगन और मंगल-कामना पर मुझे बड़ा भरोसा है। इसीलिए जब उन्हें विचलित होते देखता हूँ तो ऐसा जान पड़ता है कि हमारी धरोहर में जो कुछ बचा था वह भी नष्ट होता जा रहा है। पुरुषों ने अपना पुरुषत्व खो दिया है, अब स्त्रियाँ अपना स्त्रीत्व खो दें तो हम रास्ते के भिखारी भी न रह सकेंगे। मैंने स्वयं कई विधवा बहनों की मौन तपस्या देखी है; उनके दुःख में रोया हूँ। जब ऐसी बहनों का मुँह देखता हूँ तो अपने को कितना तुच्छ बोध करता हूँ। कितना ये सहती हैं! यह तो मैं चाहूँगा कि उनका वह दुःख दूर हो जाय पर यह कभी न चाहूँगा कि उनमें दुःख सहने की, नीरव तपस्या और साधना की जो विभूति है, जो शक्ति है वही नष्ट हो जाय। आस्कर वाइल्ड * के इन शब्दों में मुझे विश्वास है—

"जहाँ दुःख है वहाँ पवित्रता है, किसी दिन मनुष्य इसे समझेगा।"

इसलिए मैं तो यही चाहूँगा कि आप जो-कुछ लिखें, प्रतियोगिता, प्रतिद्वंद्विता और बदले के भाव से नहीं वरन् शान्त होकर लिखें। हमारे जीवन में वेदनापूर्ण ऐसे अवसर आते हैं जब भीतर का दुःख, अन्तर की आग हमें चंचल, अशान्त, और अस्थिर बना देती है। हमें उस आग को जगाये रखकर भी संयम से, आत्म-दमन से, दृढ़ता पर शान्ति से काम लेना चाहिए। मैं युवक हूँ; यौवन के उत्साह का उपासक हूँ;

* अंग्रेज़ी भाषा का एक सुन्दर लेखक और मौलिक विचारक।

विद्रोह को अपना धर्म मानता हूं । मैं तो चाहूंगा कि हमारी बहनें भी विद्रोह करें पर यह विद्रोह उस दल के प्रति न हो, जिसके साथ उनको मार्ग काटना है, वरन् समाज की दूषित रचना के प्रति हो । जड़ ठीक हो जाय, मिट्टी उपजाऊ हो जाय तो सुन्दर पौधे अपने आप लहलहाने लगेंगे ।

× × ×

आपका—

श्री रामनाथ लाल 'सुमन'

[२]

उत्तर

आरा

१४ । २ । २९.

श्रद्धेय 'सुमन' जी

सादर प्रणाम ।

कृपापत्र के लिए कोटिशः धन्यवाद । आपने जो-कुछ लिखा है वह यथार्थ है—सत्य है। पर मैं कहती हूँ कि क्या पुरुषों के अत्याचारों के प्रति दया दर्शाना उनके भावों को उत्तेजन देता नहीं है ? मान लीजिए यदि उनके अत्याचारों का ख़याल न किया जाय, दया दिखाई जाय तो क्या इससे उन्हें दुगना उत्साह प्राप्त न होगा ? वे क्या इस तरह से स्त्रियों को और भी कुचल देने की चेष्टा न करेंगे ? पुरुष समर्थ हैं, वे यदि चाहें तो बात की बात में सारे समाज की रचना नये सिरे से कर डालें। इसीलिए मैं समझती हूँ कि सारी सामाजिक बुराइयों के लिए पुरुष ही दोषी हैं। लेकिन मेरा यह कहना भी नहीं है कि सबकी सब स्त्रियाँ साक्षात देवियाँ ही हैं ! स्त्रियों में भी जहाँ आप एक ओर करुणा और वात्सल्य की स्नेह-सरिता बहती पायँगे वहीं दूसरी ओर कठोरता तथा पैशाचिकता का ताण्डव-नृत्य होता हुआ पायेंगे। शिव और शैतान का कैसा विचित्र सम्मिश्रण है !

पुरुषों में भी यही बात पाई जाती है। एक तरफ जहाँ आप-जैसे महानुभाव हैं तहाँ दूसरी तरफ़ पैशाचिक काण्ड मचाने वाले महाशयों की भी कमी नहीं है। पर ऐसा होने पर भी मैं स्त्रियों को दोषी नहीं मानती। आप कहिएगा, यह मेरा अन्ध-विश्वास है ! एक स्त्री

होने के नाते अन्य स्त्रियों के प्रति प्रेम होना स्वाभाविक ही है। पर आप भी ज़रा ग़ौर करके सोचेंगे तो हमारी बातों से सहमत होंगे। स्त्रियाँ वास्तव में हतज्ञान हैं। वे पराधीन हैं; कहीं भी उनका अधिकार नहीं है। उनकी सारी मर्ज़ी पुरुषों के ऊपर है। वे कुछ करने को उत्साहित होकर भी पुरुषों के नादिरशाही हुक्म के आगे झुक जाती हैं।

आज कायस्थ जाति भारत में जितनी उन्नत है उतनी ही सदियों की बढ़ती हुई कुप्रथाओं की दास है। भले ही मेरी यह बात सारी कायस्थ जाति पर लागू न हो पर मैंने अबतक जहाँ-जहाँ देखा है, अनुभव किया है सब मेरे विचारों को पुष्ट करते हैं। उदाहरण के लिए आप जस्टिस सर..................हाईकोर्ट को लीजिए। आप सुधारक हैं; तिलक-दहेज आदि कुप्रथाओं के विरुद्ध अपनी आवाज़ बुलन्द कर चुके हैं। कायस्थ-पाठशाला के माननीय सदस्य हैं पर उन्होंने अपने लड़के की शादी एक ऐसी जगह की है जहाँ उन्हें दहेज में २५०००) मिले। दूसरी तरफ़ उनके घर की स्त्रियों की वहाँ शादी करने की ख्वाहिश न थी; उन्होंने इस गहरी रक़म को लेने का विरोध भी किया पर नक्कार खाने में तूती की आवाज़ कौन सुनता है? इसके विपरीत यदि × × × × स्त्रियों की जगह पुरुषों ने इसका विरोध किया होता तो क्या यह दहेज की भारी रक़म ज़बरदस्ती ली जाती? इसलिए मैं फिर कहूँगी कि सारे दोषों के ज़िम्मेदार हमारे पुरुष ही हैं।

मैं यह नहीं चाहती कि पुरुष-समाज ही नष्ट हो जाय पर यह तो ज़रूर चाहूँगी कि उनके दूषित कार्यों के लिए उनकी भर्त्सना की जाय, उन्हें लाँछित किया जाय। जब तक वे ज़लील न होंगे, उन्हें चेत न होगा; वे अपनी वास्तविक दशा से परिचित नहीं होंगे। आपके कथन को थोड़ा बदल कर मैं कहती हूँ कि मिट्टी ख़राब नहीं है पर पौधे लगने पर उन्हें बाहर के कीड़े चट कर जाते हैं; अच्छे-अच्छे पौधों की जड़ में कुप्रथाओं के कीड़े घुसकर उन्हें भीतर ही भीतर छलनी कर डालते हैं। इसलिए आव-

-वयक डालों को—कठोरतापूर्वक ही सही—काटकर कीड़ों को दूर किया जाना चाहिए।

आप सुधारक हैं, विद्वान् हैं और बड़ा ही सुन्दर हृदय आपने पाया है। इससे मैं समझती हूँ कि आप बड़े भारी आशावादी भी होंगे। आपने जो कुछ लिखा है, उसे पढ़कर मैंने यही अटकल लगाया है। इसलिए आपने जो कुछ लिखा है वह आप के ही योग्य है पर मैंने तो अधीर हृदय पाया है; ज़रा भी देर मेरे लिए असह्य है।.........हाँ, इतना मैं मानूँगी कि विवेक को कहीं न जाने देना चाहिए। हो सकता है कि मेरी यह अधैर्य-वादिता कई जगहों पर मेरे लिए अनिष्टकारक सिद्ध हो पर मैं विवश हूँ, लाचार हूँ। इच्छाओं का दमन करने पर भी भाव उमड़ पड़ते हैं, जिन्हें रोकने पर भी मैं नहीं रोक सकती। आपकी आज्ञा हमें मान्य है। मैं चेष्टा करूँगी कि मैं जो कुछ लिखूँ, शान्त होकर लिखूँ—पर सम्भव है उस समय भी मैं अपने हृद्गत भावों से लाचार हो जाऊँ। मैंने जो लेख भेजा, उसे लिखते समय मेरा हृदय अस्थिर था पर यथासम्भव मैंने रोकने की चेष्टा की थी इसलिए आप उस लेख में कहीं-कहीं भारी अस्वाभाविक शिथिलता पायेंगे। आपकी इस बात को यथार्थ समझकर मैं यहाँ दोहराती हूँ—"हमारे जीवन में वेदनापूर्ण ऐसे अवसर आते हैं जब भीतर का दुःख, अन्तर की आग हमें चंचल, अशान्त और अस्थिर बना देती है!" पर मुझे यही मुश्किल मालूम पड़ रहा है कि उस आग को जगाये रखकर भी संयम से, आत्म-दमन से, दृढ़ता पर शान्ति से कैसे काम लिया जाय? हाँ, यह बात ज़रूर ठीक है कि "हम विद्रोह करें पर यह विद्रोह उस दल के प्रति न हो जिसके साथ हमें जीवन का मार्ग काटना है, वरन् समाज की दूषित रचना के प्रति हो।' लेकिन हमें यहाँ भी एक मुश्किल सता रही है कि अगर हम उस रचना के प्रति विद्रोह करेंगी तो आखिर वह रचना किस पर लागू होगी? जो दोषी होगा उसी पर तो।......

आपकी बहन ....

[३]

प्रत्युत्तर

c/o 'त्यागभूमि'

सस्ता-साहित्य-मण्डल

अजमेर

१६ । २ । २९.

प्रिय......,

सप्रेम अभिवादन।

आपका १४ । २ । २९ का पत्र मिल गया था। बहुत दिनों के बाद मुझे एक चंचल और अधीर बहन से काम पड़ा है, जो अपने अधिकार के लिए दृढ़ होकर खड़ा होना चाहती है। यह प्रसन्नता की बात है कि आप-जैसी बहनें समाज-क्षेत्र में अग्रसर हो रही हैं।

मैंने जो कुछ आपको लिखा था वह आपके विचारों के प्रति द्वेष या पक्षपात से उद्बुद्ध होकर नहीं लिखा था; केवल मेरा व्यक्तिगत मत था। सामाजिक रूप से आन्दोलन करने के किसी वर्ग के अधिकार को मैं अस्वीकार नहीं करता पर बहुत कष्ट सहकर भी मैंने तो यही सीखा है कि—प्रेम का अधिकार ही सर्वोत्तम और सर्वोत्कृष्ट अधिकार है। यही नहीं, जब-जब प्रेम और अधिकार की प्रतिद्वंद्विता का मौका दुनिया में आया है, प्रेम ही विजयी होता रहा है। मेरा मत है कि अधिकार मिल जाने से ही स्त्रियों की समस्या हल नहीं हो सकती। स्त्री हृदय का प्रतिनिधि है; जगत् में जो कुछ रहस्यपूर्ण, पवित्र, कोमल और अत्यन्त मानवतामय (human) है, उसकी प्रतिनिधि है। अधिकार से उसकी तृषा, उसकी

भूख शान्त नहीं हो सकती। वह प्रेम से ही विजय करती है और प्रेम से ही जीती जा सकती है। यहाँ प्रेम शब्द को मैं वर्तमान दूषित अर्थ में प्रयुक्त नहीं कर रहा हूँ वरन् उसके उस सच्चे अर्थ में प्रयुक्त कर रहा हूँ जिससे मनुष्य मनुष्य है।

आपका यह समझना बिल्कुल भ्रमपूर्ण है कि पुरुषों के चाहने से ही वर्तमान सब बुराइयाँ दूर हो जायँगी। पहले का किसी का दोष रहा हो पर इस समय सामाजिक सुधार में स्त्रियाँ पुरुषों से कहीं पीछे और अधिक बाधक हो रही हैं। स्त्रियों का सम्पूर्ण वर्तमान आन्दोलन पुरुषों का ही आरम्भ किया हुआ है और आज भी पुरुष ही उसका बहुत कुछ सञ्चालन कर रहे हैं। अभीतक बहुत कम शिक्षित पुरुषों ने इसका विरोध किया है। मैं अपने व्यक्तिगत अनुभवों के आधार पर कह सकता हूँ कि किसी घर में सुधार का आरम्भ होने पर स्त्रियों की ओर से ही तूफ़ान खड़ा किया जाता है। स्त्रियाँ स्वभावतः पुराण-प्रिय होती हैं। मेरे कई सुधारक मित्रों को घर में सुधारों का प्रवेश कराने में बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा है। यहाँ तक कि एक का तो जीवन ही नष्ट हो गया।

ख़ैर; इन सब बातों के बाद भी मेरा हृदय स्त्रियों के प्रति भक्ति और उपासना के भावों से पूर्ण है। पुरुष और स्त्री का तो प्रश्न ही व्यर्थ है, दोष परिस्थिति का, हमारी मानसिक गुलामी और असहाय अवस्था का है। स्त्रियों की पीड़ायें, उनके त्याग महान् हैं पर अपना पक्ष उपस्थित करते समय विपक्ष का भी ध्यान रखना चाहिए। पुरुषों के कष्ट भी कम नहीं हैं। आजकल जीवन की सबसे गम्भीर समस्या आर्थिक है और आप जानती हैं कि घर के पीछे पुरुषों को कितने अपमान सहने पड़ते हैं; कितने मालिकों की ठोकरें खानी पड़ती हैं। कितनी बार घर की सुख-सुविधा के लिए आत्म-सम्मान बेचकर, खून के घूंट पीकर नौक-

रियाँ करनी पड़ती हैं। पुरुष यह पीड़ा क्यों झेले? उसे अपने भरण-पोषण के लिए बहुत थोड़े की आवश्यकता है; वह मौज से निर्द्वन्द्वतापूर्वक घूम सकता है पर इस आत्म-सुख का वह गार्हस्थ्य जीवन में बलिदान करता है। गार्हस्थ्य जीवन अन्योन्याश्रय (Interdependence) अर्थात् परस्परावलम्बन का जीवन है। इसमें पुरुष की पीड़ा स्त्री को और स्त्री की पीड़ा पुरुष को समझनी पड़ेगी। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। जबतक ऐसा न होगा, न स्त्री सुखी हो सकती है, न पुरुष सफल हो सकता है।

आप ज़रा शान्त होकर अपने हृदय को सम्हालें। जो आँधी में उड़ नहीं जाता, जो तूफान में भी स्थिर रहता है, वही महान् है। मैं यदि अपने अनुभव इस सम्बन्ध में सुनाऊँ तो मैं भी स्त्रियों के प्रति विरोध-भाव जाग्रत कर सकता हूँ पर अत्यन्त कटु अनुभवों के बाद भी इस पूज्य मातृजाति में मेरा विश्वास अटल है। मुझे अपने विचारों को आप पर लादने का, आपके विचारों को दबाने का कोई अधिकार नहीं। आज पश्चिम में जो कुछ हो रहा है, उसके प्रति भी मेरी खराब भावना नहीं है। मैं तो स्त्रियों को अपने-आप अपना आन्दोलन चलाते और अपना संचालन करते देखना चाहता हूँ। दूसरे को ज़बर्दस्ती अपने मार्ग पर चलाने का अधिकार किसी को नहीं है परन्तु कहीं ऐसा न हो कि ग़लतफ़हमियाँ बढ़ती जायँ और अन्त में स्त्रियों को पुरुष-विरोधी संघ और पुरुषों को स्त्री-बहिष्कार मण्डल खोलने की ज़रूरत महसूस हो। यूरोप में ऐसा एकाध जगह हो भी रहा है। हमारे लिए वह दिन एक दुर्भाग्य का दिन होगा जब ऐसी घटना घटित होगी। इसका उपाय यही है कि पुरुष-स्त्री दोनों एक-दूसरे के प्रति जो कुछ कहें-सुनें, अपनापन का भाव रखते हुए कहें-सुनें। एक-दूसरे को समझने और समझाने की, आपस की गलतफहमियों को दूर करने, परस्पर सहायता, सहयोग और सहानुभूति की नीति धारण करें।

संभव है, पुरुष होने के कारण, आप मुझे भी पक्षपात से दूषित समझ लें। इसे मैं अपना दुर्भाग्य ही कहूँगा पर इस लाञ्छा को बर्दाश्त करके भी मैं तो अन्त तक यही कहता रहूँगा कि आप जो लिखें सोच-समझकर, शाँत होकर लिखें। लेखनी बहुत महत्त्वपूर्ण वस्तु है। यह याद रक्खें कि जो कुछ आप लिखेंगी, उसका असर समाज पर पड़ेगा।

आपने स्वयं अपने मन की अशान्ति की बात स्वीकार की है। आप इस अशान्ति को रोकिए। धारा के साथ बह जाने में आनन्द और आत्मोल्लास नहीं है; धारा के वेग को पराजित कर अपने को ऊँचा उठाने में आनन्द है। सुख, हृदय की विशालता का नाम है और वह त्याग एवं तपश्चर्या, संयम एवं बलिदान के बिना प्राप्त नहीं होता। मुझे दुःख होता है, जब मैं देखता हूँ कि स्त्री होकर भी, स्त्री का हृदय पाकर भी आप लोग यह भूल जाती हैं कि सुख का केन्द्र ग्रहण नहीं, दान है; अधिकार नहीं, आत्म-समर्पण है। स्त्री जगत की माता है और इसीलिए वह महान् है। उसमें माता का हृदय होना चाहिए। उसे साधना से स्खलित होते—गिरते देखकर उसकी अपेक्षा कहीं अधिक दुःख होता है जितना एक पुरुष को गिरते देखकर होता है।

आपका—

श्री रामनाथ लाल 'सुमन'

[४]

तीसरे पत्र का जवाब

आरा

२६-२-२९

माननीय

मैंने यह कभी नहीं लिखा या समझा कि आपने जो कुछ लिखा ० ५० मेरे विचारों से उद्बुद्ध होकर। यदि आपने मेरे पत्र के किसी अंश से ऐसा ख़याल किया है तो मैं उस अंश को लिखने के लिए लज्जित हूँ और क्षमा-प्रार्थी हूँ। पर मुझे जहाँ तक ख़याल है वहाँ तक कह सकती हूँ कि मैंने अपने पत्र में किसी ऐसे शब्द का प्रयोग नहीं किया है जिससे आप ऐसा ख़याल कर सकें।

आपने जो कुछ लिखा है उसे मैं मानती हूँ। यह तो ध्रुव सत्य है कि प्रेम का अधिकार ही सर्वोत्तम—सर्वोत्कृष्ट है। पर यहाँ पर मैं जो कुछ लिखूँ उसके लिए क्षमा—प्रार्थना करते हुए मैं पूछना चाहती हूँ कि आजकल जैसी धाँधली मची है उसे देखते हुए क्या यह माना जा सकता है कि इसे हम प्रेम से जीत लेंगे ? यदि ऐसा माना भी जा सके तो इसके लिए बहुत बड़े धैर्य की आवश्यकता है और जैसा कि मैं लिख चुकी हूँ कि दुर्भाग्य या सौभाग्य से इतने धैर्य की क्षमता मुझ में नहीं है। पर तो भी मुझे भान हो रहा है—मेरा हृदय स्वीकार कर रहा है कि आप जो कुछ

कह रहे है, उसे मानना मेरा धर्म है—मेरा कर्त्तव्य है—और चाहे जैसे हो मुझे धैर्य रखना ही पड़ेगा।

हो सकता है कि मेरी यह धारणा (पुरुषों के चाहने से सामाजिक बुराइयों का दूर होना) ग़लत हो पर जहाँतक मैं समझती हूँ सामाजिक बुराइयों को दूर करने में पुरुषों का बहुत बड़ा हाथ है और अधिकांशतः इसकी ज़िम्मेदारी उन्हीं पर है। यह तो मैं क्या, दूसरो कोई भी निर्विवाद मानेगी कि इस समय जो कुछ भी सामाजिक सुधार हुआ है उसमें पुरुषों का बहुत बड़ा हाथ है और इसीसे तो मैं कहती हूँ कि वर्तमान सामाजिक बुराइयाँ पुरुष बहुत शीघ्र ही कोशिश करके दूर कर सकते हैं।

बेशक सामाजिक सुधारों में स्त्रियाँ बाधक हो रही हैं। क्योंकि वे दुर्बल विश्वास की हैं; समझने की शक्ति नहीं हैं, इसलिए वे पुराण-प्रिय भी हैं। पर मैं तो यह कहना चाहती हूँ कि वे पुरुष, जो विद्वान् होने का दावा करते हैं, इन रूढ़ियों, कुप्रथाओं को क्यों मानें? यहाँ मैं प्रसंग-वश एक प्रसिद्ध घराने की बात लिखती हूँ जो कि बड़े अमीर इज्जतवाले हैं—कुप्रथाओं को नहीं माननेवाले हैं। दुर्भाग्य से उनकी पत्नी महाशया ऐसी मिलीं जो रूढ़ियों में प्रबल विश्वास रखनेवाली थीं। पति महाशय को पत्नी के इन 'गुणों' पर एतराज़ था। उन्होंने इसके लिए उन्हें कई प्रकार से समझाया; अन्त में छोड़ देने की धमकी दी (यह एक ऐसा रामबाण उपाय है जिससे हर एक स्त्री काबू में आ सकती है) तब कहीं पत्नी उनकी आज्ञानुसार चलने लगीं, और आज वे ही एक सुप्रसिद्ध और भद्र महिला मानी जा रही हैं। तो क्या इससे हम यह नहीं मानें कि पुरुष सब कुछ कर सकते हैं?

मुझे मालूम होता है कि आप मुझ में पुरुषों के प्रति श्रद्धा के भाव की बहुत कमी समझते हैं। यदि सचमुच ही आप ऐसा समझते हों तो यह मेरा दुर्भाग्य है। पर वास्तव में बात ऐसी नहीं है। हाँ, आप ऐसा समझें

भी तो आश्चर्य नहीं क्योंकि मैंने अबतक आप के सम्मुख अपने जिन विचारों को रक्खा है उनमें पुरुषों के प्रति विद्वेष ही दिखाया गया है। पर पुरुषों के प्रति श्रद्धा के भावों की मुझमें कमी नहीं है; हाँ मेरा अशान्त हृदय जब कुछ भी देखता है तो एकबारगी भड़क उठता है । मैंने अबतक पुरुषों की जो ज्यादतियाँ देखी हैं उनसे मेरा हृदय दहल उठा है । कुछ पुरुषों से तो मुझे खूँख्वार शेर से भी ज्यादा डर लगता है । इसलिए मेरी लेखिनी से बरबस ही पुरुषों के प्रति विद्रोह की बातें निकल पड़ती हैं । यह मेरा दुर्भाग्य है कि अबतक जितने पुरुषों का परिचय मैं पा सकी हूँ, किसी के हृदय को विशाल, निर्भीक तथा स्त्रियों के प्रति स्नेह के भावों से भरा हुआ नहीं पाया। इसलिए यदि पुरुषों के प्रति मेरे मनमें विद्रोह की बातें उठें तो वह स्वभाविक ही कहा जा सकता है। हाँ, दो-चार पुरुष मेरे देखने में ऐसे आये हैं जिन्हें मैं आदर, भक्ति की दृष्टि से देखती हूँ तथा उनका गुण-गान करने से भी नहीं चूकती।

एक बात आपने अवश्य मार्के की लिखी अर्थात् जितने अपमान, जितनी ठोकरें पुरुषों को सहनी पड़ती हैं वे सिर्फ़ 'घर' अर्थात् स्त्रियों के लिए ! पर मैं इसे नहीं मान सकती। पुरुषों ने ही तो उन्हें पंगु बना दिया। अच्छा, विद्रोह की बातें छोड़ हम सरसरी निगाह से देखें तो हमें मालूम होगा कि स्त्रियों का पालन करना पुरुषों का सर्वश्रेष्ठ कर्त्तव्य है क्योंकि गृहस्थी के भीतर दो ही कर्णधार होते हैं—एक पुरुष, एक स्त्री ! हमारे पूर्वजनों ने बहुत दूर तक का ध्यान रखकर गृहस्थी के भीतर संचालन का भार स्त्रियों को दिया और बाहरी पुरुषों को। पुरुषों का काम हुआ द्रव्यादि लावें और स्त्रियाँ उसका उचित उपयोग करके घर भर के व्यक्तियोंको सुख-सुविधा पहुँचावें। पर इससे यह अर्थ नहीं निकला कि पुरुष स्त्री के ही लिए आत्म-सम्मान बेचकर द्रव्य पैदा करता है—इसे वह अपना कर्त्तव्य समझकर करता है; अपना गार्हस्थ्य जीवन सुखी बनाने के लिए

करता है। यदि उसकी आवश्यकता बहुत थोड़े से पूर्ण हो सकती है और उससे वह निर्द्वन्द्व काल-यापन कर सकता है तो वह स्त्री को छोड़ दे, उससे कोई सम्पर्क न रक्खे, फिर देखिए स्त्रियाँ अपने लिए कुछ करती हैं कि नहीं। आज भी नीची श्रेणी के लोगों में पुरुषों के रहते हुए भी स्त्रियाँ मेहनत-मजूरी करके पेट पालती हैं तो क्या भविष्य में पुरुषों के छोड़ देने पर नहीं कर सकतीं? क्या उन्हें इसका भरोसा नहीं है?

पर ईश्वर न करे कि इन आँखों से वह दिन देखना पड़े! यहाँ की स्त्रियाँ सब कुछ चाहेंगी पर इतनी भीषण कल्पना नहीं कर सकतीं। आपका समर्थन करते हुए मैं भी दोहराती हूँ कि 'पुरुष की पीड़ा स्त्री को और स्त्री की पीड़ा पुरुष को समझना चाहिए। इसी में दोनों का कल्याण है न कि परस्पर विद्रोह में।'

एक बात का मुझे दुःख है। आप लिखते हैं—"मुझे अपने विचारों को आप पर लादने का कोई अधिकार नहीं है।" मैं नहीं समझती कि एक भाई को अपनी बहन को समझाने या अपने विचारों को उससे मनवाने का अधिकार क्यों नहीं है? जबकि वह समझता हो कि मेरी एक बहन ग़लत रास्ते पर चली जा रही है :

यूरोप की बात दूसरी है। आज स्त्रियों की स्वाधीनता का वहाँ कैसा दुरुपयोग किया जा रहा है! वह स्वाधीनता किस काम की जिसमें धर्म को कोई स्थान नहीं। वहाँ की स्त्रियाँ जैसी उच्छृंखल हो रही हैं, उसे देखते हुए मैं अपने परवशतामय, परतंत्र जीवन को लक्ष्य रखकर भी कह सकती हूँ कि वहाँ की स्वाधीनता से यहाँ की परतंत्रता लाख दर्जे अच्छी है, जहाँ कि अब भी सीता-सावित्री जैसी कुल ललनायें पाई जा रही हैं; जहाँ कि अब भी गार्हस्थ्य धर्म सर्वश्रेष्ठ माना जा रहा है और सर्व साधारण उसका पालन कर रहे हैं। आज यूरोप में ऐसे घराने बिरले ही होंगे जहाँ गार्हस्थ्य धर्म के नियमों का यथोचित पालन किया जा रहा हो।

वहाँ की स्त्रियों के मन में सब कुछ पाकर भी न जाने कैसी ज्वाला धधक रही है कि वे नीचे से नीचे गिरती जा रही हैं पर उन्हें इसका भान नहीं होता है। वहाँ पुरुष और स्त्री दोनों का यही हाल है। इसीलिए वहाँ पर 'स्त्री-बहिष्कार-मण्डल' और 'पुरुष-विरोधी-संघ' की आवश्यकता जान पड़ी है पर हम लोग तो यह नहीं चाहतीं। हम तो चाहती हैं कि हम भी मनुष्य मानी जाएँ; हमारा भी कुछ अधिकार माना जाय; हम बिलकुल ही पुरुषों के मन-माफ़िक घुमाई जाने वाली कठपुतली न समझी जायँ; हम लोगों की पुकार भी सुनी जाय; एकतरफ़ा डिग्री न हो। ऐसा क्यों हो कि पुरुष जन्म-भर व्यभिचारी रह कर भी समाज के मुखिया माने जायँ और स्त्रियाँ अनजाने में भी कुछ ऊँच-नीच कार्य करने से समाज के बाहर कर दी जायँ! आखिर हम भी तो मनुष्य ही हैं; कबतक इतनी अवहेलना बर्दाश्त कर सकेंगी? ज़रा-ज़रा सी बातों के लिए लांछित होना, कुत्तों के समान दुतकारा जाना हमारा हृदय कबतक बर्दाश्त कर सकता है? आप लोग यह न समझें कि आज की हालत में रहने वाली स्त्रियाँ प्रसन्न हैं। नहीं, हमारा तो यह हाल है कि पर्वत के भीतर ज्वालामुखी धाँय-धाँय जल रहा है और ऊपर पेड़-पत्ते-तृण सभी हरे हैं। आठ-दस बहनों के पत्र मेरे सामने पड़े हैं जिनमें उनके मन की अशान्ति झलक रही है; उनकी दुर्दशा अकथ है और उन सब बातों को देने की यहाँ जगह भी नहीं है क्योंकि पत्र आवश्यकता से अधिक लम्बा हो गया है। × ×

आपकी—

एक तुच्छ बहन

... ...

[५]

पिछले पत्र का उत्तर

अजमेर
४।३।२९

प्रिय बहन........,

.............बहन, मेरे पास तो कोई नूतन बात लिखने की नहीं है। मुझे तो अपने इस विचार पर पूर्णतः विश्वास है कि प्रेम जीवन का बसन्त है; उसको लेकर आत्म-समर्पण करने में जो सुख है वह कोरी बाहरी बराबरी के अधिकार में नहीं है। मेरा विश्वास है कि प्रेम से सब कुछ सम्भव है। धैर्य की ज़रूरत होती है पर धैर्य कोई बुरी चीज़ नहीं है। मैं तो जन्म से ही विद्रोही हूँ। युवक हूँ; मेरी नस-नस में समाज के वर्तमान संगठन के प्रति विद्रोह की आग भरी हुई है पर उस आग में ऐसी शक्ति होनी चाहिए कि हमारे दूषणों को जला दे। तपस्या और त्याग से सब-कुछ सम्भव है। मैं तो त्यागमय दुःख को सदैव साधारण लौकिक सुखों से अधिक अच्छा समझता आया हूँ। अपने को, दूसरों के सुख के लिए, दुःख की वेदी पर, बलिदान कर देने में जो सुख, जो आत्मोल्लास होता है उसकी समता केवल बराबरी के अधिकार का बाह्य सामाजिक आवरण कभी नहीं कर सकता। × × × जीवन में ऐसा अवसर आता है, जब मनुष्य का हृदय किसी के चरणों पर सब कुछ चढ़ा देने—आमतसपर्मण करने—को उत्कण्ठित हो उठता है। यही विवाह का, यही प्रेम का, यही मैत्री का और यही समाज-रचना आदि का प्रेरक कारण है। इस कारण की उपेक्षा सम्भव नहीं है; उपेक्षा करने से पतन और निम्न कोटि के दुःखों का आगमन

अनिवार्य है। यदि आप लोग संयम से काम लेंगी तो अपना उद्धार तो करेंगी ही पुरुषों को भी, अपने त्याग और तपस्या के बल पर, ऊँचा उठाने में समर्थ होंगी। मैं यह सब न तो पुरुष की हैसियत से लिख रहा हूँ, न स्त्री की। मेरे भीतर इसके बारे में जो वेदना है, उसे ही स्पष्ट कर देना था। थोड़ा-सा कवि का हृदय मैंने पाया है अतएव उसमें स्वभावतः पुरुष (वीरता, साहस, संघर्षशीलता) की अपेक्षा स्त्री (कोमलता, स्नेह, पवित्रता, त्याग) के लिए अधिक ऊँचा स्थान है और चूँकि मेरे हृदय में स्त्रियों के लिए पुरुषों से अधिक आदर है, इसीलिए मैं चाहता हूँ कि स्त्रियाँ सदैव 'स्त्रीत्व' की रक्षा में तन्मय दिखाई दें। पुरुषों ने अपना पौरुष छोड़ दिया है। अपने गुणों की रक्षा-द्वारा स्त्रियाँ उन्हें रास्ता दिखायेंगी।

आपकी पुरुषों के द्वारा ही सारे सुधार हो जाने की बात ठीक नहीं। गृहस्थाश्रम और समाज में पुरुष की प्रेरक शक्ति स्त्री है, न कि स्त्री की प्रेरक शक्ति पुरुष। आज जो इतना शोर-गुल होने पर भी काम बहुत थोड़ा हो रहा है उसका कारण यही है कि हमारी मायें, हमारी बहनें, हमारी पत्नियाँ और हमारी बेटियाँ, जीवन की दौड़ में हमसे पीछे हैं। उन्हें तो रास्ता दिखाना चाहिए; आदर्श उपस्थित करना चाहिए और कम से कम पुरुषों के साथ-साथ तो होना ही चाहिए। स्त्रियाँ विद्रोह करें; स्त्रियाँ आगे बढ़कर परिस्थिति को सम्हालें, मैं भी यही चाहता हूँ पर ऐसा करते समय वे अपना वह सत्व, वह 'ग्रेस' (ओज) न खोदें, जिसके बिना वे कुछ नहीं है!

× × × मुझे दुःख है कि जीवन में कभी आपने किसी पुरुष को स्त्री के लिए सम्मान और भक्ति से पूर्ण नहीं पाया पर इससे आपको यह अनुमान नहीं कर लेना चाहिए कि सभी पुरुष ऐसे होते हैं। यह विचार तो वैसा ही है जैसा हमारे बहुत-से प्राचीन कवि, आचारशास्त्री और स्मृतिकार, आत्म-वंचना के साथ, कह गये हैं—'स्त्रियों का विश्वास मत

करो, उनसे बचे रहो; वे ताड़ना और शासन की अधिकारिणी हैं।' इत्यादि।

मैं तो एक ओर पुरुषों से कहूँगा कि अपनी कलुषित भावनायें छोड़ो और स्त्रियों के लिए मन में आदर उत्पन्न करो और दूसरी ओर स्त्रियों से कहूँगा कि तुम लोग हमें मातृत्व के वात्सल्य, भगिनीत्व के स्नेह एवं पत्नीत्व के सौख्य और प्रेम से सुसंस्कृत करो अन्यथा तुम भी नष्ट हुईं!

आपका
श्री रामनाथलाल 'सुमन'

[६]

[बीच के दो पत्र ग़ायब हो गये]

आरा

४ । ४ । २९

मा० सुमनजी,

.........साधनामय जीवन, तपस्या और त्याग को मैं अपना ध्येय मानती हूँ। लौकिक सुखों की अपेक्षा सदा ही मैंने इन बातों को श्रेष्ठ समझा और इनके अनुकूल बनने की चेष्टा की है। × × × बड़े से बड़े स्वार्थ को दूसरे के हितार्थ मैंने बिना किसी हिचकिचाहट के छोड़ दिया है। अब रही विद्रोही की बात, सो भी मैंने स्वार्थमय भावनाओं से प्रेरित होकर विद्रोह को नहीं अपनाया है। मैंने अपनी उन बहनों की दुर्दशा देखी जो घर की चहार दीवारी के अन्दर बन्द रहकर दिन-रात आत्मीयों एवं स्वजनों की झिड़कियाँ, लाञ्छायें एवं डाँट-डपट सह रही हैं। मनुष्य होकर भी वे क्यों इतनी यातनायें सहें? यही सोचकर मैंने पुरुषों की ज्यादतियों के विरुद्ध आवाज़ उठाई। इसमें मेरा कोई स्वार्थ नहीं है।

मैं मानती हूँ कि 'अपने सुख को दूसरे के सुख के लिए, दुःख की वेदी पर बलिदान कर देने में जो सुख, जो आत्मोल्लास होता है, उसकी समता केवल बराबरी के अधिकार का, बाह्य सामाजिक आवरण कभी नहीं कर सकता।" पर एक बात है। आप सोचें तो सही कि सभी महान् नहीं बन सकते। संसार स्वार्थों के लिए आकाश-पाताल एक कर रहा है। फिर यदि उसे आप त्याग का पाठ पढ़ायेंगे तो वह उसपर अमल नहीं

करेगा। स्वार्थ छोड़ना आसान बात नहीं। इसलिए ऐसे बहुत कम मनुष्य पाये जायँगे जो अपने स्वार्थों की अवहेलना हँसते-हँसते कर सकें। स्त्रियाँ भी किसी दूसरी सृष्टि की जीव नहीं, इसी से मनुष्योचित अधिकार के लिए वे भी लालायित हैं। 'सुमन' जो, एक स्त्री होने की हैसियत से मैं उनके जितना निकट पहुँच सकती हूँ, उतना पुरुष होकर आप लोग नहीं। बहुत कम सत्य बातें आपके सुनने में आई होंगी और जो कुछ आपने सुना या समझा है वह केवल अपने अनुभवों अथवा अन्य लोगों के द्वारा, जो या तो अतिरंजित होंगी या संक्षिप्त।

जब कुछ स्त्रियाँ इकट्ठी होकर आपस में अपने दुःख की बातें करने लगती हैं तो उन्हें सुनकर कौन ऐसा सहृदय व्यक्ति होगा जो उनकी दुर्दशा पर दो बूँद आँसू न गिरा दे? ऐसी अभागिनी बहनों के बीच पहुँचने का मुझे अवसर आया है जिन्हें पहले तो मैं बड़ा सुखी समझती थी पर जब उनसे घनिष्ठता बढ़ी तब मुझे मालूम हुआ कि वे कैसी विपद में हैं। बाहरी या एक-दो दिनों तक देखने वाला व्यक्ति उनके दुखों को नहीं जान सकता है। वे अपने सारे दुःखों को अपने हृदय में दबाये रखती हैं। उनसे बातचीत करने पर मालूम होता है कि उनके जीवन का कुछ मूल्य नहीं; उनका जीना और न जीना दोनों बराबर है। इसी से मैंने यह अनुभव किया है कि यदि उन्हें बराबरी का अधिकार दिया जाय तो सर्वांश में नहीं तो कुछ अंशों में तो अवश्य ही उनकी तकलीफ़ें दूर हो सकती हैं।

मैं नहीं चाहती कि स्त्रियाँ अपना 'स्त्रीत्व' खो दें। मैं इसके पक्ष में नहीं हूँ। हमारे लिए वह दुर्भाग्य का दिन होगा जिस दिन स्त्रियाँ अपना 'स्त्रीत्व' खो देंगी। पर सुमनजी, मैं पूछना चाहती हूँ कि क्या बराबरी का अधिकार मिल जाने से ही उनके 'स्त्रीत्व' में धब्बा लग जायगा अथवा वे अपनी कोमलता एवं स्त्री-सुलभ गुणों को त्याग देंगी?

हाँ, किसी-किसी के जीवन में ऐसा समय आता है जब किसी के चरणों पर सब कुछ चढ़ा देने, आत्म-समर्पण करने को वह उत्कण्ठित हो उठता है। उस समय अधिकार-अनधिकार की बातें नहीं रह जातीं। इसी का नाम 'प्रेम' है पर हम यदि आजकल अधिकांश व्यक्तियों का जीवन देखें तो उनमें 'प्रेम' नाम की कोई चीज़ नहीं पायेंगे। केवल स्वार्थ-भावना से ही प्रेरित होकर वे परस्पर सम्बन्ध बनाये हुए हैं और इस सम्बन्ध में भी एक को सारे अधिकार प्राप्त हैं और एक को कुछ नहीं। एक, दूसरे पर अत्याचार करता है पर उसका कुछ प्रतीकार नहीं है। इसीलिए मैं 'अधिकार' के लिए लड़ रही हूँ। इसी विषय पर एक महाशयजी से मेरी बात-चीत हुई थी। उन्होंने कहा—"स्त्रियाँ सब कुछ करें, उन्हें रोकता कौन है जी? वे स्वयं दब्बू बनी हैं।" पर जब उनकी स्त्री ने साधारणतः अपने आराम की बातें कहीं तब लगे आप गरजने-तरजने। यहाँ तक कि उसका बुरा हाल है; कठिन बीमारी है पर उसकी कुछ पूछ नहीं; मरे या जिये उन्हें मतलब?

× × ×

आपकी—

... ...

[७]

पिछले पत्र का उत्तर

[पत्र के आवश्यक अंश मात्र दिये गये हैं]

अजमेर।

१५।४।२९

प्रिय बहन......,

× × आपका यह दावा तो मैं मानता हूँ कि एक स्त्री होने की हैसियत से आप स्त्रियों को अधिक समझ सकती हैं पर इस समझने के कारण ही मैं यह आशा रखने का अधिकारी हूँ कि आप अपनी दुखिया बहनों, और साथ ही अज्ञान भाइयों, के लिए अपने हृदय में स्नेह, ममता, करुणा और सहानुभूति धारण करेंगी—क्रोध, अभिमान, द्वेष और अधिकार के कटु-भाव नहीं। दुनिया की ओर से, उसकी गति से उदासीन होना तो ठीक नहीं परन्तु केवल दुनिया की ओर देखकर, उसकी गति का अन्धानुसरण करके मानव-हृदय की पवित्रता और सरलता क़ायम न रह सकेगी।

स्त्रियों के एकत्र होकर बातें करते समय तो मैं उनके बीच नहीं रहा हूँ क्योंकि वर्तमान सामाजिक अवस्था में यह सम्भव नहीं है पर अनेक बहनों के हृदय में जलनेवाली वेदना की उस शिखा को मैंने बहुत नज़दीक से देखा है जो भीतर ही भीतर जलाती है और बाहर लज्जा और पवित्रता के आवरण को चीरकर निकल नहीं पाती। ऐसी बहनों को जब-जब मैंने देखा है, अपने को उनके आगे बहुत ही तुच्छ अनुभव किया है। उनको

सिर झुकाकर मन ही मन प्रणाम करता रहा हूँ और हृदय उनके चरण धोने को उमड़ता भी रहा है पर उनका वह पवित्र तेज, वह दूसरों को भी पवित्र कर दने वाली वेदना मुझे इतनी अमूल्य, इतनी पवित्र मालूम होती है कि कभी मैंने अधिकार-जैसी तुच्छ वस्तु के लिए उस महान् मातृत्व के प्रकाश को नष्ट करने की क्षमता अपने में न पाई। मन ही मन रोया हूँ; उनकी अवस्था पर कलेजा मसोस कर रह गया है। ऐसी देवियों को कष्ट देने वाले समाज पर घृणा के भाव भी जाग्रत हुए हैं परन्तु उन तपस्विनी बहनों को तपस्विनी देखने में ही मुझे सन्तोष रहा है। उन्हें देखकर गर्व से, गौरव से छाती फूल उठती है। यदि उनका दुःख दूर करने में सारा जर्जर समाज नष्ट हो जाय तो भी मुझे उतना दुःख न होगा; उसकी मुझे उतनी चिन्ता नहीं है पर कहीं ऐसा न हो कि इन बहनों की तपस्या नष्ट हो जाय; कहीं वे विलास और भोग की धारा में बह न जायँ। आप लोग तो हम अभागे पुरुषों की ओर न देखिए; आप लोग तो अपने भगिनीत्व, अपने पत्नीत्व और अपने मातृत्व की ओर देखिए। आज विश्व में जो कलुष, जो पाप बढ़ रहा है; द्वेष-दम्भ की जो आँधी चल रही है; राजनीतिज्ञ कमज़ोर देशों को दबाकर समूचा निगल जाने का, युद्ध की विराट तैयारी का जो षड्यंत्र रच रहे हैं, उसमें भी पश्चिम की स्त्रियाँ भाग लेकर उनका विरोध कर रही हैं और उनके प्रयत्नों से शान्ति-स्थापना में बड़ी सहायता मिली है। कई यूरोपीय कुटुम्बों से मेरा परिचय रहा है और यद्यपि यूरोपीय बहनों की तेजस्विता, साहस, वीरता और सामाजिक निर्भीकता का मैं एक अनन्य प्रशंसक हूँ, फिर भी कोमलता, मातृत्व, क्षमा दया, स्नेह और करुणा को उनपर श्रेष्ठता देनी ही पड़ेगी। हमारी माँओं और बहनों में दोनों का समन्वय, दोनों का मिलाप होना चाहिए पर एक को खोकर दूसरे को ग्रहण करना उचित न होगा। यदि आप मेरी बात पर विश्वास रख सकें तो मैं कहूंगा कि स्त्री-पुरुषों की वर्तमान कटुता बहुत-कुछ

ग़लतफ़हमी से ही उत्पन्न हुई है। इसमें पुरुषों और स्त्रियों का उतना दोष नहीं है जितना परिस्थिति और हमारी ग़ुलाम मनोवृत्ति का है।

मैंने यह कभी नहीं लिखा कि बराबरी का अधिकार मिल जाने से स्त्रियाँ 'स्त्रीत्व' खो देंगी। मैं तो समाज में स्त्रियों को पुरुषों से भी अधिक महत्वपूर्ण अंग समझता हूँ और सच पूछिए तो इसीलिए इतना लिखा है। पर मैं यह नहीं समझता कि बराबरी का निश्चित रूप क्या है? क़ानूनों में संशोधन होना चाहिए; सामाजिक मामलों एवं उत्तराधिकार के प्रश्नों में स्त्री का हाथ होना चाहिए, इसे तो सभी विचारवान मानते हैं। इसके लिए प्रयत्न भी हो रहा है पर अधिकार का रोग कहीं इतना न बढ़ जाय कि घरेलू जीवन की नींव उखड़ जाय; गृहस्थ की सुख-शान्ति चौपट हो जाय। याद रखिए, कुटुम्ब समाज की आरम्भिक श्रेणी है। यदि कौटुम्बिक जीवन सुखी, शान्त न रहा तो समाज ही नष्ट हो जायगा। इसके लिए सबसे अच्छा उपाय यही है कि पुरुष स्त्रियों को गाली न देकर उन्हें समझें और स्त्रियाँ पुरुषों को गाली न देकर उन्हें समझें। प्रेम और सहानुभूति से ही यह समस्या हल हो सकती है।

× × ×

आपका

श्री रामनाथलाल 'सुमन'

[८]

पिछले पत्र का उत्तर

आरा

२०—४—२९

माननीय श्री 'सुमन' जी,

...............हाँ मैं तो ज़रूर ही त्याग और बलिदान के भावों को श्रेष्ठ समझती हूँ पर मैंने तो महान् की बाबत इसलिए लिखा था कि सभी स्त्रियाँ साधनामय जीवन बिताने को तैयार नहीं; इसलिए अपनी इच्छा के विरुद्ध जीवन होने से वे दुखी हैं और उस दुःख को दूर करने के लिए ही उन्हें 'अधिकार' की आवश्यकता जान पड़ी है। इसलिए उन्हें 'अधिकार' मिलना चाहिए। इससे घरेलू जीवन की नींव नहीं उखड़ेगी और न गृहस्थ की सुख-शांति चौपट होगी वरन् दोनों का जीवन अधिका-धिक सुखी होगा—, आजकल जैसा दाम्पत्य-जीवन पाया जाता है उनका दाम्पत्य जीवन उससे कहीं ज्यादा सुखी होगा। आजकल से कहीं ज़्यादा वे एक दूसरे के दुःख-सुख को समझेंगे; परस्पर प्रेम में अधिक श्री-वृद्धि होगी।

आप उन अभागिनी बहनों के दुःख को समझते हुए भी—उनके दुःख में समवेदना रखते हुए भी—डरते हैं कि "कहीं ऐसा न हो कि इन बहनों की तपस्या नष्ट हो जाय; कहीं वे विलास और भोग की धारा में न बह जायँ।" पर आप विश्वास रक्खें ऐसा डर एकदम नहीं तो बहुत अंशों में व्यर्थ हो सकता है। उदाहरण के लिए आज विधवा-विवाह इतनी कम मात्रा में क्यों हो रहा है? इसका साफ़

जवाब है हमारा वातावरण; हमारी महिलाओं की मनोवृत्ति! मुझे तो बदचलन बहनों पर आश्चर्य होता है कि कैसे वे इस तरह के वातावरण में रहकर भी बदचलन हो जाती हैं! पर ऐसी बहनें बहुत कम देखने में आती हैं। कई बाल-विधवा बहनें—विधवा-विवाह की कट्टर समर्थक होते हुए भी—अपना ही विवाह करने को राज़ी नहीं। इसलिए आप डरें नहीं। वे सामान्य अधिकार माँग रही हैं अपना दुःख दूर करने के लिए; बेजा स्वतन्त्रता के लिए नहीं। मैं स्वयं बेजा स्वतन्त्रता की विरोधिनी हूँ क्योंकि कुछ बहनें अपनी स्वतन्त्रता का इस तरह दुरुपयोग कर रही हैं कि उनकी चाल-ढाल को देखकर भविष्य अन्धकार से आच्छादित दिखाई पड़ता है और इसमें हमारी शिक्षिता कहलाने वाली कालेजी बहनों का बहुत बड़ा हाथ है। मुझे इन बहनों के ऊपर बड़ा क्षोभ होता है। तारीफ़ तो यह कि अपनी बातों के आगे वे किसी की बातों को क़द्र करना जानती नहीं। और ऐसी हालत में, मेरी समझ में, उनकी विद्वत्ता का कोई मान ही नहीं रह जाता है। वे कालेज से विलासिता की साक्षात् मूर्ति ही निकलती हैं। उनसे देश, समाज या जाति क्या आशा कर सकती है? वे बहुत अंशों में पश्चिम का अन्ध अनुसरण करती हैं पर वह भी अवगुणों का ही। पाश्चात्य महिलायें, जीवन में विलासितापूर्ण होते हुए भी, अपने देश का कितना ध्यान रखती हैं? पर यहाँ हमारी कालेजी बहनें इस तरफ बहुत कम ध्यान देती हैं और इसी कारण अधिकांश व्यक्ति 'अधिकार' के नाम से भड़कते हैं। हर्ष है कि ऐसी बहनों की संख्या बहुत ही न्यून है। खैर—मुझे तो विश्वास है कि स्त्रियाँ किसी न किसी दिन 'अधिकार' पायेंगी और उनके दुःखों का अन्त होगा!

× × ×

आपकी

... ...

[९]

नोट—बीच के पत्र नहीं मिल सके।

(पत्र के आवश्यक अंश मात्र)

आरा

१८-६-२९

श्रद्धेय श्री सुमन' जी,

... ... आप इसे लिखते समय यह क्यों भूल जाते हैं कि जहाँ मनुष्य अपना जीवन न्योछावर कर देगा वहाँ अधिकार के झगड़े का क्या प्रयोजन ? वहाँ तो किसी तरह अधिकार का प्रश्न ही नहीं उठ सकता है। 'अधिकार' का प्रश्न तो वहीं उठेगा जहाँ परस्पर प्रेम का अभाव होगा। आज स्त्रियों में 'अधिकार' 'अधिकार' का हल्ला उठ रहा है वह केवल प्रेम के अभाव में। उनका स्वयं कोई ऐसा प्रेमी नहीं जिसके चरणों पर वे अपना जीवन समर्पण कर दें। न स्त्रियों को पुरुषों के प्रति प्रेम है और न पुरुषों को स्त्रियों के प्रति ! इसीलिए इतना हल्ला-गुल्ला मचा है। गृहस्थ-धर्म का पालन कहाँ हो रहा है ? सबसे ज़्यादा दुःखपूर्ण तो उनका दाम्पत्य जीवन है। नाई-ब्राह्मणों के द्वारा ब्याह होने से कितने भारतीय दम्पती सुखी हैं ? लोग कहते हैं कि भारतीय स्त्रियाँ पति के हजार कष्ट देने पर भी उनका कुछ अमंगल कतई नहीं चाहतीं। यह एकदम फ़िज़ूल बात है। मैंने इसे कभी सच नहीं माना कि प्रेम के कारण ही वे उनका अमंगल नहीं चाहतीं। वे क्यों उनका अमंगल नहीं चाहतीं इसका सबसे बड़ा कारण तो उनका संस्कार है और दूसरा उनका स्वार्थ। वे खूब अच्छी तरह जानती हैं कि पति के मंगल और अमंगल से उनकी

दीन-दुनिया बनने-बिगड़ने वाली है। इसीलिए हज़ार कष्ट पाने पर भी कुछ बुरा नहीं सोच सकतीं। उनकी अज्ञानता में ही उनका जीवन-सूत्र किसी के साथ बाँध दिया जाता है तो फिर उनका साथ न करें तो क्या करें? उनका कोई दूसरा मार्ग भी तो नहीं है पर यहाँ पर उनकी मंगल-कामना की तह में जो लोग प्रेम का स्थान पा जाते हैं वे भूल करते हैं। और यदि उनके कहने के अनुसार मान भी लिया जाय तो वहाँ प्रेम का एकदम दूसरा ही अर्थ लगाना पड़ेगा, उसका कायापलट ही हो जायगा।

× × × जब स्त्री-पुरुषों में परस्पर प्रेम न हो तो ग़लतफ़हमी का बढ़ना अवश्यम्भावी है और ऐसी हालत में यदि समाज ने एक को सबल और एक को निर्बल बना दिया है तो निश्चय ही सबल का निर्बल पर अत्याचार होगा और यह अत्याचार सहते-सहते निर्बल यदि ऊब उठे और सबल के अत्याचारों के प्रति आवाज़ उठाये तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? पर ऐसी हालत में भी यह अर्थ नहीं लगाया जा सकता कि अगर किसी का किसी के साथ गाढ़ा स्नेह हो और दोनों परस्पर एक-दूसरे को अपना ही अंश समझते हों तो भी वहाँ यह अधिकार रूपी झगड़ा पहुँचेगा।

× × ×

आपकी बहन

... ...

[१०]

नोट—बीच के पत्र नहीं मिल सके।

[पत्र के आवश्यक अंश मात्र दिये गये हैं]

अजमेर

६ । ११ । २९

प्रिय बहन,

·········हिन्दू कन्या तो जन्म से ही त्याग करना सीखती है । वह देवता के चरणों पर चढ़ी हुई कली के समान है ! उसका सारा जीवन आत्म-समर्पण और बलिदान का जीवन है । कभी माता-पिता के चरणों में, कभी पति के लिए, बाद में सन्तान एवं कुटुम्ब की हित-चिन्ता में वह अपने जीवन का एक सम्पूर्ण सत्व अर्पण कर देती है—जैसे परिजात का वृक्ष स्वतः अपने समस्त फूलों को, एक-एक करके, पृथ्वी-माता के चरणों पर चढ़ा देता है !

तुम विवाह के कारण दुखी न होना; दुखी होना तो भी तुम्हारी आँखों से आँसू न निकले । हृदय की आग को संयम के आवरण-द्वारा हृदय में ही रख सकोगी तो तुम एक ज्योतिर्मय आदर्श बनकर दीन-हीन अशक्त बहन-भाइयों को अपनी ओर खींच सकोगी । तुम आदर्श से गिर गई तो मेरे, तुम्हें बहन कहने के, अभिमान को कड़ा धक्का लगेगा । तुम्हारा विरोध, तुम्हारा दुःख तबतक सार्थक था, जबतक तुम्हारा जीवन तुम्हीं तक था । अब समाज के स्वीकृत बन्धनों-द्वारा तुम एक प्राणी के जीवन के साथ मृत्यु तक के लिए बाँध दी गई हो । अब तुम केवल अपने लिए हँस या रो नहीं सकतीं । अब तुम कुमारीत्व की सोनहली स्वतन्त्रता से नारीत्व के कठोर

शासन में आ गई हो। तुम्हें अधिकार था कि अनिच्छा होने पर अपनी समस्त शक्ति से तुम उसे अस्वीकार कर देतीं पर जब तुमने (किसी भी कारण से ही) वह पथ नहीं पकड़ा, तुम्हारी ज़िम्मेदारी बढ़ गई है। मुझे आशा है कि तुम हिन्दू नारी को समझती हो और उसके उच्च उत्सर्ग की गाथा में, आवश्यकता पड़ने पर, वह अध्याय लिखोगी जो मुझ-जैसे हजारों को तुम्हें बहन कहकर पुकारने के लिए लालायित और उत्कण्ठित कर देगा।

× × ×

आशीर्वाद के साथ—

तुम्हारा भाई

श्री रामनाथलाल 'सुमन'

[११]

वैधव्य की पवित्रता

[यह पत्र एक भाई को लिखा गया था; इसमें विधवा-जीवन के प्रति कुछ सुन्दर विचार थे, अतः यहाँ दे दिया गया है]

सुख निवास,
माटूँगा
(बम्बई)
१८-१-२८

भाई द्विज,

तुम्हारा कार्ड मिला। तुम्हारी बहन मेरी बहन थी। यह एक मँहगा दुःख है जो तुमपर और तुम्हारे नाते मुझपर आ पड़ा। इसे चुपचाप झेलना पड़ेगा। हमारी बहनें इसके लिए अभ्यस्त हैं। यदि तुम सोचो तो देश में तुम्हारी कितनी ऐसी बहिनें दिखाई पड़ेंगी। यहाँ इस बम्बई की सड़कों पर—करोड़ों का दैनिक व्यापार जहाँ होता है ऐसे मकानों के समीप ऐसी बहनों को मैंने देखा है जो जवानी के प्रथम ज्वार में ही विधवा हो गई हैं। मैं तीसरी श्रेणी वालों की बातें कर रहा हूँ। इनका जगत् में कोई नहीं है। यदि भगवान् का अस्तित्व हो तो शायद वही इनका सहारा है। पैसे देना, सहायता करना तो दूर रहा सहानुभूति का एक शब्द भी लोगों के मुँह से नहीं निकलता है। इनमें बाज़-बाज़ की गोद में चार-चार, छः-छः महीने के बच्चे हैं जो कई दिनों तक दो पैसे का दूध न मिलने के कारण भूख की ज्वाला के कारण रोया करते हैं। ये बच्चे! इनका क्या पाप है? ये क्या जानें कि मेरी माँ के अञ्चल में मेरी तृष्णा बुझाने

भर की शक्ति नहीं है। इन बहनों का साहस देखकर तो किसी प्रकार उन्हें सान्त्वना भी दी जा सकती है पर इन भोले तर्कहीन बच्चों का सूखा मुँह देखकर मनुष्य-जीवन से घृणा हो जाती है। मज़ा तो यह कि समाज के पण्डे इन बहनों पर व्यभिचार और पाप का दोषारोप करते नहीं शर्माते। बड़े-बड़े नगरों की बदबूदार तंग गलियों में ऐसी कितनी आत्मायें नार्किक यंत्रणा के साथ, अपने कलेजे को दबाकर, अपने यौवन का क्रय-विक्रय करती हैं! एक दिन 'माँ' के पवित्र सम्बोधन से जिनकी छाती फूल उठती वे आज समाज का कितना कोढ़, कितना पाप, कितना बोझ उठाकर, हमारे जैसे अहम्मन्यों के वासनाकुण्ड में दबी साँस के साथ लतपथ हो रही हैं। आज हम देख सकते तो देखते कि ये वेश्यायें, समाज की ये भिखारिनें, तिरस्कृत, उपेक्षित और बहिष्कृत आत्मायें हमसे अधिक भाव-गाम्भीर्य (Intensity of Feeling) की पवित्रता के साथ रहती हैं। पर कौन देखे? फ़ुर्सत किसे?

चञ्चल मत हो जाना! मैं नहीं जानता कि मेरी इस बहन की अवस्था क्या है? जब ऐसी बहनों का मुँह देखता हूँ तो अपने को कितना तुच्छ बोध करता हूँ! कितना ये सहती हैं! कला और कविता के नाम पर हम तो अपने ज़रा से दुःखों का ढिंढोरा पीटा करते हैं पर इनके कलेजे को मसोस कर निकलने वाला मौन कौन समझे? हम लोग व्यर्थ ही व्यापक और विराट के गायक हैं पर ये बहनें निस्सन्देह छिन्न वीणा के अस्त-व्यस्त तारों की सहनशील रागिनियाँ हैं। हाय!

तुम अभागे हो या वह अभागिनी है? हम लोग दुर्बल हैं पर ऐसा कहकर एक विधवा का अपमान मत करो। तुम अभागे कवि हो सकते हो—क्योंकि विधवा कितना बड़ा करुण काव्य है इसे तुम नहीं समझ सकते। ऐसा दुःख-ग्रहण शक्ति के परे है। उसे समझने की कोशिश करके क्यों उसे कलुषित करते हो! समझने की कोशिश करने वालों के लिए तो केवल

एक मार्ग है और वह यह कि इन बहनों का वैधव्य ही मिट जाय।

पर—उफ्! मुझसे यह कभी न होगा। न होगा। मैं × × विधवा-विवाह का औचित्य समझता हूँ। कलेजा फट जाता है; रहा नहीं जाता। पर कलेजे को पीस डालने का वह आत्मसम्मानमय गर्व का सुख दुनिया के आगे झुककर उसके आधार का एक चुंबन ले लेने में नहीं है। आस्कर वाइल्ड की जेल से लिखी गई वे अमर पंक्तियाँ मुझे कभी नहीं भूलतीं—

"Where there is sorrow, there is holy ground. Some day man will understand it," अर्थात् जहाँ दुःख है वहाँ पवित्रता है। किसी दिन मनुष्य इसे समझेगा।

क्या कहूँ? मुझमें तो बोलने की शक्ति सदैव से कम है! अपनी बहन से कहना कि उसके एक और असहाय और तुच्छ भाई है जो कुछ नहीं कर सकता है पर उसका दुःख समझता है।

तुम्हारा—

'सुमन'

श्री जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज', काशी।

उपसंहार

१. औषधि-उपचार

२. 'शान्ति' [*कहानी श्रीप्रेमचन्द*]

औषधि-उपचार

१. दूध उतरने की दवा

बहुत-सी माताओं को, बच्चे को पिलाने-भर दूध नहीं उतरता, उसके लिए माता को घी-दूध खूब खाना चाहिए; इसके अतिरिक्त निम्न-लिखित घरेलू उपाय लाभदायक हैं—

१—घी में भुना हुआ सफ़ेद ज़ीरा खाना चाहिए।

२—एक या दो तोला शतावर दूध में पीसकर पीना चाहिए।

३—बड़ी पीपल दूध में पकाकर पिये।

४—सूखा आँवला, धुले तिल, मक्खन, मिसरी सब को रगड़ कर चटावे।

५—मूँग का काढ़ा पीना चाहिए।

६—दूध-चावल अधिक खाना चाहिए।

७—गिलोय को दूध में उबाले और उसमें थोड़ा घी मिलाकर पिये।

२. थनैली की दवा

कभी-कभी ज्यादा दूध आने या बच्चे की मृत्यु पर दूध भरे रहने से स्तनों में सूजन आ जाती और दर्द होता है। इसे थनैली कहते हैं। इसमें निम्नलिखित उपायों से फ़ायदा होता है—

१—बेल की छाल, नीम की पत्तियाँ और त्रिफला तीनों को पानी में एक साथ पकाकर उस पानी से दिन में कई बार धोवे।

२—इन्द्रायण की जड़ को पानी में पीस या घिसकर लेप करे।

३—हल्दी और लोध का लेप भी फ़ायदा करता है।

३. पकी नाभि की दवा

कभी-कभी नाल काटने के बाद या आगे चलकर बच्चों की नाभि पक जाती है। उस समय नीचे लिखे उपाय लाभकारी हैं—

१—हल्दी, लोध, मुलेठी, मेहँदी को तेल में पकाकर वहाँ लगावे।

२—बकरी के दूध से धोवे।

३—कपड़छन किया हुआ कत्थे का चूर्ण या बेसन डालना चाहिए।

४—नाल पर मकड़ी का सफ़ेद जाला चिपका देना चाहिए।

५—सफेदा लगाने एवं बोरिक के पानी से धोने से भी लाभ होता है।

४. मासिक धर्म रुकने पर

१—२ तोले काले तिल डेढ़ पाव पानी में पकावे; जब आध पाव रह जाय तो छानकर उसमें सोंठ, काली मिर्च, पीपल और भाडंगी ४-४ माशे लेकर और इनका एक में चूर्ण बनाकर काढ़े में मिला दे और ४—४॥ तोला एक साल का पुराना गुड़ मिलाकर प्रातःकाल पिया करे।

२—३—४ छुहारे को बराबर दूध और पानी में उबालकर आधा रह जाने पर पीने से भी लाभ होता है।

नोट—ये दोनों दवाइयाँ गरम हैं। जाड़े में इनका प्रयोग करना चाहिए।

५. श्वेत प्रदर की दवा

१—पठानी लोध १ छटाँक, चूनिया गोंद १ छटाँक, मोचरस १ छटाँक, माजूफल २ तोले। सबको कूट-छानकर फंकी बनावे। चार-चार माशे दोनों समय गाय के दूध या चावलों के पानी में लेना चाहिए।

नोट—एक अनुभवी वैद्य का कथन है कि इससे दो हफ्ते में श्वेतप्रदर ज़रूर अच्छा हो जायगा। इस विषय में 'महिला-जीवन' नामक एक दवा की भी तारीफ़ सुनी है।

२—मासिक धर्म की अशुद्धि और प्रदर दोनों रोगों में अशोकारिष्ठ का सेवन १–२ महीने करना चाहिए। बच्चा पैदा होने के बाद इसका सेवन लाभकर है पर यह किसी अनुभवी और ईमानदार वैद्य से ही ख़रीदना चाहिए। यह अर्क़ की तरह की दवा है और लगभग ५) में एक बोतल आती है।

६. बच्चों का सूखा रोग

कभी-कभी बच्चे बुखार-खाँसी या फोड़े-फुंसी से तंग होकर दिन-दिन सूखते जाते हैं। यह असल में एक प्रकार का क्षय रोग है। इसकी निम्न लिखित घरेलू दवा गुणकारी है—

१—धनिया का बीज पाव भर, नारियल का पका गोला (गिरी) पाव भर; राई ६ माशे, काली या सफ़ेद मिर्च ६ माशे, नागकेसर पावभर, गूलर की छाल का चूर्ण पावभर। सब का चूर्ण बना ले और कपड़छन करके उसमें उतनी ही खाँड मिलावे। गाय के दूध में छः-छः माशे दोनों समय देना चाहिए।

७. आग से जलने पर

मोम १ तोला, राल १ तोला, मुलेठी १ तोला, लोध १ तोला। सब को कूटछान कर आधा घी में मिलावे और आधा अलग रक्खे। घी वाला मलहम जले स्थान पर लगावे और बाकी आधा सूखा चूर्ण उस-पर छिड़क दे। चार-पाँच दिन में बिलकुल अच्छा हो जायगा।

८. बिच्छू काटने पर

१—निर्मली फल को पानी में घिसकर काटे स्थान पर लगावे, जल्द फ़ायदा होगा।

२—सेंधा नमक का पानी गरम कर जिधर काटे उसकी दूसरी ओर वाले कान में डाले।

३—जमालगोटा पीसकर लगावे।

९. सांप काटने पर

१—उस स्थान को तुरन्त दोनों तरफ़ कसकर कपड़े से बाँध दे और तेज़ चाकू से उसे ज़रा-सा चीरकर, दबाकर खून निकाल दे।

२—ज़रा-से पानी में अरीठा पीसकर पिलावे और नाक में डाले। इससे खूब उलटी होगी और ज़हर उतर जायगा।

शांति

[श्री प्रेमचन्द]

जब मैं ससुराल आई, तो बिलकुल फूहड़ थी। न पहनने-ओढ़ने का सलीका न बातचीत करने का ढङ्ग। सिर उठाकर किसी से बातचीत न कर सकती थी। आँखें अपने आप झपक जाती थीं। किसी के सामने जाते शर्म आती, स्त्रियों तक के सामने बिना घूँघट झिझक होती थी। मैं कुछ हिंदी पढ़ी हुई थी, पर उपन्यास, नाटक आदि के पढ़ने में आनन्द न आता था। फुर्सत मिलने पर रामायण पढ़ती। उसमें मेरा मन बहुत लगता था। मैं उसे मनुष्यकृत नहीं समझती थी। मैं दिन-भर घर का कोई-न कोई काम करती रहती। और कोई काम न रहता, तो चर्खे पर सूत कातती। अपनी बूढ़ी सास से थर-थर काँपती थी। एक दिन दाल में नमक अधिक हो गया। ससुरजी ने भोजन के समय सिर्फ़ इतना ही कहा—"ज़रा नमक अन्दाज़ से डाला करो।" इतना सुनते ही हृदय काँपने लगा। मानों इससे अधिक कोई वेदना नहीं पहुँचाई जा सकती थी।

लेकिन मेरा फूहड़पन मेरे बाबूजी (पतिदेव) को पसंद न आता था। वह वकील थे। उन्होंने शिक्षा की ऊँची-ऊँची डिगरियाँ पाई थीं। वह मुझपर प्रेम अवश्य करते थे; पर उस प्रेम में दया की मात्रा अधिक होती थी। स्त्रियों के रहन-सहन और शिक्षा के सम्बन्ध में उनके विचार बहुत ही उदार थे। वह मुझे उन विचारों से बहुत नीचे देखकर कदाचित् मन ही मन खिन्न होते थे; परन्तु उसमें मेरा कोई अपराध न देखकर हमारे रस्म-रवाज पर झुंझलाते थे। उन्हें मेरे साथ बैठकर बातचीत करने में ज़रा भी आनन्द न आता था। सोने आते, तो कोई न कोई अंग्रेज़ी

पुस्तक साथ लाते, और नींद आने तक पढ़ा करते। जो कभी मैं पूछ बैठती कि क्या पढ़ते हो, तो मेरी ओर करुण-दृष्टि से देखकर उत्तर देते—तुम्हें क्या बतलाऊँ, यह आस्कर वाइल्ड की सर्वश्रेष्ठ रचना है। मैं अपनी अयोग्यता पर बहुत लज्जित थी। अपने को धिक्कारती, मैं ऐसे विद्वान पुरुष के योग्य नहीं हूँ। मुझे तो किसी उजड्ड के घर पड़ना था। बाबूजी मुझे निरादर की दृष्टि से नहीं देखते थे, यही मेरे लिए सौभाग्य की बात थी। एक दिन संध्या समय मैं रामायण पढ़ रही थी। भरतजी रामचन्द्रजी की खोज में निकले थे। करुण-विलाप पढ़कर मेरा हृदय गद्‌गद हो रहा था। नेत्रों से अश्रु-धारा बह रही थी। हृदय उमड़ आता था। सहसा बाबूजी कमरे में आये। मैंने पुस्तक तुरन्त बन्द कर दी। उनके सामने मैं अपने फूहड़पन को भरसक प्रकट न होने देती थी। लेकिन उन्होंने पुस्तक देख ली, और पूछा—रामायण है न?

मैंने अपराधियों की भाँति सिर झुकाकर कहा—हाँ, ज़रा देख रही थी।

बाबूजी—'इसमें शक नहीं कि पुस्तक बहुत ही अच्छी, भावों से भरी हुई है; लेकिन इसमें मानव-चरित्र को वैसी खूबी से नहीं दिखाया गया, जैसा अंग्रेज़ या फ्रांसीसी लेखक दिखलाते हैं। तुम्हारी समझ में तो न आवेगा, लेकिन कहने में क्या हरज है, यूरोप में आजकल 'स्वाभाविकता' (Realism) का ज़माना है। वे लोग मनोभावों के उत्थान और पतन का ऐसा वास्तविक वर्णन करते हैं कि पढ़कर आश्चर्य होता है। हमारे यहाँ कवियों को पग-पग पर धर्म तथा नीति का ध्यान रखना पड़ता है, इसलिए कभी-कभी उनके भावों में अस्वाभाविकता आ जाती है; और यही त्रुटि तुलसीदास में भी है।' मेरी समझ में उस समय कुछ भी न आया।

बाबूजी—कोई कठिन बात नहीं। एक घंटे भी रोज़ पढ़ो, तो थोड़े ही समय में काफ़ी योग्यता प्राप्त कर सकती हो। पर तुमने तो मानों मेरी

बातें न मानने की सौगंद खाली है। कितना समझाया कि मुझसे शर्म करने की कोई आवश्यकता नहीं; पर तुम्हारे ऊपर कुछ असर न पड़ा। कितना कहता हूँ ज़रा सफ़ाई से रहा करो; परत्मात्मा सुन्दरता देता है, तो चाहता है कि उसका श्रृङ्गार भी होता रहे; लेकिन जान पड़ता है तुम्हारी दृष्टि में उसका कुछ मूल्य नहीं। या शायद तुम समझती हो कि मेरे-जैसे कुरूप मनुष्य के लिए तुम चाहे जैसी भी रहो; आवश्यकता से अधिक अच्छी हो। यह अत्याचार मेरे ऊपर है। तुम मुझे ठोक-पीटकर वैराग्य सिखाना चाहती हो। जब मैं दिन-रात मेहनत करके कमाता हूँ तो स्वभावतः मेरी यह इच्छा होती है कि उस द्रव्य का सबसे उत्तम व्यय हो; परन्तु तुम्हारा फूहड़पन और पुराने विचार मेरे सारे परिश्रम पर पानी फेर देते हैं। स्त्रियाँ केवल भोजन बनाने, बच्चे पालने, पति की सेवा करने और एकादशी का व्रत करने के लिए नहीं हैं। उनके जीवन का लक्ष्य बहुत ऊँचा है। वे मनुष्यों के समस्त सामाजिक और मानसिक विषयों में समान रूप से भाग लेने की अधिकारिणी हैं। उन्हें मनुष्यों की भाँति स्वतंत्र रहने का भी अधिकार प्राप्त है। मुझे तुम्हारी यह बन्दी दशा देखकर बड़ा कष्ट होता है। स्त्री पुरुष की अर्द्धांगिनी मानी गई है। लेकिन तुम मेरी मानसिक या सामाजिक किसी आवश्यकता को पूरा नहीं कर सकतीं। मेरा और तुम्हारा धर्म अलग, आचार-विचार अलग, आमोद-प्रमोद के विषय अलग। जीवन के किसी कार्य में मुझे तुमसे किसी प्रकार की सहायता नहीं मिल सकती। तुम स्वयं विचार सकती हो कि ऐसी दशा में मेरी ज़िंदगी कैसी बुरी तरह कट रही है।

बाबूजी का कहना बिलकुल यथार्थ था। मैं उनके गले में एक जंज़ीर की भाँति पड़ी हुई थी। उस दिन से मैंने उन्हीं के कहे अनुसार चलने की दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली; अपने देवता को किस प्रकार अप्रसन्न करती?

यह तो कैसे कहूँ कि मुझे पहनने-ओढ़ने से प्रेम न था। था,

और उतना ही था, जितना दूसरी स्त्रियों को होता है। जब बालक और वृद्ध तक शृंगार पसंद करते हैं तो मैं तो युवती ठहरी! मन भीतर ही भीतर मचल कर रह जाता था। मेरे मायके में मोटा खाने और मोटा पहनने की चाल थी। मेरी माँ और दादी हाथों से सूत कातती थीं, और जुलाहे से उसी सूत के कपड़े बुनवा लिये जाते थे। बाहर से बहुत कम कपड़े आते थे। मैं कभी ज़रा महीन कपड़ा पहनना चाहती या शृङ्गार की ओर रुचि दिखाती तो अम्मा फौरन टोकतीं और समझातीं कि बहुत बनाव-सँवार भले घर की लड़कियों को शोभा नहीं देता। ऐसी आदत अच्छी नहीं। यदि कभी वह मुझे दर्पण के सामने देख लेतीं, तो झिड़कने लगतीं। परन्तु अब बाबूजी की ज़िद से मेरी यह झिझक जाती रही। मेरी सास और ननदें मेरे बनाव-शृङ्गार पर नाक-भौं सिकोड़तीं; पर मुझे अब उनकी परवा न थी। बाबूजी की प्रेम-परिपूर्ण दृष्टि के लिए मैं झिड़कियाँ भी सह सकती थी। अब उनके और मेरे विचारों में समानता आती जाती थी! वह अधिक प्रसन्नचित्त जान पड़ते थे। वह मेरे लिए फ़ैशनेबुल साड़ियाँ, सुन्दर जाकटें, चमकते हुए जूते और कामदार स्लीपरें लाया करते। पर मैं इन वस्तुओं को धारण कर किसी के सामने न निकलती, ये वस्त्र केवल बाबूजी के ही सामने पहनने के लिए रक्खे थे। मुझे इस प्रकार बनी-ठनी देखकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता होती थी। स्त्री अपने पति की प्रसन्नता के लिए क्या नहीं कर सकती? अब घर के काम-काज में मेरा जी न लगता था। मेरा अधिक समय बनाव-शृंगार तथा पुस्तकावलोकन में ही बीतने लगा। पुस्तकों से मुझे प्रेम होने लगा था।

यद्यपि अभी तक मैं अपने सास-ससुर का लिहाज़ करती थी, उनके सामने बूट और गाउन पहन कर निकलने का मुझे साहस न होता था, पर मुझे उनकी शिक्षापूर्ण बातें न भाती थीं। मैं सोचती, जब मेरा पति सैकड़ों रुपये महीना कमाता है, तो घर में मैं चेरी बन कर क्यों रहूँ?

यों अपनी इच्छा से चाहे जितना काम करूँ, पर ये लोग मुझे आज्ञा देने वाले कौन हैं ? मुझमें आत्माभिमान की मात्रा बढ़ने लगी। यदि अम्मा मुझे कोई काम करने को कहतीं, तो मैं अदबदा कर उसे टाल जाती। एक दिन उन्होंने कहा—सबेरे के जलपान के लिए कुछ दालमोट बनालो। मैं बात अनसुनी कर गई। अम्मा ने कुछ देर तक मेरी राह देखी; पर जब मैं अपने कमरे से न निकली तो उन्हें गुस्सा हो आया। वह बड़ी चिड़चिड़ी प्रकृति की थीं। तनिक-सी बात पर तुनक जाती थीं। उन्हें अपनी प्रतिष्ठा का इतना अभिमान था कि मुझे बिलकुल लौंडी ही समझती थीं। हाँ, अपनी पुत्रियों से सदैव नम्रता से पेश आतीं। बल्कि मैं तो यह कहूँगी कि उन्हें सिर चढ़ा रक्खा था। वह क्रोध में भरी हुई मेरे कमरे के द्वार पर आकर बोलीं—'तुमसे मैंने दालमोट बनाने को कहा था। बनाया ?' मैं कुछ रुष्ट होकर बोली—अभी फुर्सत नहीं मिली।

अम्मा—तो तुम्हारी जान में दिन भर पड़े रहना ही बड़ा काम है ? यह आजकल तुम्हें हो क्या गया है ? किस घमंड में हो ? क्या यह सोचती हो कि मेरा पति कमाता है, तो मैं काम क्यों करूँ ? इस घमंड में न भूलना। तुम्हारा पति लाख कमाये, लेकिन घर में राज मेरा ही रहेगा। आज वह चार पैसे कमाने लगा है तो तुम्हें मालकिन बनने की हवस हो रही है। लेकिन उसे पालने-पोसने तुम नहीं आई थीं, मैंने ही उसे पढ़ा-लिखा कर इस योग्य बनाया है। वाह ! कल की छोकरी अभी से यह गुमान !

मैं रोने लगी। मुँह से एक बात न निकली। बाबूजी उस समय ऊपर कमरे में बैठे कुछ पढ़ रहे थे। ये सब बातें उन्होंने सुनीं। उन्हें बड़ा कष्ट हुआ। रात को जब घर में आये तो बोले—देखा तुमने आज अम्मा का क्रोध ? यही अत्याचार है, जिससे स्त्रियों को अपनी ज़िंदगी पहाड़ मालूम होने लगती है। इन बातों से हृदय में कितनी वेदना होती है,

इसका जानना असम्भव है। भार-रूप हो जाता है। हृदय जर्जर हो जाता है। और आत्मोन्नति उसी प्रकार रुक जाती है, जैसे जल, प्रकाश और वायु के बिना पौधे सूख जाते हैं। हमारे घरों में यह बड़ा अन्धेर है। अब मैं तो उनका पुत्र ही ठहरा, उनके सामने मुँह नहीं खोल सकता। मुझपर उनका बहुत बड़ा अधिकार है। अतएव उनके विरुद्ध एक शब्द भी कहना मेरे लिए लज्जा की बात होगी, और यही बन्धन तुम्हारे लिए भी है। यदि तुमने उनकी बातें चुपचाप न सुन ली होतीं तो मुझे बहुत ही दुःख होता! कदाचित मैं विष खा लेता। ऐसी दशा में दो ही बातें सम्भव हैं, या तो सदैव उनकी घुड़कियों-झिड़कियों को सहे जाओ, या अपने लिए कोई दूसरा रास्ता ढूँढो। अब इस बात की आशा करना कि अम्मा के स्वभाव में कोई परिवर्तन होगा, बिलकुल भ्रम है! बोलो, तुम्हें यह स्वीकार है?

मैंने डरते-डरते कहा—आपकी जो आज्ञा हो, वह करूँ। अब कभी न पढ़ूँ-लिखूँगी, और जो कुछ वह कहेंगी, वही करूँगी। यदि वह इसी में प्रसन्न है तो यही सही—मुझे पढ़-लिख कर क्या करना है?

बाबूजी—पर मैं यह नहीं चाहता। अम्मा ने आज आरम्भ किया है। अब रोज बढ़ती ही जाँयगी। मैं तुम्हें जितना ही सभ्य तथा विचारशील बनाने की चेष्टा करूँगा, उतना ही उन्हें बुरा लगेगा, और उनका गुस्सा तुम्हीं पर उतरेगा। उन्हें पता नहीं जिस आबहवा में उन्होंने अपनी जिन्दगी बिताई है वह अब नहीं रही। विचार-स्वातंत्र्य और समयानुकूलता उनकी दृष्टि में अधर्म से कम नहीं। मैंने यह सोचा है कि किसी दूसरे शहर में चल कर अपना अड्डा जमाऊँ। मेरी वकालत भी यहाँ नहीं चलती। इसलिए किसी बहाने की भी आवश्यकता न पड़ेगी।

मैं इस तजवीज़ के विरुद्ध कुछ न बोली। यद्यपि मुझे अकेले रहने से भय लगता था; तथापि वहाँ स्वतन्त्र रहने की आशा ने मन को प्रफुल्लित कर दिया।

(३)

उसी दिन से अम्मा ने मुझसे बोलना छोड़ दिया। महरियों, पड़ोसिनों और ननदों के आगे मेरा परिहास किया करतीं। यह मुझे बहुत बुरा मालूम होता था। इसके बदले यदि वह कुछ भली-बुरी बातें कह लेतीं तो मुझे स्वीकार था। मेरे हृदय से उनकी मान-मर्यादा घटने लगी। किसी मनुष्य पर इस प्रकार कटाक्ष करना उसके हृदय से अपने आदर को मिटाने के समान है। मेरे ऊपर सबसे गुरुतर दोषारोपण यह था कि मैंने बाबूजी पर कोई मोहन-मन्त्र फूँक दिया है; वह मेरे इशारों पर चलते हैं। पर यथार्थ में बात उलटी थी।

भाद्र मास था। जन्माष्टमी का त्योहार आया। घर में लोगों ने व्रत रक्खा। मैंने भी सदैव की भाँति व्रत रक्खा। ठाकुर जी का जन्म रात को बारह बजे होने वाला था। हम सब बैठी गाती-बजाती थीं। बाबूजी इन असभ्य व्यवहारों के बिलकुल विरुद्ध थे। वह होली के दिन रंग भी न खेलते, गाने-बजाने की तो बात ही अलग। रात को एक बजे जब मैं उनके कमरे में गई, तो मुझे समझाने लगे—इस प्रकार शरीर को कष्ट देने से क्या लाभ? कृष्ण महापुरुष अवश्य थे, और उनकी पूजा करना हमारा कर्तव्य है। पर इस गाने-बजाने से क्या फ़ायदा? इस ढोंग का नाम धर्म नहीं है। धर्म का सम्बन्ध सचाई और ईमान से है, दिखावे से नहीं।

बाबूजी स्वंय इस मार्ग का अनुसरण करते थे। वह भगवद्गीता की अत्यन्त प्रशंसा करते, पर उसका पाठ कभी न करते थे। उपनिषदों की प्रशंसा में उनके मुख से मानो पुष्प-वृष्टि होने लगती थी; पर मैंने उन्हें कभी कोई उपनिषद पढ़ते नहीं देखा। वह हिन्दूधर्म के गूढ़ तत्त्व-ज्ञान पर लट्टू थे, पर इसे समयानुकूल नहीं समझते थे। विशेष कर वेदान्त

को तो वह भारत की अवनति का मूल कारण समझते थे। वह कहा करते थे कि इसी वेदान्त ने हमको चौपट कर दिया; हम दुनिया के पदार्थों को तुच्छ समझने लगे, जिसका फल अबतक भुगत रहे हैं। अब उन्नति का समय है। चुपचाप बैठे रहने से निर्वाह नहीं। संतोष ने ही भारत को ग़ारत कर दिया।

उस समय उनको उत्तर देने की शक्ति मुझमें कहाँ थी? हाँ, अब जान पड़ता है कि वह योरोपीय सभ्यता के चक्कर में पड़े हुए थे। अब वह स्वयं ऐसी बातें नहीं करते; वह जोश अब ठण्डा हो चला है।

(४)

इसके कुछ दिन बाद हम इलाहाबाद चले आये। बाबूजी ने पहले ही एक दोमंज़िला मकान ले रक्खा था—सब तरह से सजा-सजाया। हमारे यहाँ पाँच नौकर थे। दो स्त्रियाँ, दो पुरुष और एक महाराज। अब मैं घर के कुल काम-काज से छुट्टी पा गई। कभी जी घबराता, तो कोई उपन्यास लेकर पढ़ने लगती।

यहाँ फूल और पीतल के बर्तन बहुत कम थे। चीनी की रकाबियाँ और प्याले आलमारियों में सजे रक्खे थे। भोजन मेज़ पर आता था। बाबूजी बड़े चाव से भोजन करते थे। मुझे पहले कुछ शर्म आती थी; लेकिन धीरे-धीरे मैं भी मेज़ पर भोजन करने लगी। हमारे पास एक सुन्दर टमटम थी। अब हम पैदल बिलकुल न चलते थे। किसी से मिलने दस पग भी जाना होता, तो गाड़ी तैयार कराई जाती। बाबूजी कहते—यही फ़ैशन है।

बाबूजी की आमदनी अभी बहुत कम थी। भलीभाँति ख़र्च भी न चलता था। कभी-कभी मैं उन्हें चिन्ताकुल देखती, तो समझाती कि जब आय इतनी कम है, तो व्यय इतना क्यों बढ़ा रक्खा है। कोई छोटा-सा मकान ले लो। दो नौकरों से भी काम चल सकता है। लेकिन बाबूजी

मेरी बातों पर हँस देते और कहते—मैं अपनी दरिद्रता का ढिंढोरा अपने आप क्यों पीटूँ ? दरिद्रता प्रकट करना दरिद्र होने से अधिक दुःखदाई होता है। भूल जाओ कि हम लोग निर्धन हैं, फिर लक्ष्मी हमारे पास आप दौड़ी आवेगी। खर्च बढ़ना, आवश्यकताओं का अधिक होना ही द्रव्योपार्जन की पहली सीढ़ी है। इससे हमारी गुप्त शक्तियाँ विकसित हो जाती हैं, और हम उन कष्टों को झेलते हुए आगे पग धरने योग्य होते हैं। संतोष दरिद्रता का दूसरा नाम है।

अस्तु। हम लोगों का ख़र्च दिन पर दिन बढ़ता ही जाता था। हम लोग सप्ताह में तीन बार थिएटर ज़रूर देखने जाते। सप्ताह में एक बार मित्रों को भोज अवश्य ही दिया जाता। अब मुझे सूझने लगा कि जीवन का लक्ष्य सुख-भोग ही है। ईश्वर को हमारी उपासना की इच्छा नहीं। उसने हमको उत्तम-उत्तम वस्तुयें भोगने के लिए ही दी हैं। उनको भोगना ही सर्वोत्तम आराधना है। एक ईसाई लेडी मुझे पढ़ाने तथा गाना सिखाने आने लगी।

घर में एक पियानो भी आ गया। इन्हीं आनन्दों में फँसकर मैं रामायण और भक्तमाल को भूल गई। वे पुस्तकें मुझे अप्रिय मालूम होने लगीं। देवताओं पर से विश्वास उठ गया।

धीरे-धीरे यहाँ के बड़े लोगों से स्नेह और सम्बन्ध बढ़ने लगा। यह एक नई सोसायटी थी। इसका रहन-सहन, आहार-व्यवहार और आचार-विचार मेरे लिए सर्वथा अनोखे थे। मैं इस सोसाइटी में ऐसी जान पड़ती, जैसे मोरों में कौआ। इन लेडियों की बात-चीत कभी थिएटर और घुड़दौड़ के विषय में होती, कभी टेनिस, समाचारपत्रों और अच्छे-अच्छे लेखकों के लेखों पर। उनके चातुर्य, बुद्धि की तीव्रता, स्फूर्ति और चपलता पर मुझे अचम्भा होता! ऐसा मालूम होता कि वे ज्ञान और प्रकाश की पुतलियाँ हैं। वे बिना घूँघट बाहर निकलतीं; मैं उन

देवियों को कभी उदास या चिंतित न पाती। मिस्टर दास बहुत बीमार थे, परन्तु मिसेज दास के माथे पर चिन्ता का चिन्ह तक न था। मिस्टर बागड़ी नैनीताल में तपेदिक का इलाज करा रहे थे, पर मिसेज बागड़ी नित्य टेनिस खेलने जाती थीं। इस अवस्था में मेरी क्या दशा होती, यह मैं ही जानती हूँ।

इन लेडियों की रीति-नीति में एक आकर्षण शक्ति थी, जो मुझे खींचे लिये जाती थी। मैं उन्हें सदैव आमोद-प्रमोद के लिए उत्सुक देखती, और मेरा जी चाहता कि उन्हीं की भाँति निस्संकोच हो जाती। उनका अंग्रेजी वार्तालाप सुनकर मुझे मालूम होता कि वे देवियाँ हैं। मैं अपनी इन त्रुटियों की पूर्ति के लिए प्रयत्न किया करती थी।

इसी बीच मुझे एक खेदजनक अनुभव होने लगा। यद्यपि बाबूजी पहले से मेरा अधिक आदर करते, मुझे सदैव 'डियर' 'डार्लिंग' आदि कह कर पुकारते थे, तथापि मुझे उनकी बातों में एक प्रकार की बनावट मालूम होती थी। ऐसा प्रतीत होता था, मानों ये बातें उनके हृदय से नहीं मुख से निकलती हैं। उनके स्नेह और प्यार में हार्दिक भावों की जगह अलंकार ज्यादा होता था किन्तु और भी अचम्भे की बात यह थी कि अब मुझे बाबूजी पर वह पहले की सी श्रद्धा न रही थी। अब उनकी सिर की पीड़ा से मेरे हृदय में पीड़ा न होती थी। मुझ में आत्मगौरव का आविर्भाव होने लगा था। अब मैं अपना बनाव-श्रृंगार इसलिए करती थी कि इस संसार में यह भी मेरा एक कर्त्तव्य है, इसलिए नहीं कि मैं किसी एक पुरुष की व्रतधारिणी हूँ। अब मुझे भी अपनी सुन्दरता पर गर्व होने लगा था। मैं अब किसी दूसरे के लिए नहीं, अपने लिए जीती थी। त्याग तथा सेवा का भाव मेरे हृदय से लुप्त होने लगा था।

मैं अब भी परदा करती थी। परन्तु हृदय अपनी सुन्दरता की सराहना सुनने के लिए व्याकुल रहता था। एक दिन मिस्टर दास तथा और

भी सभ्यगण बाबूजी के पास बैठे थे। मेरे और उनके बीच में केवल एक परदे की आड़ थी। बाबूजी मेरी इस झिझक से बहुत ही लज्जित थे। इसे वह अपनी सभ्यता में काला धब्बा समझते थे। कदाचित् वह दिखाना चाहते थे कि मेरी स्त्री इसलिए परदे में नहीं है कि वह रूप तथा वस्त्राभूषणों में किसी से कम है, बल्कि इसलिए कि अभी उसे लज्जा आती है। वह मुझे किसी बहाने से बारम्बार परदे के निकट बुलाते जिसमें अनेक मित्र मेरी सुन्दरता और मेरे वस्त्राभूषण देख लें। अन्त में कुछ दिन बाद मेरी झिझक ग़ायब होगई। इलाहाबाद आने के पूरे दो वर्ष बाद मैं बाबूजी के साथ बिना परदे के सैर करने लगी। सैर के बाद टेनिस की नौबत आई। अन्त को मैंने क्लब में जाकर दम लिया। पहले यह टेनिस और क्लब मुझे तमाशा-सा मालूम होता था, मानों वे लोग व्यायाम के लिए टेनिस खेलने आते थे। वे कभी न भूलते थे कि हम टेनिस खेल रहे हैं; उनके प्रत्येक काम में—झुकने में, दौड़ने में, उचकने में एक कृत्रिमता होती थी, जिससे प्रतीत होता था कि इस खेल का प्रयोजन कसरत नहीं, केवल दिखावा है।

क्लब में इससे भी विचित्र अवस्था थी। वह पूरा स्वाँग था, भद्दा और बेजोड़। लोग अंग्रेजी के कुछ चुने हुए शब्दों का प्रयोग करते थे, जिनमें कोई सार न होता था, नकली हँसी हँसते थे जिसका कोई अवसर न होता था; स्त्रियों की वह फूहड़ निर्लज्जता और पुरुषों की वह भाव शून्य स्त्री-पूजा मुझे तनिक भी न आती थी। चारों ओर अंग्रेजी चाल-ढाल की एक हास्यजनक नक़ल थी। परन्तु क्रमशः मैं भी वही रंग पकड़ने और उन्हीं का अनुकरण करने लगी। अब मुझे अनुभव हुआ कि इस प्रदर्शन-लोलुपता में कितनी शक्ति है। मैं अब नित्य नये शृङ्गार करती, नित्य नया रूप भरती, केवल इसलिए कि क्लब में सबकी आँखों में चुभ जाऊँ। अब मुझे बाबूजी की सेवा में सत्कार से अधिक अपने बनाव-शृंगार की

धुन रहती थी। यहाँ तक कि यह शौक़ एक नशा-सा बन गया। इतना ही नहीं, लोगों से अपने सौंदर्य की प्रशंसा सुनकर मुझे एक अभिमान मिश्रित आनन्द का अनुभव होने लगा। मेरी लज्जाशीलता की सीमायें विस्तृत हो गईं। वह दृष्टिपात, जो कभी मेरे शरीर के प्रत्येक रोएँ को खड़ा कर देता, और वह हास्य-कटाक्ष, जो कभी मुझे विष खा लेने को प्रस्तुत कर देता, उनसे अब मुझे एक उन्माद-पूर्ण हर्ष होता था। परंतु जब कभी मैं अपनी अवस्था पर आन्तरिक दृष्टि डालती, तो मुझे बड़ी घबड़ाहट होती थी। यह नाव किस घाट लगेगी? कभी-कभी इरादा करती कि क्लब न जाऊँगी; परन्तु समय आते ही फिर तैयार हो जाती। मैं अपने वश में न थी। मेरी सद्कल्पनायें निर्बल हो गई थीं।

(५)

दो वर्ष और बीत गये, और अब बाबूजी के स्वभाव में एक विचित्र परिवर्तन होने लगा। वह उदास और चिंतित रहने लगे। मुझसे बहुत कम बोलते। ऐसा जान पड़ता कि उन्हें कठिन चिन्ता ने घेर रक्खा है, या कोई बीमारी हो गई है। मुँह बिलकुल सूखा रहता था। तनिक-तनिक सी बात पर नौकरों से झल्लाने लगते; और बाहर बहुत कम जाते।

अभी एक ही मास पहले वह सौ काम छोड़कर क्लब अवश्य जाते थे, वहाँ गये बिना उन्हें कल न पड़ती थी; पर अब अधिकतर अपने कमरे में आराम-कुर्सी पर लेटे हुए समाचारपत्र और पुस्तकें देखा करते थे। मेरी समझ में न आता कि बात क्या है?

एक दिन उन्हें बड़े ज़ोर का बुख़ार आया, दिन-भर बेहोश पड़े रहे। परन्तु मुझे उनके पास बैठने में अंकुश-सा लगता था। मेरा जी एक उपन्यास में लगा हुआ था। उनके पास जाती और पल-भर में फिर लौट जाती थी। टेनिस का समय आया, तो मैं दुविधा में पड़ गई कि जाऊँ

या न जाऊँ । देर तक मन में यह संग्राम होता रहा । अन्त को मैंने यही निर्णय किया कि मेरे यहाँ रहने से यह कुछ अच्छे तो हो नहीं जायँगे, इससे मेरा यहाँ बैठा रहना बिलकुल निरर्थक है । मैंने बढ़िया वस्त्र पहने, और रैकेट लेकर क्लब-घर जा पहुँची । वहाँ मैंने मिसेज़ दास और मिसेज़ बागड़ी से बाबूजी की दशा बतलाई, और सजल-नेत्र चुप-चाप बैठी रही । जब सब लोग कोर्ट में जाने लगे, और मिस्टर दास ने मुझसे चलने को कहा, तो मैं एक ठण्डी आह भरकर कोर्ट में जा पहुँची और खेलने लगी ।

आज से तीन वर्ष पूर्व बाबूजी को इसी प्रकार बुख़ार आ गया था, मैं रात-भर उन्हें पंखा झलती रही थी । हृदय व्याकुल था, और यही जी चाहता था कि इनके बदले मुझे बुख़ार आजाय; परन्तु यह उठ बैठें । पर अब हृदय तो स्नेहशून्य हो गया था, दिखावा अधिक था । अकेले रोने की मुझमें क्षमता न रह गई थी । मैं सदैव की भाँति रात को नौ बजे लौटी । बाबूजी का जी कुछ अच्छा जान पड़ा । उन्होंने मुझे केवल दबी दृष्टि से देखा, और करवट बदली । परंतु मैं लौटी तो मेरा ही हृदय मुझे अपनी स्वार्थपरता और प्रमोदासक्ति पर धिक्कारता रहा ।

मैं अब अंग्रेज़ी उपन्यासों को समझने लगी थी । हमारी बात-चीत अधिक उत्कृष्ट और आलोचनात्मक होती थी ।

हमारी सभ्यता का आदर्श अब बहुत ही उच्च हो गया था । हमको अब अपनी मित्र-मंडली से बाहर दूसरों से मिलने-जुलने में संकोच होता था । अब हम अपने से छोटी श्रेणी के लोगों से बोलने में अपना अपमान समझते थे । नौकरों को अपना नौकर समझते थे, और बस, हमको उनके निजी मामलों से कुछ मतलब न था । हम उनसे अलग रह कर उनके ऊपर रोब जमाये रखना चाहते थे । हमारी इच्छा यह थी कि वह हम लोगों को साहब समझें । हिन्दुस्तानी स्त्रियों को देखकर मुझे उनसे घृणा होती थी; उनमें शिष्टता न थी । खैर ।

बाबूजी का जी दूसरे दिन भी न सम्हला। मैं क्लब न गई। परंतु जब लगातार तीन दिन तक उन्हें बुख़ार आता गया, और मिसेज़ दास ने बारंबार एक नर्स बुलाने का आदेश किया तो मैं सहमत हो गई। उसदिन से रोगी की सेवा-शुश्रषा से छुट्टी पाकर बड़ा हर्ष हुआ। यद्यपि दो दिन मैं क्लब न गई थी, परंतु मेरा जी वहीं लगा रहता था, बल्कि अपने भीरुता-पूर्ण त्याग पर क्रोध भी आता था। एक दिन तीसरे पहर मैं कुर्सी पर लेटी हुई एक अंग्रेज़ी पुस्तक पढ़ रही थी। अचानक मन में यह विचार उठा कि बाबूजी का बुख़ार असाध्य हो जाय तो? परंतु इस विचार से मुझे लेश-मात्र दुःख न हुआ। मैं इस शोकमय कल्पना का मन-ही-मन आनंद उठाने लगी। मिसेज़ दास, मिसेज़ नायडू, मिसेज़ श्रीवास्तव, मिस-खरे, मिसेज़ शरगा अवश्य ही मातमपुर्सी करने आवेंगी। उन्हें देखते ही मैं सजल-नेत्र हो उठूँगी और कहूँगी—बहनो! मैं लुट गई, हाय, मैं लुट गई! अब मेरा जीवन अँधेरी रात के भयावह वन या श्मशान के दीपक के समान है। परंतु मेरी अवस्था पर दुःख न प्रकट करो। मुझ पर जो पड़ेगी, उसे मैं उस महान् आत्मा के मोक्ष के विचार से सह लूँगी।

मैंने इस प्रकार मन में एक शोक-पूर्ण व्याख्यान की रचना कर डाली। यहाँ तक कि अपने उस वस्त्र के विषय में भी निश्चय कर लिया, जो मृतक के साथ श्मशान जाते समय पहनूँगी।

इस घटना की शहर-भर में चर्चा हो जायगी। सारे कैंटुन्मेंट के लोग मुझे समवेदना के पत्र भेजेंगे। तब मैं उनका उत्तर समाचार-पत्रों में प्रकाशित करा दूँगी कि मैं प्रत्येक शोक-पत्र का उत्तर देने में असमर्थ हूँ। हृदय के टुकड़े-टुकड़े हो गये हैं, उसे रोने के सिवा और किसी काम के लिये समय नहीं है। मैं इस हमदर्दी के लिए उन लोगों की कृतज्ञ हूँ, और उनसे विनय पूर्वक निवेदन करती हूँ कि वे मृतक की आत्मा को सद्गति के निमित्त ईश्वर से प्राथना करें। मैं इन्हीं विचारों में डूबी

हुई थी कि नर्स ने आकर कहा—आपको साहब याद करते हैं। यह मेरे क्लब जाने का समय था। मुझे उनका बुलाना अखर गया। लेकिन क्या करती, किसी तरह उनके पास गई। बाबूजी को बीमार हुए लग-भग एक मास हो गया था। वह अत्यंत दुर्बल हो रहे थे। उन्होंने मेरी ओर विनय-पूर्ण दृष्टि से देखा। उसमें आँसू भरे हुए थे। मुझे उनपर दया आई। बैठ गई, और ढाढ़स देते हुए बोली—क्या करूँ ? कोई दूसरा डाक्टर बुलाऊँ।

बाबूजी आँखें नीची करके अत्यंत करुण भाव से बोले—मैं यहाँ कभी नहीं अच्छा हो सकता, मुझे अम्मा के पास पहुँचा दो।

मैंने कहा—क्या आप समझते हैं कि वहाँ आपकी चिकित्सा यहाँ से अच्छी होगी ?

बाबजी बोले—क्या जानें क्यों मेरा जी अम्मा के दर्शनों को लालायित हो रहा है। मुझे ऐसा मालूम होता है कि मैं वहाँ बिना दवा-दर्पन के भी अच्छा हो जाऊँगा।

मैं—यह आपका केवल विचार-मात्र है।

बाबूजी—शायद ऐसा ही हो। लेकिन मेरी यह विनय स्वीकार करो। मैं इस रोग से नहीं, इस जीवन से ही दुःखित हूँ।

मैंने अचरज से उनकी ओर देखा।

बाबूजी फिर बोले—हाँ मैं इस जिंदगी से तंग आगया हूँ। मैं अब समझ रहा हूँ कि मैं जिस स्वच्छ, लहराते हुए निर्मल जल की ओर दौड़ा जा रहा था, वह मरु-भूमि है। मैं इस प्रकार के जीवन के बाहरी रूप पर लट्टू हो रहा था, परंतु अब मुझे उसकी आंतरिक अवस्थाओं का बोध हो रहा है। इन चार वर्षों में मैंने इस उपवन में खूब भ्रमण किया, और उसे आदि से अंत तक कंटकमय पाया। यहाँ न तो हृदय की शांति है, न आत्मिक आनंद। यह एक उन्मत्त, अशांतिमय, स्वार्थ-पूर्ण, विलास-युक्त

जीवन है। यहाँ न नीति है न धर्म, न सहानुभूति न सहृदयता। परमात्मा के लिए मुझे इस अग्नि से बचाओ। यदि और कोई उपाय न हो, तो अम्मा को एक पत्र ही लिख दो। वह अवश्य यहाँ आवेंगी। अपने अभागे पुत्र का दुःख उनसे न देखा जायगा। उन्हें इस सोसाइटी की अभी हवा नहीं लगी; वह आवेंगी। उनकी वह ममता-पूर्ण दृष्टि; वह स्नेह-पूर्ण शुश्रूषा मेरे लिए सौ ओषधियों का काम करेगी। उनके मुख पर वह ज्योति प्रकाशमान होगी, जिसके लिए मेरे नेत्र तरस रहे हैं। उनके हृदय में स्नेह है, विश्वास है। यदि उनकी गोद में मैं मर भी जाऊँ तो मेरी आत्मा को शांति मिलेगी।

मैं समझी कि यह बुख़ार की बकझक है। नर्स से कहा—ज़रा इनका टैंपरेचर तो लो, मैं अभी डाक्टर के पास जाती हूँ। मेरा हृदय एक अज्ञात भय से काँपने लगा। नर्स ने थरमामीटर निकाला; परन्तु ज्योंही बाबूजी के समीप गई, उन्होंने उसके हाथ से वह यन्त्र छीनकर पृथ्वी पर पटक दिया। उसके टुकड़े टुकड़े हो गये। फिर मेरी ओर एक अवहेलना-पूर्ण दृष्टि से देखकर कहा—साफ़-साफ़ क्यों नहीं कहती हो कि मैं क्लबघर जाती हूँ, जिसके लिए तुमने ये वस्त्र धारण किये हैं और गाउन पहनी है। ख़ैर उधर से घूमती हुई यदि डाक्टर के पास जाना, तो उनसे कह देना कि यहां टैंपरेचर उस बिन्दु पर आ पहुँचा है, जहाँ आग लग जाती है।

मैं और भी अधिक भयभीत होगई। हृदय में एक करुण चिंता का सञ्चार होने लगा। गला भर आया। बाबूजी ने नेत्र मूँद लिये थे, और उनकी साँस वेग से चल रही थी। मैं द्वार की ओर चली कि किसी को डाक्टर के पास भेजूँ। यह फटकार सुनकर स्वयं कैसे जाती? इतने में बाबूजी अति विनीत भाव से बोले—श्यामा मैं तुमसे कुछ कहना चाहता हूँ। बात दो सप्ताह से मन में थी; पर साहस न हुआ। आज मैंने निश्चय कर लिया है कि कह ही डालूँ। मुझे अब इस जीवन से घृणा हो गई है, और यही

मेरी बीमारी का मुख्य कारण है। मुझे शारीरिक नहीं, मानसिक कष्ट है। मैं फिर तुम्हें वही पहले की-सी सलज्ज, नीचा सिर करके चलनेवाली, पूजा करने वाली, रामायण पढ़ने वाली, घर का काम-काज करने वाली, चरखा कातने वाली, ईश्वर से डरने वाली, पति-श्रद्धा से परिपूर्ण स्त्री देखना चाहता हूँ। मैं विश्वास करता हूँ तुम मुझे निराश न करोगी। तुमको सोलहों आने अपनी बनाना और सोलहों आना तुम्हारा बनना चाहता हूँ। मैं अब समझ गया कि उसी सादे पवित्र जीवन में वास्तविक सुख है। बोलो, स्वीकार है। तुमने सदैव मेरी आज्ञाओं का पालन किया है, इस समय निराश न करना; नहीं तो इस कष्ट और शोक का न-जाने कितना भयंकर परिणाम हो!

मैं सहसा कोई उत्तर न दे सकी। मन में सोचने लगी—इस स्वतंत्र जीवन में कितना सुख था? ये मज़े वहाँ कहाँ? क्या इतने दिन स्वतंत्र वायु में विचरण करने के पश्चात् फिर उसी पिंजड़े में जाऊँ? वहीं लौंडी बन कर रहूँ? क्यों इन्होंने मुझे वर्षों स्वतंत्रता का पाठ पढ़ाया, वर्षों देवताओं की, रामायण की, पूजा-पाठ की, व्रत-उपवास की बुराई की, हँसी उड़ाई! अब जब मैं उन बातों को भूल गई, उन्हें मिथ्या समझने लगी, तो फिर मुझे उसी अन्धकूप में ढकेलना चाहते हैं? मैं तो इन्हीं की इच्छा के अनुसार चलती हूँ, फिर मेरा अपराध क्या है? लेकिन बाबूजी के मुख पर एक ऐसी दीनतापूर्ण विवशता थी कि मैं प्रत्यक्ष अस्वीकार न कर सकी। बोली—आखिर आपको यहाँ क्या कष्ट है? मैं उनके विचारों की तह तक पहुँचना चाहती थी।

बाबूजी फिर उठ बैठे और मेरी ओर कठोर दृष्टि से देखकर बोले—बहुत ही अच्छा होता कि तुम इस प्रश्न को मुझसे पूछने के बदले अपने ही हृदय से पूछ लेतीं। क्या अब मैं तुम्हारे लिए वही हूँ, जो आज से तीन वर्ष पहले था? जब मैं तुमसे अधिक शिक्षाप्राप्त, अधिक बुद्धिमान् अधिक जानकार होकर तुम्हारे लिए वह नहीं रहा जो पहले था—। तुमने

चाहे इसका अनुभव न किया हो, परन्तु मैं स्वयं कर रहा हूँ—तो मैं कैसे अनुमान करूँ कि उन्हीं भावों ने तुम्हें स्खलित न किया होगा? नहीं, बल्कि प्रत्यक्ष चिन्ह देख पड़ते हैं कि तुम्हारे हृदय पर उन भावों का और भी अधिक प्रभाव पड़ा है। तुमने अपने को ऊपरी बनाव-चुनाव और विलास के भँवर में डाल दिया है, और तुम्हें उसकी लेशमात्र भी सुध नहीं है। अब मुझे पूर्ण विश्वास हो गया कि सभ्यता-स्वेच्छाचारिता का भूत स्त्रियों के कोमल हृदय पर बड़ी सुगमता से क़ब्ज़ा कर सकता है। क्या अब से तीन वर्ष पूर्व भी तुम्हें यह साहस हो सकता था कि इस दशा में छोड़ कर किसी पड़ोसिन के यहाँ गाने-बजाने चली जातीं? मैं बिछौने पर पड़ा रहता और तुम किसी के घर जाकर कलोलें करतीं? स्त्रियों का हृदय आधिक्यप्रिय होता है। परन्तु इस नवीन आधिक्य के बदले मुझे वह पुराना आधिक्य कहीं ज़्यादा पसंद है। उस आधिक्य का फल आत्मिक एवं शारीरिक अभ्युदय और हृदय की पवित्रता थी, पर इस आधिक्य का परिणाम है छिछोरापन, निर्बलता, दिखावा और स्वेच्छाचार। उस समय यदि तुम इस प्रकार मिस्टर दास के सम्मुख हँसती-बोलती तो मैं या तो तुम्हें मार डालता या स्वयं विष-पान कर लेता। परन्तु बेहयाई ऐसे जीवन का प्रधान तत्त्व है। मैं सब-कुछ स्वयं देखता और सहता हूँ, और कदाचित सहे भी जाता, यदि इस बीमारी ने मुझे सचेत न कर दिया होता। अब यदि तुम यहाँ बैठी भी रहो, तो मुझे संतोष न होगा; क्योंकि मुझे यह विचार दुःखित करता रहेगा कि तुम्हारा हृदय यहाँ नहीं है। मैंने अपने को उस इन्द्रजाल से निकालने का निश्चय कर लिया है, जहाँ धन का नाम मान है, इन्द्रिय-लिप्सा का सभ्यता और श्रेष्ठता का विचार-स्वातंत्र्य। बोलो, मेरा प्रस्ताव स्वीकार है?

मेरे हृदय पर वज्रपात-सा हो गया। बाबूजी का अभिप्राय पूर्णतया हृदयंगम हो गया। अभी हृदय में कुछ पुरानी लज्जा बाक़ी थी। यह यंत्रणा

असह्य होगई। लज्जा पुनर्जीवित हो उठी। अन्तरात्मा ने कहा—अवश्य, मैं अब वह नहीं हूँ, जो पहले थी। उस समय मैं इनको अपना इष्टदेव मानती थी, इनकी आज्ञा शिरोधार्य थी; पर अब यह मेरी दृष्टि में एक साधारण मनुष्य हैं। मिस्टरदास का चित्र मेरे नेत्रों के सामने खिच गया। कल मेरे हृदय पर इस दुरात्मा की बातों का कैसा नशा छा गया था यह सोचते ही नेत्र लज्जा से झुक गये। बाबूजी की आन्तरिक अवस्था उनके मुखड़े से ही प्रकाशमान हो रही थी। स्वार्थ और विलास-लिप्सा के विचार मेरे हृदय से दूर होगये। उनके बदले ये शब्द ज्वलन्त अक्षरों में लिखे हुए नज़र आये—तूने फ़ैशन और वस्त्राभूषणों में अवश्य उन्नति की है, तुझमें अपने स्वत्वों का ज्ञान हो आया है, तुझमें जीवन के सुख भोगने की योग्यता अधिक होगई है, तू अब अधिक गर्विणी, दृढ़-हृदय और शिक्षा-सम्पन्न भी हो गई है। लेकिन तेरे आत्मिक बल का विनाश होगया है। क्योंकि तू अपने कर्तव्य को भूल गई है।

मैं दोनों हाथ जोड़कर बाबूजी के चरणों पर गिर पड़ी। कण्ठ रुँध गया; एक शब्द भी मुँह से न निकला; अश्रु-धारा बह चली। अब मैं फिर अपने घर आई हूँ। अम्माजी अब मेरा अधिक सम्मान करती हैं, बाबूजी संतुष्ट देख पड़ते हैं; और वह अब स्वयं प्रतिदिन संध्या-वंदन करते हैं।

मिसेज़ दास के पत्र कभी-कभी आते हैं। वह इलाहाबादी सोसाइटी के नवीन समाचारों से भरे होते हैं। मिस्टरदास और मिस भाटिया के संबंध में कलुषित बातें उड़ रही हैं। मैं इन पत्रों का उत्तर तो दे देती हूँ; परन्तु चाहती हूँ कि वे अब न आते तो अच्छा होता। वह मुझे उन दिनों की याद दिलाते हैं, जिन्हें मैं भूल जाना चाहती हूँ।

कल बाबूजी ने बहुत सी पुरानी पोथियाँ अग्निदेव को अर्पण कीं। उनमें ख़ासकर आस्कर वाइल्ड की कई पुस्तकें थीं। वह अब अंग्रेजी पुस्तकें बहुत कम पढ़ते हैं। उन्हें कार्लाइल, रस्किन और इमर्सन के सिवा

और कोई पुस्तक पढ़ते मैं नहीं देखती। मुझे तो अपनी रामायण और महाभारत में फिर वही आनन्द प्राप्त होने लगा है। चरखा अब पहले से अधिक चलाती हूँ क्योंकि इस बीच में चरखे ने खूब प्रचार पा लिया है।

* 'प्रेम द्वादशी' (सरस्वती प्रेस, बनारस सिटी) से उद्धृत।

सस्ता-साहित्य-मण्डल, अजमेर के

प्रकाशन

१—दिव्य-जीवन ।=)
२—जीवन-साहित्य (दोनों भाग) १।)
३—तामिलवेद ।।।)
४—शैतान की लकड़ी अर्थात् व्यसन और व्यभिचार ।।।=)
५—सामाजिक कुरीतियाँ ।।।)
६—भारत के स्त्री-रत्न (दोनों भाग) १।।।-)
७—अनोखा ! १।=)
८—ब्रह्मचर्य-विज्ञान ।।।-)
९—यूरोप का इतिहास (तीनों भाग) २)
१०—समाज-विज्ञान १।।)
११—खद्दर का सम्पत्ति-शास्त्र ।।।≡)
१२—गोरों का प्रभुत्व ।।।=
१३—चीन की आवाज़ ।-) (अप्राप्य)
१४—दक्षिण अफ्रिका का सत्याग्रह (दो भाग) १।)
१५—विजयी बारडोली २)
१६—अनीति की राह पर ।≡) (गांधीजी)
१७—सीताजी की अग्नि-परीक्षा ।-)
१८—कन्या-शिक्षा ।)
१९—कर्मयोग ।=)
२०—कलवार की करतूत =)
२१—व्यावहारिक सभ्यता ।)॥
२२—अँधेरे में उजाला ।≡)
२३—स्वामीजी का बलिदान ।-)
२४—हमारे ज़माने की गुलामी (ज़ब्त) ।)
२५—स्त्री और पुरुष ।।)
२६—घरों की सफाई ।) (अप्राप्य)
२७—क्या करें ? (दो भाग) १।।=)
२८—हाथ की कताई-बुनाई (अप्राप्य) ।।=)
२९—आत्मोपदेश ।)
३०—यथार्थ आदर्श जीवन (अप्राप्य) ।।-)

३१—जब अंग्रेज नहीं आये थे— ।)

३२—गंगा गोविन्दसिंह ॥=) (अप्राप्य)

३३—श्रीरामचरित्र १।)

३४—आश्रम-हरिणी ।)

३५—हिन्दी-मराठी-कोष २)

३६—स्वाधीनता के सिद्धान्त ॥)

३७—महान् मातृत्व की ओर— ॥।=)

३८—शिवाजी की योग्यता ।=) (अप्राप्य)

३९—तरंगित हृदय ,, ॥)

४०—नरमेध १॥)

४१—दुखी दुनिया ॥)

४२—ज़िन्दा लाश ॥)

४३—आत्म-कथा (गांधीजी) दो खण्ड सजिल्द १।)

४४—जब अंग्रेज़ आये (ज़ब्त) १।=)

४५—जीवन-विकास अजिल्द १।) सजिल्द १॥)

४६—किसानों का बिगुल =) (ज़ब्त)

४७—फाँसी ! ॥)

४८—अनासक्तियोग तथा गीताबोध (श्लोक-सहित) ।=)

अनासक्तियोग =)

गीताबोध— -)॥

४९—स्वर्ण-विहान (नाटिका) (ज़ब्त) ।=)

५०—मराठों का उत्थान और पतन २॥) स०जि० ३)

५१—भाई के पत्र १॥)

सजिल्द २)

५२—स्व-गत— =)

५३—युग-धर्म (ज़ब्त) १=)

५४—स्त्री-समस्या १॥।)

सजिल्द २)

५५—विदेशी कपड़े का मुक़ाबला ॥=)

५६—चित्रपट ।=)

५७—राष्ट्रवाणी ॥=)

५८—इंग्लैण्ड में महात्माजी १)

५९—रोटी का सवाल १)

६०—दैवी-सम्पद् ।=)

६१—जीवन-सूत्र ॥।)

६२—हमारा कलंक ॥=)

६३—बुद्बुद ॥)

६४—संघर्ष या सहयोग? १॥)